Impact Factor
6.521

ISSN 2348-5639
(त्रैमासिक)

अक्टूबर 2026

शोध समालोचन

SHODH SAMALOCHAN

A Peer Reviewed Billingual International Journal of Multi-Disciplinary Research

(भारत एवं श्रीलंका : सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य)

शोध समालोचन (भारत एवं श्रीलंका : सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य)

PRINTED MATTER/PRINTING BOOK CLAUSE 121 (A) P & T GUIDE

प्रो. आशुरानी
कुलपति, डॉ. भीमराव आंबेडकर विश्वविद्यालय, आगरा

वेन होमगगम धम्मानंद तेरो
चेअर प्रोफेसर उपकुलपति
बौद्ध तथा पाली विश्वविद्यालय, कोलम्बो

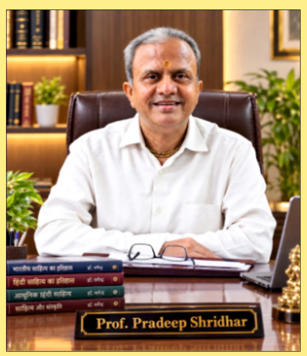

प्रो. प्रदीप श्रीधर
वरिष्ठ आचार्य, हिन्दी विभाग एवं निदेशक,
डॉ. भीमराव आंबेडकर विश्वविद्यालय, आगरा

डॉ. संगीता कुमार
सहायक प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग,
श्रीमती बी.डी. जैन गर्ल्स (पी.जी.) कॉलेज, आगरा

अखिल शर्मा
पुस्तकालय एवं सूचना
विज्ञान विभाग, आगरा

हंसिका कुमारी
Lamp Fallow, PRS
National Law Institute University, Bhopal

डॉ. प्रेमलता
प्रयागराज

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक गुगनराम सोसायटी (रजि.) के लिए डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट ने सानिया पब्लिकेशन, दिल्ली-110094 से छपवाकर गीना प्रकाशन, 202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा) से वितरित की।

ISSN 2348:5639

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित

SHODH SAMALOCHAN

शोध-समालोचन (त्रैमासिक)

संस्थापक संपादक
स्व. फतेहचंद

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REREREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES QUARTTERLY PRINT RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

वर्ष-13, अंक-4 अक्टूबर (भारत एवं श्रीलंका : सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य)

आईएसएसएन : 2348-5639 / 2026

इस विशेषांक का संपादक-मंडल

संरक्षक

प्रो. आशुरानी
कुलपति
डॉ. भीमराव आंबेडकर विश्वविद्यालय,आगरा

वेन होमगगम धम्मानंद तेरो
चेअर प्रोफेसर उपकुलपति
बौद्ध तथा पाली विश्वविद्यालय, कोलम्बो

प्रधान संपादक

प्रो. प्रदीप श्रीधर
वरिष्ठ आचार्य, हिन्दी विभाग एवं निदेशक,
कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ
डॉ. भीमराव आंबेडकर विश्वविद्यालय, आगरा

संपादक मण्डल

डॉ. संगीता कुमार
सहायक प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग,
श्रीमती बी.डी. जैन गर्ल्स (पी.जी.) कॉलेज, आगरा

डॉ. प्रेमलता
प्रयागराज

अखिल शर्मा
पुस्तकालय एवं सूचना विज्ञान विभाग,
डॉ. भीमराव आंबेडकर विश्वविद्यालय, आगरा

हंसिका कुमारी
Lamp Fallow, PRS
National Law Institute University
Bhopal, M.P.

संस्थापक संपादक
स्व. फतेहचंद

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित

SHODH SAMALOCHAN

शोध-समालोचन (त्रैमासिक)

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REREREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES QUARTTERLY PRINT RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

वर्ष-13, अंक-4 अक्टूबर (आगरा-श्रीलंका विशेषांक) आईएसएसएन : 2348-5639 2026

स्थायी संपादक-मंडल

संपादक
- **डॉ. नरेश सिहाग 'बोहल'** एडवोकेट

कार्यकारी संपादक
- **डॉ. वर्षा रानी**

प्रबंध संपादक
- **डॉ. मुकेश 'ऋषिवर्मा'**

सह-संपादक
- **डॉ. लता एस. पाटिल,**
- **डॉ. सुलक्षणा अहलावत**

अक्षर संयोजन
- **मो. सलीम**

कानूनी सलाहाकार
- **डॉ. रामफल दलाल,** एडवोकेट
- **अजीत सिहाग,** एडवोकेट

अंतरराष्ट्रीय सम्पादक मंडल

- **आशीष कुमार, गाजियाबाद**
- **डॉ. कुमारी लक्ष्मी जोशी, नेपाल**
- **डॉ. निशीथ गौड, आगरा**
- **डॉ. राजेश शर्मा, श्रीगंगानगर**
- **श्री शियोन छन श्यू, चीन**
- **डॉ. ऋतु शर्मा ननंन पांडे, नीदरलैंड**
- **डॉ. मुदस्सिर अहमद भट्ट, श्रीनगर**
- **श्री राकेश शंकर भारती, युक्रेन**
- **डॉ. के.के. मल्होत्रा, कैनेडा**
- **डॉ. आशीष कुमार दीपांकर, मेरठ**
- **डॉ. कामिनी कौशल, गाजियाबाद**
- **डॉ. रवि शंकर सिंह, आरा**

1. 'शोध-समालोचन' का प्रबंधन और संपादन पूर्णतः अवैतनिक है।
2. 'शोध-समालोचन' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार संबंधित लेखकों के अपने हैं। उनके प्रति वे स्वयं उत्तरदायी है।
3. पत्रिका से संबंधित प्रत्येक विवाद का न्याय क्षेत्र भिवानी न्यायालय ही मान्य होगा।
4. प्रकाशक/ स्वामी डॉ. नरेश सिहाग, एडवोकेट ने सानिया पब्लिकेशन, दिल्ली-110094 से मुद्रित करवाया।

'शोध समालोचन' की सदस्यता का शुल्क भुगतान राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा सीधे ट्रांसफर या जमा किया जा सकता है। बैंक का विवरण निम्नानुसार है–**बैंक :** PUNJAB NATIONAL BANK **Branch :** Yamuna Vihar, Delhi-110053 **IFSC :** PUNB0225600 **Account Holder :** SANIA PUBLICATION **Current Account No.** 2256002100405546 भुगतान की मूल रसीद, शोध -पत्र पत्रिका की ई-मेल पर भेजना अनिवार्य है।

नोट :- इस अंक की प्रिंट कॉपी खरीदने के लिए सानिया पब्लिकेशन, दिल्ली-110094 से सम्पर्क करें मो. 9818128487

मूल्य : 650/- रु. एक प्रिंट प्रति वार्षिक 2500/- रु.

ISSN : 2348-5639

SHODH SAMALOCHAN

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

[भाग III—खण्ड 4] भारत का राजपत्र : असाधारण 105

Table 2

Methodology for University and College Teachers for calculating Academic/Research Score

(Assessment must be based on evidence produced by the teacher such as: copy of publications, project sanction letter, utilization and completion certificates issued by the University and acknowledgements for patent filing and approval letters, students' Ph.D. award letter, etc,.)

S.N.	Academic/Research Activity	Faculty of Sciences /Engineering / Agriculture / Medical /Veterinary Sciences	Faculty of Languages / Humanities / Arts / Social Sciences / Library /Education / Physical Education / Commerce / Management & other related disciplines
1.	**Research Papers in Peer-Reviewed or UGC listed Journals**	08 per paper	10 per paper
2.	**Publications (other than Research papers)**		
	(a) Books authored which are published by ;		
	International publishers	12	12
	National Publishers	10	10
	Chapter in Edited Book	05	05
	Editor of Book by International Publisher	10	10
	Editor of Book by National Publisher	08	08
	(b) Translation works in Indian and Foreign Languages by qualified faculties		
	Chapter or Research paper	03	03
	Book	08	08
3.	**Creation of ICT mediated Teaching Learning pedagogy and content and development of new and innovative courses and curricula**		
	(a) Development of Innovative pedagogy	05	05
	(b) Design of new curricula and courses	02 per curricula/course	02 per curricula/course

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

भारत एवं श्रीलंका : सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य

भारत और श्रीलंका के संबंध केवल भौगोलिक निकटता अथवा राजनीतिक संपर्कों तक सीमित नहीं हैं; इनके मूल में सहस्राब्दियों से विकसित एक व्यापक सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, साहित्यिक और बौद्धिक अंतस्सम्बंध निहित हैं। हिन्द महासागर द्वारा जुड़े ये दोनों देश दक्षिण एशियाई सभ्यता के ऐसे महत्त्वपूर्ण केंद्र हैं, जहाँ इतिहास की दीर्घकालिक प्रक्रियाओं ने परस्पर संवाद, आदान-प्रदान और सांस्कृतिक सह-अस्तित्व की समृद्ध परंपरा निर्मित की है। इस दृष्टि से भारत और श्रीलंका का अध्ययन केवल दो देशों के पारस्परिक संबंधों का अध्ययन नहीं, बल्कि दक्षिण एशिया की साझा सभ्यतागत चेतना को समझने का एक महत्त्वपूर्ण माध्यम है।

भारत और श्रीलंका के सांस्कृतिक सम्बंधों की जड़ें प्राचीन काल से लेकर आज तक सभ्यता की गहराइयों तक विद्यमान हैं। बौद्ध धर्म के प्रसार-प्रचार ने दोनों देशों के बीच आध्यात्मिक और सांस्कृतिक संवाद को विशेष आयाम प्रदान किया। सम्राट अशोक के काल से सम्बंधित परंपराओं तथा महेंद्र और संघमित्रा के श्रीलंका आगमन से जुड़ी ऐतिहासिक-सांस्कृतिक स्मृतियों ने दोनों देशों के मध्य संबंधों को एक विशिष्ट धार्मिक एवं सांस्कृतिक आधार प्रदान किया। बौद्ध दर्शन, कला, स्थापत्य, शिक्षा, साहित्य और लोकाचार के विभिन्न रूपों में इन अंतर्संबंधों की छाप आज भी देखी जा सकती है। इसके साथ ही रामायण, हिंदू परंपराओं, समुद्री व्यापार, भाषायी संपर्क और लोक-संस्कृतियों ने भी भारत-श्रीलंका संबंधों को बहुआयामी स्वरूप प्रदान किया है।

दोनों देशों की सामाजिक संरचनाओं और सांस्कृतिक परंपराओं का तुलनात्मक अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि निकटता का अर्थ पूर्ण समानता नहीं होता। भारत और श्रीलंका में अनेक समान सांस्कृतिक तत्त्वों के साथ-साथ विशिष्ट ऐतिहासिक अनुभवों, भाषायी विविधताओं, धार्मिक संरचनाओं और सामाजिक प्रक्रियाओं ने अपनी-अपनी विशिष्ट पहचान निर्मित की है। अतः इन दोनों समाजों का अध्ययन समानताओं की खोज के साथ-साथ उनकी विशिष्टताओं और अंतर्विरोधों को समझने की दृष्टि से भी आवश्यक है। यही तुलनात्मक दृष्टि मानविकी अध्ययन को अधिक व्यापक, संतुलित और वैज्ञानिक बनाती है।

समकालीन वैश्विक परिदृश्य में भारत और श्रीलंका के सम्बंधों का सामाजिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन और भी प्रासंगिक हो गया है। वैश्वीकरण, प्रवासन, पर्यटन, डिजिटल संचार, शिक्षा, साहित्यिक आदान-प्रदान और सांस्कृतिक कूटनीति ने दोनों समाजों के पारस्परिक सम्पर्क के नए आयाम निर्मित किए हैं। सीमाओं से परे विकसित हो रहे सांस्कृतिक संवाद ने यह सिद्ध किया है कि संस्कृति केवल अतीत की विरासत नहीं, बल्कि वर्तमान में निरंतर निर्मित और पुनर्निर्मित होने वाली जीवंत प्रक्रिया है। इसलिए भारत-श्रीलंका संबंधों को समझने के लिए ऐतिहासिक स्रोतों के साथ-साथ समकालीन सामाजिक अनुभवों और सांस्कृतिक परिवर्तनों का अध्ययन भी आवश्यक है।

इसी व्यापक परिप्रेक्ष्य में 'भारत एवं श्रीलंका : सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य' विषय पर केंद्रित यह शोध-पत्रिका मानविकी के विभिन्न अनुशासनों के मध्य अंतःविषयक संवाद स्थापित करने का एक प्रयास है। इसका उद्देश्य भारत और श्रीलंका के सामाजिक तथा सांस्कृतिक संबंधों से संबंधित विविध पक्षों पर मौलिक, प्रमाण आधारित और आलोचनात्मक शोध को एक साझा मंच प्रदान करना है। इसमें हिंदी, इतिहास, दर्शनशास्त्र एवं अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य, तुलनात्मक साहित्य, संस्कृति-अध्ययन, दर्शन, धर्म-अध्ययन, लोक-संस्कृति, कला, भाषा-विज्ञान, समाजशास्त्रीय विमर्श तथा अन्य संबद्ध मानविकी अनुशासनों के माध्यम से दोनों देशों के संबंधों को समझने की संभावनाएँ निहित हैं।

विशेष रूप से साहित्य भारत और श्रीलंका के सांस्कृतिक संबंधों को समझने का एक सशक्त माध्यम है। साहित्य में किसी समाज का केवल बाह्य जीवन ही नहीं, बल्कि उसकी सामूहिक स्मृति, सांस्कृतिक चेतना, लोकविश्वास, मानवीय संवेदना और ऐतिहासिक अनुभव भी अभिव्यक्त होते हैं। भारतीय और श्रीलंकाई साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन से उन सांस्कृतिक बिंदुओं को पहचाना जा सकता है जहाँ दोनों समाज एक-दूसरे के निकट आते हैं और उन क्षेत्रों को भी समझा जा सकता है जहाँ उनकी स्वतंत्र सांस्कृतिक अस्मिताएँ आकार ग्रहण करती हैं। अनुवाद और अंतर्भाषिक संवाद इस प्रक्रिया को और अधिक व्यापक बनाते हैं।

इस शोध-पत्रिका का एक प्रमुख उद्देश्य भारत और श्रीलंका के संबंधों को किसी एक अनुशासन या एकांगी दृष्टिकोण में सीमित न रखकर बहुविषयी एवं अंतःविषयी परिप्रेक्ष्य में देखना है। सामाजिक संरचना, धार्मिक सह-अस्तित्व, लोक परंपराएँ, कला एवं स्थापत्य, साहित्यिक संपर्क, भाषायी अंतर्संबंध, शिक्षा, प्रवासन, स्त्री-अनुभव, पर्यावरणीय चेतना, सांस्कृतिक विरासत और समकालीन सांस्कृतिक कूटनीति जैसे विषय इस व्यापक अध्ययन के विविध आयाम हो सकते हैं। इस प्रकार की बहुआयामी दृष्टि दोनों देशों के संबंधों की जटिलता और जीवंतता को अधिक समग्रता से उद्घाटित करने में सहायक होगी।

शोध की गुणवत्ता केवल उसके विषय की महत्ता से निर्धारित नहीं होती, बल्कि उसकी पद्धतिगत दृढ़ता, स्रोत-संपदा, तर्कसंगति और मौलिकता भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण होती है। अतः इस पत्रिका में प्रकाशित शोध-लेखों से अकादमिक प्रामाणिकता, संदर्भों की विश्वसनीयता, शोध-पद्धति की स्पष्टता, मौलिक चिंतन और बौद्धिक ईमानदारी की अपेक्षा की जाती है। हमारा उद्देश्य ऐसी शोध-संस्कृति को प्रोत्साहित करना है जिसमें स्थापित धारणाओं का विवेकपूर्ण पुनर्परीक्षण हो और नवीन प्रश्नों तथा नवीन व्याख्याओं के लिए पर्याप्त अवकाश उपलब्ध हो।

डॉ. भीमराव आंबेडकर विश्वविद्यालय, आगरा की समृद्ध शैक्षणिक एवं शोधपरंपरा के संदर्भ में इस प्रकार का प्रयास विशेष महत्त्व रखता है। आगरा स्वयं भारतीय इतिहास, संस्कृति, कला, स्थापत्य और साहित्य की बहुविध परंपराओं का महत्त्वपूर्ण केंद्र रहा है। ऐसी ऐतिहासिक-सांस्कृतिक भूमि से भारत और श्रीलंका के मध्य सामाजिक एवं सांस्कृतिक अंतर्संबंधों पर केंद्रित शोध-विमर्श को आगे बढ़ाना दक्षिण एशियाई अध्ययन की व्यापक परंपरा में एक सार्थक अकादमिक हस्तक्षेप के रूप में देखा जा सकता है।

हमारा विश्वास है कि भारत और श्रीलंका के संबंधों को समझने का सबसे सार्थक मार्ग केवल राजनीतिक या कूटनीतिक विमर्श से होकर नहीं जाता, बल्कि उन सामान्य मनुष्यों, समुदायों, परंपराओं, भाषाओं, साहित्यिक कृतियों, धार्मिक विश्वासों और सांस्कृतिक स्मृतियों के अध्ययन से भी होकर गुजरता है जिन्होंने इन संबंधों को वास्तविक अर्थों में जीवित रखा है। संस्कृति की यही मानवीय आधारभूमि दोनों देशों के मध्य संवाद को स्थायित्व और आत्मीयता प्रदान करती है।

यह शोध-पत्रिका इसी सांस्कृतिक आत्मीयता को अकादमिक विमर्श में रूपांतरित करने का प्रयास है। हमारा उद्देश्य अतीत के गौरव का मात्र पुनर्स्मरण करना नहीं, बल्कि इतिहास और संस्कृति के उन अंतर्संबंधों को नए प्रश्नों और समकालीन शोध-दृष्टियों के आलोक में पुनर्परिभाषित करना है, जो भारत और श्रीलंका के वर्तमान तथा भविष्य के संबंधों को समझने में सहायक हो सकते हैं।

अंततः यह शोध-पत्रिका एक निष्कर्ष नहीं, बल्कि संवाद का आरंभ है ऐसा संवाद जो इतिहास से वर्तमान तक, परंपरा से आधुनिकता तक और स्थानीय अनुभव से वैश्विक परिप्रेक्ष्य तक विस्तृत है। आशा है कि इसमें प्रकाशित शोध-लेख भारत और श्रीलंका के सामाजिक एवं सांस्कृतिक संबंधों के अध्ययन को नई दिशाएँ प्रदान करेंगे तथा मानविकी के क्षेत्र में अंतःविषय और तुलनात्मक शोध की संभावनाओं को अधिक सशक्त बनाएँगे।

- प्रो. प्रदीप श्रीधर

विषयानुक्रमणिका

रामायण काल में श्रीलंका 08

प्रो. शिखा श्रीधर

बौद्ध धर्म की वैचारिकी 13

डॉ. नीरू

रामचरितमानस में सीता और शबरी की संवेदनशील भूमिकाएँ 17

डॉ. सुनीता सिंह

श्री राम और हनुमान की वीरतापूर्ण और भक्तिपूर्ण भूमिकाएँ 22

डॉ. राजेन्द्र दवे

बौद्ध धर्म और सामाजिक मूल्य दया, अहिंसा और सद्भाव 27

डॉ. रवीन्द्र कुमार

भारत और श्रीलंका के अवनद्ध वाद्यों की परम्पराओं का तुलनात्मक अध्ययन 30

प्रो. मीरा अग्रवाल

भारत और श्रीलंका के मध्य संबंध 37

सोनी केशरी

बुद्ध का जीवन, दर्शन और सामाजिक मूल्य : करुणा, अहिंसा और सद्भाव की दृष्टि 45

रविन्द्र कुमार गौतम

सीता और शबरी की संवेदना : एक तुलनात्मक अध्ययन 48

प्रियंका खंडेलवाल

सुषम बेदी के उपन्यासों में अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष करते नारी पात्र 52

कल्पना सिंह, प्रो. शिखा श्रीधर

बौद्ध धर्म की वैचारिकी एवं दर्शन : कर्म, पुनर्जन्म एवं निर्वाण 56

अल्पना

भारत और श्रीलंका की बौद्ध सांस्कृतिक परंपरा में लैंगिक अस्मिता : एक तुलनात्मक अध्ययन 61

मधु, प्रो. राखी उपाध्याय

भक्तिकाल और तमिल साहित्य 65

डॉ. प्रेमलता

बौद्ध ग्रंथों में वर्णित नारी एवं बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार में उनका योगदान : भारत एवं श्रीलंका के संदर्भ में 71

डॉ. (प्रो.) मधु वशिष्ठ, डॉ. ममता सिंह

शास्त्रीय संस्कृत नाटकों में भगवान बुद्ध और बौद्ध धर्म 74

डॉ. शुभ्रा वर्मा

बौद्ध शिक्षा के केंद्रों का इतिहास तथा वर्तमान शिक्षा में प्रासंगिकता 78

नीतू गौतम, दीपक गौतम

बौद्ध धर्म और सामाजिक मूल्य : दया, अहिंसा एवं सद्भाव–एक मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण 83
डॉ. सुजाता चौधरी
कंब रामायण में युद्ध, प्रकृति और भावनाओं का चित्रण 92
डॉ. निधि शर्मा
भारत–श्रीलंका संबंधों में पर्यटन एवं सॉफ्ट पावर कूटनीति का विश्लेषण 97
मनीष कुमार चौरसिया, प्रो. नीलिमा सिंह
बौद्ध धर्म का उद्भव, विकास एवं सिद्धांत 102
प्रो. शम्पा चौधरी, प्रो. जया शर्मा
राम और हनुमान की वीरतापूर्ण एवं भक्तिपूर्ण भूमिकाएँ 108
चित्रांश खरे
धर्म की मशाल : महारानी मंदोदरी 113
ज्योति मित्तल, प्रो. चन्द्र शेखर शर्मा
भारत–श्रीलंका संबंधों को सुदृढ़ करने में बिम्सटेक की भूमिका : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन 117
प्रो. नीलिमा सिंह एवं देवेंद्र कुमार जायसवाल
बुद्ध का महाकरुणावाद : विश्वशांति एवं वैश्विक संघर्ष–समाधान की समकालीन प्रासंगिकता 123
अपर्णा
रामायण में नारी चेतना : सीता एवं शबरी के विशेष संदर्भ में 129
डॉ. मधु ओझा
तेजेन्द्र शर्मा के कथा–साहित्य में प्रवासी यथार्थ और सांस्कृतिक द्वंद्व का विस्तृत विश्लेषणात्मक अध्ययन 134
दीप्ति जोशी, प्रो. शिखा श्रीधर
अनामिका के उपन्यासों में मानवीय संवेदना 143
कु. मीनू, डॉ. ज्योत्स्ना शर्मा
धूमिल और सुकांत की कविताओं में स्त्री 147
नेहा चौबे
राम और हनुमान की वीरतापूर्ण एवं भक्तिपूर्ण भूमिकाएँ 152
डॉ. विशाल जैन
भारत–श्रीलंका के सांस्कृतिक संबंधों का सौन्दर्यशास्त्रीय अध्ययन : आचार्य आनंद कुमारस्वामी के विशेष संदर्भ में 157
डॉ. निशीथ गौड़
बौद्ध धर्म और सामाजिक मूल्य : करुणा, समता, अहिंसा एवं सामाजिक समरसता का समकालीन पुनर्पाठ 163
राघवेन्द्र सिंह
भारत–श्रीलंका सामाजिक–सांस्कृतिक संबंधों में चीन की बढ़ती भूमिका: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन 169
सोनी कुमारी
वैदिक अवधारणा में ऋत तत्त्व का अध्ययन 176
डॉ. नितिन सेठी, प्रो. ए. सी. त्रिपाठी

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

रामायण काल में श्रीलंका

प्रो. शिखा श्रीधर

शोध सारांश- रामायणकालीन श्रीलंका एक विद्वान प्रशासक की भव्य और सम्पन्न श्रीलंका है। वहाँ के भवन स्वर्ण निर्मित हैं। सम्पूर्ण श्रीलंका सुदृढ़ परकोटे से आवृत है जिसमें चारों दिशाओं में भव्य द्वार हैं जो सुदृढ़ कपाटों से खुलते और बन्द होते हैं। वहाँ पूर्ण सुरक्षा है और वायुप्रदूषण को रोकने के लिए वनोपवन हैं। प्रस्तुत शोध आलेख 'रामायण काल में श्रीलंका' में रामायणकालीन श्रीलंका की शोभा और उसकी स्थापत्य कला पर विचार किया गया है।

बीज शब्द- चहारदीवारी, प्रासादों, विचित्रताएँ, रक्षा प्रणाली, भवन निर्माण कला, सुशासन।

शोध आलेख- बलवानों में श्रेष्ठ हनुमान जब श्रीलंका में पहुँचते हैं तो वे वहाँ रास्ते में, हरी-हरी दूब और वृक्षों से भरे हुए मार्ग देखते हैं। यथा–

शाद्वलानि च नीलानि गन्धवन्ति वनानि च।
मधुमन्ति च मध्येन जगाम नगवन्ति च।।[1]

श्रीलंका पर्वत के अग्रभाग पर बसी हुई थी जो पर्वत, वृक्षों और फूलों से आच्छादित था। वहाँ की वनराशि मे नाना प्रकार के वृक्ष थे। जैसे- चीड़ (सरल), कनेर, खिले हुए खजूर, प्रियाल (चिरोंजी), मुचलिन्द (जम्बीरीनीबू), कुटज, केतक (केवड़ा), प्रियङ्ग (पिजली), नीप (कदम्ब), अशोक, छितवन, असन, कोविदार तथा खिले हुए करवीर आदि। यथा–

" सरलान् कर्णिकारांश्च खर्जूरीश्च सुपुष्पितान्।
प्रियङ्गुं मुचुलिन्द्रांश्च कुटजान केतकानपि।।
प्रियङ्गन्न गन्धपूर्णांश्च नीपान् सप्तच्छदस्तथा।
असनान कोविदारांश्च करवीरांश्च पुष्पितान।।[2]

(रामा0 सुंदर का0 2/9,10)

गोस्वामी तुलसीदास ने भी प्रथम वनशोभा का ही वर्णन किया है–

तहाँ जाइ देखी बन सोभा। गुंजत चंचरीक मधुलोभा।।
नाना तरु फल फूल सुहाए। खग मृग वृंद देखि मन भाए।।[3]

हनुमान् जी ने वहाँ हँसों से व्याप्त तथा कमल और उत्पल से आच्छादित बावड़ियाँ देखीं। वहाँ भाँति-भाँति के क्रीड़ास्थान तथा नाना प्रकार के जलाशय भी थे। यथा–

"हंसकारण्डवाकीर्णा वापीरू पद्मोत्पलाहङ्कृताः।
आक्रीडान विविधान रम्यान विवि घोश्च जलाशयान्।।[4]

(रामो० सुन्द०, 212)

'रामचरितमानस' के अनुसार लंका में स्वर्णयुक्त किला, सुन्दर घर बाजार, अट्ष्टालिकाएं, इनके मध्य सुन्दर गलियां थीं। हाथी, घोड़ा, पदचर, सेना, रथ, बहुरूप के निशाचार, बन, बाग, उपवन, तालाव, कुँए, बावड़ी, नर और नाग कन्याओं के रूप

को देखकर मुनियों के भी मन मोहित हो रहे थे। अनेक योद्धा नगर की रक्षा कर रहे थे–

**"कनक कोट विचित्र मनिकृत सुन्दरायतनाथना।
चउहट्ट हट्ट सुबट्ट बीथीं चारुपुर बहु बिधि बना
गज बाजि खच्चर निकर पदचर रथ बरु थान को गने।
बहुरूप निसिचर जूथ अतिबल सेन बरनत नहिं बने
बन बाग उपवन बाटिका सर कूपावापी सोहहीं।
नर नाग सुर गन्धर्व कन्या रूप मुनि मन मोहहीं ॥[5]**

श्रीलंका की नगरी सोने की चहारदीवारी से घिरी हुई थी तथा पर्वत के समान उच्च और शरदऋतु के बादलों के समान श्वेत भवनों से भरी हुई थी। यथा–

**"काञ्चनेनावृता रम्या प्राकारेण महापुरीम्।
गृहैश्च गिरि संकाशैः शारदाम्बुद सन्निभैः।।[6]**

रामा० सुं.का, साठ

श्वेत रंग की ऊँची-ऊँची सड़कें, उस नगर को सब ओर से घेरे हुए थीं। सैकड़ों अट्टालिकाएँ वहाँ शोभा पा रही थीं। फहराती हुई ध्वजा-पताकाएँ. उस नगरी की शोभा बढ़ा रही थीं।

**पाण्डुरामिः प्रतोलीभिरुच्चाभिसंवृताम्।
अट्टालकशताकीर्णा पताका ध्वजशोभिताम् ॥[7]**

(रामा० सु. का 2)

उस नगरी के बाहरी फाटक सोने के बने हुए थे और उसकी दीवारें लता बेलों के चित्र से सुशोभित थीं। हनुमान जी ने इसे आकाश में विचरने वाली नगरी के समान देखा। उस नगरी का उत्तर द्वार कैलास पर्वत पर बसी हुई अलकापुरी के बाहरी द्वार के समान ऊँचा था। वह आकाश में रेखा सी खींचता जान पड़ता था। मानो ऊँचे-ऊँचे प्रासादों को आकाश को उठा रखा है।

**द्वार मन्तरमासाद्य चिन्तयामास वानरः ॥
कैलास निलय प्रख्य मालिख़न्तमिवाम्बूरम्।
ध्रियमाणमिवाकाश मुच्छिते भवनोत्तमैः।।8**

(राम). सु.कारू 2/22, 23)

हनुमान जी ने देखा कि लंकापुरी, भयानक राक्षसों से उसी तरह भरी थी, जैसे पाताल की भोगवती पुरी नागों से भरी रहती है। उसकी निर्माणकला अचिन्त्य थी। वह हनुमान् को स्पष्ट दिखायी देती थी। पूर्वकाल में कुबेर का निवासस्थान थी। हाथों में शूल और पट्टिश लिए हुए बड़ी-बड़ी दाढ़ी वाले बहुत से शूरवीर राक्षस लंकपुरी की उसी प्रकार रक्षा करते थे, जैसे विषधर सर्प अपनी पुरी की रक्षा करते हैं। यथा–

**सम्पूर्णा राक्षसैर्घोरैर्नागै भोगवतीमिव।।
अचिन्त्यां सुकृतां स्पष्टां कुबेराध्युषितां पुरा।।
दंष्ट्राभिर्बहुभिः शूरैरू शूलपट्टिश पाणिभिः।
शिक्षिती राक्षसंधी महाभाशी विधैरिव ॥[9]**

(रामाः, सु०का० 2/24, 25)

गोस्वामी तुलसीदास ने भी लंकापुरी में अनेक योद्धाओं का वर्णन किया है। जब वे रावण के महल में जाते हैं तो वहाँ विभिन्न अवर्णनीय विचित्रताएँ देखीं।

मंदिर मंदिर प्रति कर सोधा। देखे जहँ तहँ अगनित जोधा।।
गयउ दसानन मंदिर माहीं। अति विचित्र कहि जात सो नाहीं।।[10]

(रामचरित. सुन्दरकाण्ड)

उस नगरी के चारों ओर समुद्र की खाई थी। हनुमान जी सोचने लगे यदि वानर मुझ तक आ भी जायें तो भी वे व्यर्थ ही सिद्ध होंगे, क्योंकि युद्ध के द्वारा देवता भी लंका पर विजय नहीं पा सकते थे। यथा–

आगत्यापीह हरयो भविष्यन्ति निरर्थकाः।
नहि युद्धेन वै लंका शक्या जेतुं सुरैरपि।।[11]

(रामायण सुन्दरकाण्ड 2/27)

हनुमान जी ने इस नगरी की रक्षा प्रणाली को देखकर सोचा कि इस दुर्गम लंका में श्रीराम भी आकर क्या करेंगे? यहाँ चार ही वीरशाली वानरों की पहुँच हो सकती है, वे हैं– बालिपुत्र अंगद, नील, स्वयं मेरी और सुग्रीव की।

चतुर्णामेव हि गतिर्वानराणां तपस्विनाम्।
बालिपुत्रस्य नीलस्य मम राज्ञश्च धीमतः।।[12]

(रामायण सुन्दरकाण्ड, 2/30)

सर्वप्रथम हनुमान जी ने सीता का पता लगाया। उसके लिए उन्होंने महातेजस्वी महापराक्रमी और बलवान राक्षसों की आँख से बचने की कोशिश की। उन्होंने सोचा कि वे रात्रि में यह कार्य करेंगे। उन्होंने इसके लिए लघुरूप धारण किया। वे बिल्ली के बराबर अत्यन्त सुन्दर हो गये। उन्होंने देखा कि नगरी पृथक-पृथक बने हुए चौड़े और विशाल राजमार्गों से सुशोभित थी।

प्रदोषकाले हनुमांस्तूर्णमुत्पत्य वीर्यवान्।
प्रविवेश पुरीं रम्यां प्रविमुक्तमहापथाम्।।[13]

(रामायण सुन्दरकाण्ड 2/50)

नगर निर्माण में प्रासादों का विशेष महत्व होता है। प्रासाद-निर्माण श्रीलंका की उच्च सभ्यता को व्यक्त करने वाला है। प्रासादों का निर्माण पंक्तिबद्ध रूप से किया गया था, जैसा कि आज-कल कॉलोनियों में हो रहा है। सुनहरे रंग के खम्भों और सोने की जालियों वाले प्रासादों से निर्मित नगरी बड़ी रमणीय थी।

प्रासादमालाविततां स्तम्भैः काञ्चनसन्निभैः।
शतकुम्भमयैर्जालैर्गन्धर्वनगरोपमाम्।।[14]

(रामायण सु०काण्ड 2/51)

पुरी के महल सातमंजिले और अठमहले थे। उनके फर्श कई स्फटिक मणियों के बने हुए थे, जो बहुत सुशोभित हो रहे थे। उनमें वैदूर्य (नीलम) जड़े हुए थे। मोतियों से बनी जालियाँ प्रासादों की शोभा बढ़ा रही थीं। इसके कारण राक्षसों के भवन बहुत शोभा पा रहे थे। ऐसी उच्च कोटि की थी भवन निर्माण कला। यथा–

सप्तभौमाष्टभौमैश्च स ददर्श महापुरीम्।
तलैः स्फटिकसंकीर्णैः कातस्वरविमूषितैः।।
वैदूर्यमणिचित्रैश्च मुक्ताजालविभूषितैः।
तैस्तैः सुशोभिते तानि भवनान्यत्र रक्षसाम्।।[15]

(रामायण सुन्दरकाण्ड 2/52,53)

सोने से बने हुए विचित्र फाटकों से सजी हुई लंका सुशोभित थी।

काञ्चनानि विचित्राणि तोरणानि च रक्षसाम्
लंकामुद्योतयामासुः सर्वतः समलंकृताम्।।[16] (रामायण सुन्दरकाण्ड 2/54)

मकानों का निर्माण जहाँ पंक्तिबद्ध था, वहीं वे परस्पर सटे हुए और बहुमंजिले थे। वहाँ घरों को जम्बूनद नामक स्वर्ण की जालियों और वन्दनवारों से घरों को सजाया गया था। भयंकर बलशाली राक्षस पुरी की रक्षा में नियुक्त थे। रावण के बाहुबल से सुरक्षित लंका की कीर्ति दूर-दूर तक फैली हुई थी। यथा—

स पाण्डुराभिर्ह्यदि मानमालिनीं,
महाहिजम्बूनदजालतोरणाम्।
यशस्विनीं रावणबाहुपालितां,
क्षपाचरैर्भी मबलैः सुपालिताम्।।[16]

(रामायण सुन्दरकाण्ड 2/56)

श्रीलंका की सुरक्षा सुदृढ़ थी। अन्दर जहाँ बलशाली राक्षस रक्षा करते थे, वहीं बाहरी सुरक्षा का भी ध्यान रखा गया था। उस नगरी की रक्षा के लिए बड़े-बड़े सर्पों का आना-जाना होता रहता था, इसलिए वह नागों से सुरक्षित भोगवती नामक नगरी के समान जान पड़ती थी। अमरावती-पुरी के समान वहाँ आवश्यकतानुसार बिजलियों से युक्त मेघ छाये रहते थे। विद्युत-दीपकों से प्रकाशित होती रहती थी। इसका आशय यह है कि आज के समान ही वहाँ विद्युत व्यवस्था थी। वह सोने से बने हुए विशाल परकोटे से घिरी हुई थी। छोटी-छोटी घंटियों से युक्त पताकाओं से सजलंकृत थी। जब हनुमान जी ने लंका में प्रवेश किया तो सहसा उछलकर परकोटे पर चढ़ गये।

सुजगच्चरितां गुप्तां शुभां भोगवतीमिव,
तां सविद्युतघनाकीर्णां ज्योतिषीर्गगने विताम्।।
चण्डमारुतनिर्घोषां यथा न्याप्यमरावतीम्।
शतकुम्भेन महता प्राकारेणाभिसंवृताम्।।[17]

जब यमराज ने कालदण्ड उठाया, तब ब्रह्मा ने प्रकट होकर कहा कि आप के काल दण्ड से इसे न मारिए क्योंकि मैंने इसे देवताओं द्वारा न मारे जाने का वरदान दिया है—

वरः खलु मयादत्तो दत्तास्मि दुश्प्रज्ञ।
स त्वया नातुं कार्यो यत्नेन युष्मया हत वचा।।[18]

(रामायण उत्तरकाण्ड 21/46)

निष्कर्ष- निष्कर्षतः कह सकते हैं कि पराक्रमी राजा रावण द्वारा पालित श्रीलंका रामायण काल की अद्भुत नगरी थी, जो रावण के सुदृढ़ सुशासन और वैभव को दर्शाती थी।

संदर्भ सूची

1. महर्षि वाल्मीकि, श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण (द्वितीय खण्ड) गीताप्रेस गोरखपुर, सुद, पृष्ठ 32, सम्वत् 2082.
2. वही, पृ० 32
3. गोस्वामी तुलसीदास रामचरितमानस (गुटका), गीताप्रेस गोरखपुर, सम्वत् 2079, पृ० 463
4. रामायण, सुन्दरकाण्ड, पृष्ठ 32
5. रामचरितमानस, पृ० 464
6. रामायण, पृ० 33
7. वही, पृ० 33
8. वही, पृ० 33
9. वही, पृ० 33

10. रामचरितमानस, (गुटका), पृ० 465
11. रामायण, पृ० 33
12. वही० पृ० 34
13. वही, पृ० 35
14. वही, पृ० 35
15. वही, पृ० 35
16. वही० पृ० 35
17. वही०, पृ० 36
18. वही, पृ० 36

आचार्य एवं अध्यक्ष (हिन्दी विभाग)
श्रीमती बी.डी. जैन गर्ल्स (पी.जी.) कॉलेज
आगरा

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

बौद्ध धर्म की वैचारिकी

डॉ. नीरू

शोध सारांश- सिद्धार्थ गौतम का जन्म सुप्रसिद्ध शाक्य गणाधिपति महाराज शुद्धोदन की पत्नी महामाया देवी के गर्भ से कपिलवस्तु के पास लुम्बिनी वन में हुआ था। बौद्ध परम्परा के अनुसार यह समय 624 ई० पू० माना जाता है। अन्य विद्वान 566 ई०पू० निर्धारित करते हैं। उनके निर्वाण के समय में भी विद्वानों में मतभेद है। बौद्ध परम्परा 544 ई०पूर्व तथा कुछ विद्वान 486 ई० पू० मानते हैं। प्रस्तुत शोध आलेख 'बौद्ध धर्म की वैचारिकी' में बौद्धकालीन दर्शन पर विचार किया गया है।

बीज शब्द- दर्शन, चार आर्य सत्य, कार्य-कारण सम्बन्ध, भवचक्र, द्वादशनिदान, निर्वाण।

शोध आलेख- भगवान बुद्ध के जन्म के कुछ दिनों बाद इनकी माता का गोलोकवास हो गया। इनका पालन-पोषण विमाता ने किया जो इनकी मौसी भी थी; जिसका नाम महाप्रजापति गौतमी था। इनका विवाह राजकुमारी यशोधरा से हुआ, जो अत्यन्त रूप-गुणशील सम्पन्न थी। यशोधरा ने राहुल नाम के पुत्र को जन्म दिया, जिसे ये सोता छोड़कर परिव्राजक हो गये। यह वैराग्य इन्हें यह चार दृश्य- वृद्ध, रोगी, मृतक और परिव्राजक को देखकर हुआ। इनकी वैचारिकी इन्हीं दृश्यों का परिणाम है। इन्होंने विचार किया कि विश्व के क्षणिक सुख का आधार चिर स्थायी वेदना है। भोग-विलास की कृत्रिम स्मिति रेखा के नीचे आधि, व्याधि, जरा और मरण की भीषण त्रासा का उपहास निहित है।"[1]

''6 वर्ष की कठिन तपस्या एवं साधना के बाद लगभग 35 वर्ष की आयु में गया के समीप बोधिवृक्ष के नीचे मार-विजय करके अज्ञान के अन्धकार को दूर करने वाले ज्ञान-सूर्य का साक्षात्कार करके वे बोधिसम्पन्न "सम्यक सम्बुद्ध" बने। फिर वे वाराणसी के पास ऋषि-पत्तन "मृगदाव" (सारनाथ) गये और वहाँ पाँच भिक्षुओं को उन्होंने अपना शिष्य बनाकर अपने साक्षात्कृत सत्य का सर्वप्रथम उपदेश दिया, जिसे "धर्मचक्र प्रवर्तन" की संज्ञा दी गयी है। यहीं से बौद्ध धर्म का प्रारम्भ हुआ।''

चार आर्य सत्य- चार आर्य सत्य, आर्य अष्टांगिक मार्ग, प्रतीत्यसमुत्पाद, अव्याकृत प्रश्नों पर बुद्ध का मौन, अनात्मवाद। प्रथम चार आर्य सत्य हैं–

(1) दुःख, (2) दुःख समुदय, (3) दुःख निरोध और (4) दुःख निरोध मार्ग। प्रथम सत्य के अनुसार संसार दुःखों से आवृत है। यह हम प्रत्यक्ष देखते भी हैं। लौकिक सुख भी अन्ततः दुःख में ही परिणत हो जाता है, क्योंकि इस सुख की प्राप्त करने के प्रयास में भी दुःख है। उदाहरण के लिए पुत्र या पत्नी प्राप्त हो जाये तो उनके असामयिक निधन पर दुःख ही दुःख है। सुख के नष्ट होने का विचार भी दुःख का कारण बनता है। माधवाचार्य भी मानते हैं कि सभी शास्त्रकार चाहे वे नास्तिक हों या आस्तिक, संसार को दुःखमय मानते हैं। वास्तव में भारतीय दर्शन बन्धन और मोक्ष का दर्शन प्रस्तुत करता है–

"सर्वस्य संसारस्य दुःखात्मकत्वं सर्वतीर्थिकरसम्भतम्।
अन्यथा तन्निवृत्त्यर्थना तेषां तन्निवृत्त्युपाये प्रवृत्य-
नुपपत्तेः। तस्मात्सर्वं दुःखं दुःखमिति भावनीयम्।"[3]

जहाँ अन्य दर्शनों के आचार्यों ने जीवन में दुःख को माना है वहीं इसका बहुत अधिक समर्थन नहीं किया है। बुद्ध

का यह स्वयं सिद्ध अनुभूत सत्य था। अतः बौद्ध दर्शन में इसे प्रमुख स्थान मिला। "सामान्य बुद्धि के लोगों के लिए संसार दुःखों के साथ-साथ सुख का भी आगार है। जीवन, जरा, मृत्यु, आशा, निराशा में सुख-दुःख की धूप-छाँह संसार में सर्वत्र देखने को मिलती रहती है। किन्तु सांसारिक सुख क्षणिक है, शाश्वत नहीं।" बुद्ध ने संसार में कारण-कार्य सम्बन्ध को देख कर अपने अनुभव से इस सिद्धान्त का आविष्कार किया कि संसार में कोई भी पदार्थ बिना कारण के उत्पन्न नहीं होता। इसी से उनका द्वितीय आर्य सत्य दुःख समुदय है।

(2) दुःख समुदय- इसकी प्रतीत्य-समुत्पाद भी नाम दिया गया। "हमारे जन्म जरा और जरा आदि दुःखों का मूलकारण अविद्या है। इस अविद्या की अद्भुत सामर्थ्य से एक कार्य-कारण परम्परा का आविर्भाव बुद्ध ने अपने अनुभव-गोचर किया। इस कारण शृंखला में एक दूसरे कारण कार्य रूप को पहचान कर बुद्ध ने एक अद्भुत दार्शनिक सिद्धान्त का आविष्कार किया। इसी सिद्धान्त को "प्रतीत्य समुत्पाद" अथवा "पटिच्च समुत्पाद" कहा जाता है।"[4] यही सापेक्षकारणतावाद है। भव में जन्म का कारण ही दुःख का कारण है। इस भव का भी कोई कारण अवश्य होना चाहिए। वह कारण उपादान है। डॉ० नरेन्द्र देव के अनुसार- "इस उपादान का अर्थ आसक्ति की अधिकता है, विषय-भोगों में अत्यधिक तृष्णा के कारण जो मनुष्य में अदम्य वासना रह जाती है, उसी तृष्णा करने की इच्छा से जन्म में जाने की जो प्रवृत्तियाँ प्रादुर्भूत होती है वे ही उपादान कहलाती हैं।"[5]

कार्य-कारण सम्बन्ध के निश्चय के द्वारा अविनाभाव अर्थात् व्याप्ति का निश्चय होता है। तदुत्पत्ति अर्थात् की उत्पत्ति का निश्चय कार्य और हेतु (कारण) की प्रत्यक्ष प्राप्ति (उपलम्भ) और अनुपलब्धि (अनुपलम्भ) रूपी पाँच अवयवों पर निर्भर है।[6] ये हैं— (1) उत्पत्ति के पूर्व कार्य का नहीं प्राप्त होना, (2) कारण की प्राप्ति होने पर, (3) कार्य का प्राप्त होना (4) कार्य प्राप्त होने के बाद कारण का प्राप्त नहीं होना और जिसके फलस्वरूप कार्य का प्राप्त न होना।

"तस्मात्तदुत्पत्ति निश्चयेनाविनाभावो निश्चयेत।
तदुत्पत्ति निश्चयश्च कार्य हेत्वोः प्रत्यक्षोपलम्भानुपलम्भ पंचकानिबन्धनः।"[7]

हम देखते हैं कि (1) धूम की उत्पत्ति से पूर्व धूम का ज्ञान नहीं होता, अब (2) अग्नि देख रहे हैं तो (3) धूम का भी ज्ञान हो जाता है। धूम का ज्ञान होने पर जब (4) अग्नि की सत्ता नहीं रहे तो ऐसी अवस्था में (5) धूम की भी सत्ता मिट जाती है। माधवाचार्य ने उस प्रक्रिया के विभागों को इन पाँच भागों में विभक्त कर इनको अनुपलम्भ और उपलम्भ दो भागों में विभक्त किया है।[8]

बौद्धों ने अन्वय और व्यतिरेक का विधियों को ही तोड़कर पंचकारिणी विधि का निर्देश दिया है। कार्य-कारण का यह चक्र ही दुःख समुदय का जनक है। कारण होने पर ही कार्य होता है यह नियम ध्रुव तारे की तरह अटल है। पूर्व जन्म कर्म का अज्ञान विद्या चरण काल के विचार रूप संस्कार 'विज्ञान' या चेतना का कारण बताया गया है।

इस बौद्ध ग्रन्थ में उस संस्कार का कारण 'अविद्ज्ञा' या अविद्या है। बौद्धों के अनुसार यह कारण-चक्र (भवचक्र) द्वादश प्रकार का है। कारण की द्वादश कड़ियों इस चक्र को धर करके 'प्रतीत्यसमुत्पाद' के सिद्धा सिद्धान्त की जनक है। ये बारह हैं—[9]

(1) जरामरण रूप दुःख (2) जाति, (3) भव, (4) उपादान,
(5) तृष्णा, (6) वेदना (7) स्पर्श, (8) षडायतन,
(9) नाम, (10) विज्ञान, (11) संस्कार और (12) अविद्या।

इस भवचक्र के प्रतीक रूप एक चक्र का निर्माण करके बौद्ध लोग उसे घुमा-घुमाकर प्रतिदिन इनका जाप करते हैं। इससे इसके महत्व का पता चलता है। इस द्वादश निदान को भूत, वर्तमान और भविष्य के नाम से विभक्त किया गया है।

(क) भूत- (1) अविद्या और (2) संस्कार।
(ख) वर्तमान जीवन- (3) विज्ञान, (4) नाम रूप, (5) षडआयतन, (6) स्पर्श, (7) वेदना, (8) तृष्णा,
(9) उपादान, (10) भव।

(ग) भविष्य जीवन- (11) जाति और (12) जरा-मरण।

इनके मूलाधार अविद्या के नष्ट हो जाने पर जाति जरामरण आदि दुःख नष्ट हो जाते हैं। "इस द्वादशनिदान का आविष्करण यह केत करता है कि शरीर की उत्पत्ति रूप वृद्धि का कारण अन्तर्निहित वासना है। वर्तमान जीवशास्त्रियों के मतानुसार जीवन का विकास बिना कारणों के आकस्मिक ही होता है। उसके बिना कोई प्रयोजन के नहीं आती। इस प्रकार बुद्ध का सापेक्षकारणतावाद जीवशास्त्रियों के मत से भिन्न है। परन्तु फ्रांस के सुप्रसिद्ध दार्शनिक बर्गसों (Bergson) ने किसी भी वस्तु के विकास में अन्तर्निहित शक्ति की प्रेरणा को कारण माना है। बुद्ध की विशेषता यह है कि उन्होंने 'भव' अर्थात जन्म लेने की प्रवृत्ति के कारण प्राणी का जन्म और विज्ञान के कारण गर्भावस्था में शरीर में उपचय(वृद्धि) होता है।[10]

(३) तृतीय आर्य सत्य, दुःख निरोध मार्ग : कारण के रहने पर ही कार्य उत्पन्न हो सकता है। यदि दुःख के कारण को ही नष्ट कर दिया जाय तो निश्चय ही दुःख निरोध सम्भव है। अविद्या के न रहने पर उससे उत्पन्न द्वादशाङ्ग प्रतीत्यसमुत्पाद-चक्र भी नहीं रहेगा। उसका जीवन में चलना निश्चय ही बन्द हो जाएगा। जीव निश्चय ही मुक्त हो जाएगा। यही दुःख निरोध है। तृष्णा के क्षय होने पर जो अनासक्ति रूप निविकल्पावस्था आ जाती है। यही निर्वाण या अमृत पद है।

निर्वाण और जीवन-मुक्ति—निर्वाण या मुक्ति के सम्बन्ध में एक विचार आया है कि निर्वाण मनुष्य को मरने के बाद मिलता है जबकि ज्ञान जीते जी मिल जाता है। जो लोग अज्ञान से मुक्त मानते हैं उनके यहाँ जीवन रहते निर्वाण या मुक्ति मान्य है। साख्य, योग, न्याय, वेदान्त यहाँ तक कि जैन धर्म में भी मुक्ति जीते जी मानी है। इसका कारण यह है कि जब 'तत्वज्ञान' और 'ब्रह्मज्ञान' को मुक्ति का कारण मानते हैं तो उसकी प्राप्ति हो जाने पर मुक्ति शीघ्रातिशीघ्र हो ही जानी चाहिए। बुद्ध ने भी दुःख और दुःख समुदाय को जान लेने पर दुःख निरोध को अवश्यकारी माना है। अतः बौद्ध जीवन-मुक्त के सिद्धान्त को मानते हैं।[11]

जीवनमुक्त और नैष्कर्म्य—जीवन मुक्त व्यक्ति इच्छा, अनिच्छा प्राप्त पदार्थों का उपभोग करते हुए भी राजा जनक के समान जीवनमुक्त रहता है। दैनिक कर्म उसके बन्धन के जनक नहीं हैं। वास्तव में सांसारिक पदार्थों में आसक्ति ही अब जीवन-मुक्ति में बाधक बनती है। रामदूत मिश्र जी के हमारे कर्म भव या जन्म के कारण मूल कर्म मूल ए बीजों के समान भविष्य के जन्म के उत्पादन में सर्वथा असमर्थ हो जाते हैं। पुण्य का निरोध हो जाता है।

जीवनमुक्त और नैष्कर्म्य—जीवनमुक्त व्यक्ति भोग्य पदार्थों का उपभोग करते हुए भी अनासक्ति के कारण उनसे ऊपर रहता है। जीवनमुक्त को सामाजिक कार्यों में योगदान करना चाहिए। यही नहीं उस विषय पर बौद्ध दर्शन में कुछ निर्देश भी दिया गया है। दुःख लोकैषणा से दूर रहने के लिए ही प्रेरणा हित किया गया है। गीता ने अवश्य लोकसंग्रह की दृष्टि से सामाजिक कर्मों के अनुष्ठान के लिए प्रेरणा दी है। बुद्ध ने भी निर्वाण प्राप्त करने के अनन्तर जीवन-मुक्त ही जोगे पर भी सामाजिक कार्य किए। ये कार्य उन्होंने 'सम्पुटदया' से प्रेरित होकर ही किया। इस प्रकार के कार्यों में रत रहना कर्मों से नितान्त विरत होने से बौद्ध धर्म में अधिक अच्छा माना गया है।[12]

चतुर्थ आर्य सत्य- दुःख-निरोध मार्ग- इस आर्य सत्य के आठ मार्ग हैं।

1. सम्यक् दृष्टि (सम्यक् दृष्टि)—जीव के बन्धन का कारण अविद्या है। इसका नाश विद्या से ही सम्भव है। केवल निर्वाण कह देने मात्र से काम नहीं चलता है। आत्मा और अनात्मा के सम्बन्ध में जो गलत विचार जड़ जमा लेते हैं, वे ही हमारे जन्म-मृत्यु रूप दुःख के कारण हैं।

उस विपरीत ज्ञान का उन्मूलन 'श्रेष्ठ ज्ञान' से ही हो सकता है। वस्तुओं और जीवों का यथार्थ रूप दुःख है। दुःख को दुःख समझना ही सम्यक दृष्टि है।[13]

2. सम्यक संकल्प (सम्यक संकल्प)—जिस प्रकार सुचिन्तित वैद्य द्वारा दी गयी औषधि रोग निवारण नहीं कर सकती। उसी प्रकार जरा-मरण के रोग से ग्रस्त मानव के लिए संसार को दुःख रूप समझने से ही मुक्ति मिल सकती है। दुःख का अन्त तो सांसारिक सुखदेय वस्तुओं को मिथ्या या दुःखद समझने से ही सम्भव है। अतः दुःख निरोध में विशेष स्थान 'सम्यक संकल्प' का है।[14]

3. सम्यक वाचा—मनुष्य किसी भी कार्य को करने के लिए एक मानस व्यापार करता है। यदि कोई यह कहे कि- "मैंने दृढ़ संकल्प कर लिया है" तो इसके मानने का कोई ग्रन्थ अभी नहीं बना है। हमें उसका ज्ञान कुछ आधारों पर अनुमान से ही होता है। हम संकल्प की सत्यता और असत्यता का प्रत्यक्ष नहीं कर सकते हैं।[15] यह संकल्प वाणी द्वारा ही व्यक्त होता है। बौद्ध मत है कि हमें सम्यक वाचा से ही संकल्प करना चाहिए। इसके लिए सत्य वाणी का संयमन परमावश्यक है।

4. सम्यक कर्मान्त (सम्यक कर्मान्त)—वाणी के बाद कर्म द्वारा संकल्प की अभिव्यक्ति होती है। हिंसा, असत्य, चोरी, व्यभिचार तथा इन्द्रियों की लुप्तता से बचा बचाकर ही कार्यों को करना चाहिए। उसी का नाम 'सम्यक कर्मान्त' है।[16]

निष्कर्ष- बौद्ध धर्म के इन सिद्धान्तों का विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न अर्थ किया है। फ्रेंच प्रो. डी. लावेली पौसिन, जो एक बौद्ध दर्शन के प्रौढ़ विद्वान कहे जाते हैं, के अनुसार पालि ग्रन्थों में कहीं-कहीं पर प्रयुक्त 'निब्बान' का अर्थ आनन्दमय दशा, शुद्ध शून्यता, एक अकिन्तनीय सत्ता अथवा परिवर्तनातीत दशा के रूप में आभासित होता है। उसने विज्ञापन फ्रेंडर 'प्रतिसिद्धस पालिटेक्स्ट सोसाइटी जर्नल' (1905) में लिखते हैं कि बुद्ध के विचारानुसार जो लोग मृत्यु के अनन्तर विश्वात्मा के साथ तादात्म्य संबंध स्पष्ट होता है।

सन्दर्भ सूची

1. चन्द्रधर शर्मा, भारतीय दर्शन, मोतीलाल बनारसीदास वाराणसी, दिल्ली, 2004, पृ० 45 (भूमिका)
2. वही, पृ० 45-46.
3. माधवाचार्य, सर्वदर्शन संग्रह, चौखम्बा विद्या-भवन, वाराणसी-1, सन् 1964, पृ० 60,
4. डॉ० श्रीकान्त पाण्डेय, भारतीय दर्शन, साहित्य मण्डल, सुभाष बाजार मेरठ, सन् 1986, पृ० 117.
5. वही, पृ० 117
6. डॉ० नरेन्द्र देव सिंह शास्त्री, डॉ० हरि दत्त शास्त्री, साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ, सन् 1973, पृ० 105.
7. माधवाचार्य, सर्वदर्शन संग्रह, पृ० 30
8. नरेन्द्र देव सिंह शास्त्री, भारतीय दर्शन, पृ० 107
9. वही, पृ० 107.
10. वही, पृ० 108.
11. वही, पृ० 118. श्रीकान्त शास्त्री, भारतीय दर्शन, पृ० 118.
12. डॉ० नरेन्द्र देव सिंह शास्त्री, भारतीय दर्शन, पृ० 109.
13. वही, पृ० 110.
14. वही, पृ० 117
15. वही, पृ० 119
16. वही, पृ० 125

सहायक आचार्य

दयाल सिंह सांध्य महाविद्यालय

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

रामचरितमानस में सीता और शबरी की संवेदनशील भूमिकाएँ

डॉ. सुनीता सिंह

शोध सारांश- सीता और शबरी की संवेदनशील भूमिकाओं पर विचार करने से पूर्व सीता तत्व और शबरी की सीता के राम के प्रति अनन्या भक्ति के सम्बन्ध में विचार करना परमावश्यक है; क्योंकि इनकी संवेदनशील भूमिकाओं की ये जननी हैं। सीता तत्व का विवेचन गोस्वामी तुलसीदास जी ने परमप्रभु परमेश्वर के प्रादुर्भाव के प्रसंग में विवेचन किया है।

बीज शब्द- अनन्या भक्ति, लीला स्वरूप, राम-भक्ति, प्रेम संवेदना, परमपद, दिव्यता।

शोध आलेख- सीता तो परमप्रभु की अभिन्न अंग हैं। सीता-तत्व का स्वरूप वर्णन रामचरितमानस के बालकाण्ड में इस प्रकार है—

वाम भाग सोभति अनुकूला। आदिसक्ति छबिनिधि जगमूला।।
जासु अंस उपजेहिं गुनखानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी।।
भृकुटि बिलास जासु जग होई। राम वाम दिसि सीता सोई।।[1]

इन तीन चौपाइयों में महाशक्ति स्वरूप सीता-तत्व का स्वरूप वर्णन करते हुए प्रथम चौपाई के आरम्भ में 'वाम भाग' शब्द लिखकर तथा तीसरी चौपाई के अन्तिम चरण में 'वाम दिसि' शब्द का सम्पुट लगाकर जो ऐश्वर्य वर्णन किया गया है, उसका तात्पर्य यह है कि श्रीसीता जी श्रीपरमप्रभु से सदैव अभिन्न स्वरूपा हैं।[2]

"बालकाण्ड के अन्तर्गत सती-मोह-प्रसंग में जब सतीजी श्रीराम जी की परीक्षा ले लज्जित होकर शिवजी के पास लौट कर आ रही थीं, उस समय लीला स्वरूप में यद्यपि श्रीसीता जी का रावण द्वारा हरण तथा अनलवास के द्वारा अन्तर्धान होने से स्पष्ट; श्रीरामचन्द्र जी के साथ वियोग दीखता था तथापि मार्ग में अखण्ड अभिन्न श्रीसीता जी का दर्शन श्रीराम जी के साथ-साथ सती को होता आ रहा था।[3]

"सतीं देख कौतुक मग जाना। आगे रामु सहित श्री भ्राता।।
फिरि चितवा पाछें प्रभु देखा। सहित बंधु सिय सुंदर बेषा।।[4]

"सती विधात्री इंदिरा देखीं अमित अनूप।
जेहिं जेहिं बेष अजादि सुर तेहि तेहि तन अनुरूप।।"[5]

निश्चय ही श्रीसीता जी के देवत्व में ही उनकी संवेदनशील भूमिकाएँ छिपी हुई हैं। श्रीराम और श्रीसीता मानव-मानवी रूप में थे अतः उनकी संवेदनशील भूमिकाएँ और संवेदनाएँ संयुक्त हो गयीं हैं।

शबरी की संवेदनशील भूमिकाएँ उनकी राम-भक्ति से अनुस्यूत हैं। शबरी की भक्ति श्रीराम के शबरी आश्रम पधारने से पूर्व ही चल रही थी। उसके रोम-रोम में राम बसे हुए थे। जब श्री राम उसके आश्रम में पधारते हैं तो वह उनके चरणों पर गिर जाती है। गृधराज को मोक्ष देने के बाद श्रीराम शबरी धाम के आश्रम जाते हैं, तब शबरी की भक्ति देखते ही बनती है।

"ताहि देख गौतम उदारा। सबरी के आश्रम पगु धारा।।
सबरी देखि राम गृह आए। मुनि के वचन समुझि जियँ माया।।
सरसिज लोचन बाहु बिसाला। जटा मुकुट सिर उर बनमाला।।
स्याम गौर सुंदर दोऊ माई। सबरी परी चरन लपटाई।।"[6]

"श्रीशबरी जी नौ प्रकार की भक्तियों की प्रत्यक्ष मूर्ति थीं। उसका परिणाम यह हुआ कि जो गति बड़े-बड़े सन्त-महर्षियों को प्राप्त नहीं होती वह शबरी को प्राप्त हुई। इसका दर्जा मोक्ष से भी ऊपर का है।

श्रीसीता की संवेदनशील भूमिकाएँ- सीता की संवेदनशील भूमिका गौरीपूजन के समय श्रीराम के वाटिका निहार से होती है। श्रीराम की शोभा को देख कर सीता जी उनके रूप पर मुग्ध हो जाती हैं–

" चितवति चकि तनहूँ दिसि सीता। कहाँ गयेऊ नृप किसोर मन चिंता।।
जहँ बिलोक मृग साबक नैनी। जनु तहँ बरसि कमल सित स्रेनी।।
लता ओट तब सखिन लखाए। स्यामल गौर किसोर सुहाए।।
देखि रूप लोचन ललचाने। हरषे जनु निज निधि पहिचाने।।
थके नयन रघुपति छबि देखी। पलकन्हि हूँ परिहरीं निमेषा।।
अधिक सनेह देह भै भोरी। सरद ससिहि जनु चितव चकोरी।।
लोचन मग रामहि उर आनी। दीन्हे पलक कपाट सयानी।।"[7]

श्रीराम को अपलक देखना, रघुवर की छवि को देखकर नयनों का थकना, स्नेह से देह को भुला देना, चन्द्र चकोरी जैसी स्थिति हो जाना, नैनों के मार्ग से राम को हृदय में बसाकर नैनों के पलक रूपी कपाटों को बन्द कर लेना–अहा। कैसी मुग्धकारी प्रेम संवेदना है सीता की। यह सीता की विनम्रता की स्पष्ट सूचक है।

जब श्रीराम को वन गमन का आदेश दिया जाता है तो सीता की महती संवेदनशील भूमिका दृष्टिगोचर होती है। राम को चिन्तित देखकर श्री सीता जी काँपने लगती हैं और शोक संतप्त पति को देखने लगती हैं। पति के प्रति ऐसी संवेदना कब-कहाँ देखी गयी है?

"अथ सीता समुत्पत्य वेपमाना च तुं पतिम्।
अपश्यद् व्याकुलां सन्तं चिन्ताव्याकुलितेन्द्रियं।।"[8]

(रामायण अरण्यकाण्ड 26/6)

श्रीसीता श्रीराम के साथ वन में चलने का आग्रह करती हुई कहती हैं कि नारियों के लिए इस लोक और परलोक में एक मात्र पति ही आश्रय देने वाला होता है। रघुनन्दन यदि आप आज ही वन की ओर प्रस्थान कर रहे हैं तो मैं भी राहों के कुश और काँटों को कुचलती हुई आप के साथ चलूँगी–

"यदि त्वं प्रस्थितो दुर्गं वनगहनं राघव।
अग्नस्ते गामिष्यामि भृदग्नती कुशकण्टकान्।।"[9]

(रामायण अरण्यकाण्ड 27/7)

आप मुझे पीने से बचे जल के समान मुझे निःशंक होकर साथ ले चलिए। मैंने कोई ऐसा पाप नहीं किया है जिससे आप मुझे त्याग दें। सीता की पति के प्रति यह संवेदनशील भूमिका स्पृहणीय है–

"इहापि रोमं बहिष्कृत्या मुक्तभोगमि वेदकम।
न वीर वि सुहृद् ; पापं मयि न विद्यते।।"[10]

(रामायण अरण्यकाण्ड 27/8)

परिवार के प्रति भी सीता अत्यधिक संवेदनशील हैं। वे भरत और शत्रुघ्न को अपने पुत्रों से भी अधिक प्रिय मानती हैं। वे आगे कहती हैं कि, "हे पुरुषसिंह रघुनन्दन! आपके बिना मैं स्वर्गलोक भी पसंद नहीं करूंगी।"

"स्वर्गोऽपि च विनाकर्षे गतिवा यदि राघव।
त्वया बिना न गच्छेयं नाहं तदपि रोचये।।"[11]

(रामायण अरण्यकाण्ड 27/21)

वे कहती हैं कि—"मैं आपकी अर्धांग पतिव्रत्य का पालन करती हूँ, आपके वियोग के भय से दीन हो रही हूँ तथा आपके सुख- दुःख में समान हाथ बटाने वाली हूँ। अतः आप अवश्य ही मुझे साथ ले चलिए।"

"भक्ता पतिव्रता दीना मां समां सुखदुःखयोः।
न नेतुमहसि काकुत्स्थ समानसुखदुःखिनीम्।।"[12]

(रामायण, अरण्यकाण्ड 27/20)

वे पति के साथ जाने के लिए अपने रेशमी वस्त्र उतार कर वल्कल वस्त्र धारण करती हैं। यह देखकर राजा दशरथ अत्यधिक दुःखी होते हैं तो राजा दशरथ कैकेयी पर अत्यधिक क्रुद्ध होते हैं। इसके बाद उन्हें वल्कल वस्त्रों को उतरवाकर सुन्दर वस्त्राभूषण पहनाये जाते हैं और वे वन को जाने वाले रथ पर आरूढ़ हो जाती हैं।

"तं रथं सूर्यसंकाशं सीता हृष्टेन चेतसा।
आरुरोह वरारोहा कृत्यालंकारमात्मनः।।"[13]

(रामायण अरण्यकाण्ड 40/13)

जब सीता, राम और लक्ष्मण वन में पहुँच जाते हैं तो सीता श्रीराम से निरपराध प्राणियों को न मारने और अहिंसक धर्म अपनाने का अनुरोध करती हैं। प्राणियों के प्रति सीता की संवेदनशीलता स्पृहणीय है। वे कहती हैं कि आप ऋषियों की रक्षा के लिए दुराचारियों के नाश की प्रतिज्ञा करके वन में आये हैं। आप बिना बैर के किसी प्राणी का वध नहीं करेंगे। बिना अपराध के किसी को मारना संसार के लोग अच्छा नहीं समझेंगे।

"बुद्धिपूर्वं बिना हन्तुं राक्षसान् दण्डकाश्रितान्।
अपराधान् विना हन्तुं न को वीरं गर्हयेत्।।"[14]

(रामायण अरण्यकाण्ड 9/25)

श्रीसीता भारतीय संस्कृति के प्रति भी संवेदनशील थीं। जब रावण साधु का वेश धारण कर उनकी कुटिया पर आता है तो वे उसका आतिथ्य सत्कार करने के लिए भोजन के लिए आमंत्रित करती हैं—

"द्विजातिवेषेण समीक्ष्य मैथिली सगागतं पात्रकुशग्रहधारिणम्।
आश्रमगुर्दृष्ट्वमुपागतमूना द्वयज्न्त्रयद् ब्राह्मणागतं तथागतम्।।"[15]

(रामायण अरण्यकाण्ड 46/35)

समस्त 'रामचरितमानस' में भी अनेक प्रसंगों में श्री सीता को अत्यधिक संवेदनशील बताया गया है। सीता तो रावण को दक्षिणा देती हैं किन्तु रावण उनका अपहरण कर लेता है। वे हा हा कर विलाप करने लगती हैं। वे कहती हैं कि मेरी इस विकट विपत्ति को प्रभु को न बताइयेगा। सीता के विलाप को सुनकर चराचर जीव अत्यधिक दुखी हो जाते हैं।

"विपति भोरि को प्रभुहि सुनावा। पुरोडास चह रासम खावा।
सीता के विलाप सुनि माथो। भए चराचर जीव दुखारी।"[16]

और जब हनुमान जी अशोक वाटिका में पहुंचते हैं तो सीता को राक्षसियों से घिरा देखते हैं जो नाना प्रकार से उन्हें भयभीत कर रही थीं। जब वे सीता के समक्ष पहुंचते हैं तो सीता ने उनसे कही है कि हे तात कभी तो सूर्य के वंशी श्रीराम मुझ पर कृपा करेंगे। सीता अशोक वाटिका में दुःख और संवेदनशीलता से भरी हुई हैं। वे कहती हैं कि मेरी स्थिति दाँतों के मध्य जीभ के समान है—

"सुनहु पवन सुत रहनी हमारी। जिमि दसनन्हि महुँ जीभ बिचारी।
मात तात कबहुं मोहि जानि अनाथा। करिहैं कृपा मातु तुल्याथा।।"[17]

भगवान राम का भक्त जान कर सीता हनुमान के प्रति माता के समान स्नेहशील हो जाती हैं और उनसे नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगती हैं। वे कहती हैं कि वियोग रूप सागर में डूबते हुए मेरे लिए हे तात तुम जलयान के समान हो।

शबरी की नवधा भक्ति प्रसिद्ध है–

"नवधा भगति कहहु तोहि पाहीं। सावधान सुनु धर मन माहीं।
प्रथम भगति संतन कर संगा। दूसरे रति मम कथा प्रसंगा।।
गुरु पद पंकज सेवा तीसरी भगति अमान।
चौथी भगति मम गुन गन करइ कपट तजि गान।।
मंत्र जाप मम दृढ बिस्वासा। पंचम भजन सो बेद प्रकासा।
छठ दम सील बिरति बहु करमा। निरत निरंतर सज्जन धरमा।
सातवं सम मोहि मय जग देखा। मोतें संत अधिक करि लेखा।।[18]
आठवं जथालाभ संतोषा। सपनेहुं नहिं देखइ परदोषा।।
नवम सरल सब सन छलहीना। मम भरोस हियँ हरष न दीना।।
नव महुं एकउ जिन्हके होई। नारि पुरुष सचराचर कोई।।
सोइ आतिसय प्रिय भामिनि मोरें। सकल प्रकार भगति दृढ तोरें।।"[19]

इस प्रकार शबरी की नवधा भक्ति को देख कर उसे वह शक्ति प्रदान की जो योगियों के लिए भी दुर्लभ है। आज शबरी को वह सुलभ हुई।

"जोगि बृंद दुर्लभ गति जोई। तौ कहुं आजु सुलभ भई सोई।"[20]

सारांशतः सीता की संवेदनशील भूमिका उनके स्वभाव में उनकी दिव्यता के कारण है और शबरी की संवेदनशील भूमिका में श्रीराम के प्रति अगाध भक्ति और गुरुकृपा समाहित है। श्री सीता जन्म से लेकर अन्त तक दिव्यता से भूमिका करती रहीं। उनका अग्नि में प्रवेश और ब्रह्मास्त्र अग्नि से बाहर लाना तथा अन्तिम समय पृथ्वी द्वारा दिव्य सिंहासन पर बैठा कर अपने साथ ले जाना उनकी दिव्यता के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। परिवार और पति के प्रति संवेदनशील व्यवहारगत भूमिकाओं में भी उनकी दिव्यता अन्तर्निहित है। शबरी की नवधा भक्ति में दिव्यता है जिससे उसे श्रीराम ने परमपद अर्थात अपना धाम प्रदान किया।

सन्दर्भ सूची

1. गोस्वामी तुलसीदास, रामचरितमानस (गुटका संस्करण), गीताप्रेस गोरखपुर, बालकाण्ड, सम्वत् 2019, पृ०117-18.
2. अयोध्या दास "दीन", मानस- रहस्य, गीताप्रेस गोरखपुर, संवत् 2054, पृ०182.
3. वही, पृ०182
4. गोस्वामी तुलसीदास, रामचरित मानस (गुटका), बालकाण्ड, पृ०67.
5. वही, पृ०67
6. वही, सुंदरकाण्ड अरण्यकाण्ड, पृ०431.
7. वही, बालकाण्ड, पृ०162-63.
8. वाल्मीकि रामायण, प्रयाग खण्ड, गीताप्रेस गोरखपुर, संवत् 2082, पृ०309.
9. वही, पृ०312
10. वही, पृ०312
11. वही, पृ०313
12. वही, पृ०317

13. वही, पृ०349
14. वही, पृ०571
15. वही, पृ०663
16. रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड, पृ०427 (गुटका)
17. वही, सुन्दरकाण्ड, पृ०467
18. वही, पृ०470
19. रामायण द्वितीय खण्ड, सुन्दरकाण्ड पृ०101
20. वही, पृ०145

डॉ. सुनीता सिंह
मथुरा

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

श्री राम और हनुमान की वीरतापूर्ण और भक्तिपूर्ण भूमिकाएँ

डॉ. राजेन्द्र दवे

जहाँ तक श्रीराम की वीरता और भक्ति का प्रश्न है, वह उनके विष्णु अवतार से ही प्रकट हो आती है। यदि राम अवतारी हैं और राक्षसों के विनाश के लिए जन्म लिया है तो यह स्वतः सिद्ध है कि वे वीर तो होंगे ही। वीरता के बिना यह कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता। जहाँ भगवान शंकर श्रीराम के परम भक्त हैं, वहीं श्रीराम भी उनके परम भक्त हैं। उनके नाम के दोनों अक्षर, रकार और मकार तक की अमित माहिमा है। ऐसे प्रभु ने महिभार को दूर करने के लिए जन्म लिया था–

तेहि अवसर भंजन महि भारा।
हरि रघुबंस लीन्ह अवतारा।।[1]

रामनाम की महिमा का वर्णन करते हुए तुलसीदास यहाँ तक कहते हैं कि हे मनुष्यो, तुम रामनाम रूपी दीपक को शरीर रूपी दीपक के द्वार पर रखो। संसार और तुम्हारे अन्तर्मन में तभी उजाला होगा।

"राम नाम मनिदीप धरु जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरहु, जो चाहत उजियार।।[2]

जहाँ तक हनुमान जी का प्रश्न है तो वह भी भगवान शंकर के अंशावतार हैं। रामचरितमानस के सुन्दरकांड के प्रारम्भ में ही तुलसीदास ने हनुमान को राम भक्त और अतुलित धाम बता दिया है।

"अतुलितबलधामं हेमशैलाभदेहं
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनाम् अग्रगण्यम्।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं
रघुपतिप्रिय भक्तं वातजातं नमामि।।"[3]

श्रीराम की वीरता पूर्ण भूमिकाएँ- यदि श्रीराम की वीरतापूर्ण भूमिकाओं पर विचार करें तो तत्कालीन आदिकवि महर्षि वाल्मीकि ने बालकाण्ड के 28वें सर्ग में श्रीराम को विश्वामित्र द्वारा अस्त्रों द्वारा संहार बताना तथा अन्यान्य अस्त्रों के उपयोग करने के द्वारा श्रीराम की वीरतापूर्ण भूमिका का निर्देश कर दिया था। जब विश्वामित्र ने श्रीराम को सत्यवान्, सत्यकीर्ति, रमस, प्रतिहारतर, प्राङ्घ्मुख, अवाङ्घ्मुख, लक्ष्य, अलक्ष्य, दृढ़नाम, सुनाम, दशाक्ष, शतवक्त्र, दशशीर्ष, दशोत्तर, पद्मनाभ, महानाम दुन्दुनाभ, ज्योतिष, शकुन, नैरास्य, विमल, दैत्यनाशक, योगन्धर और विनिद्र, शुचिबाह, महाबाह, निष्कलि, विरुच, सार्चिमाली, धृतिर्माली, वृत्तिमान, रुचिर, पिंय, सौमनस, विद्युत, मकर, परवीर, रति, धन, धान्य, कामरूप कामरूचि मोहआवरण, जृम्भक, सर्वनाथ, पन्थान और वरुण आदि को प्रजापति कृशाश्व के पुत्र बताए और और राम से ग्रहण करने के लिए कहा। उन्होंने बताया कि ये सभी परम तेजस्वी और इच्छानुसार रूप धारण करने वाले हैं।[4] श्रीराम ने वीरता का प्रत्यक्ष प्रदर्शन शिवजी के धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाकर और उसे भंग कर किया था। सीता स्वयंवर में जब सभी राजा धनुष भंग करने में असमर्थ हो गये थे तब श्री राम ने पलक झपकते उसे उठाकर भंग कर दिया था।

वाढमित्यब्रवीद राजा गुनिश्च समभाषता
लीलया से धनुर्मध्ये जग्राह वचनान्मुनेः ॥
पश्यतां नृसहस्राणां बहूनां रघुनन्दनः।
आरोपयत स धर्मात्मा सलील मित्र तद्धनः ॥[5]

रामा० बाल० का. 67/1576)

राजा जनक विश्वामित्र से बोले कि 'भगवन! मैंने दशरथनन्दन श्री राम का पराक्रम अपनी आँखों से देख लिया है। महादेव जी के धनुष को चढ़ाना -यह, अत्यन्त अद्ध्भुत अचिन्त्य और अतर्किक घटना है—

भगवन् दृष्टवीर्यो मे शमो दशरथात्मजा
अत्यद्‌भुतमचिन्त्यं च अतर्कितमिदं मया।"[6]

रामा बा. का० 67/21

अरण्यकाण्ड में श्री राम ऋषियों की रक्षा की प्रतिज्ञा करते हैं। वे सीता जी से कहते हैं - हे जनक नन्दिनि! दण्डकारण्य में ऋषियों की (मेरी रक्षा करो) यह बात सुनकर मैंने पूर्ण रूप से उनकी रक्षा करने की प्रतिज्ञा की है।

रक्ष नस्त्वं सह भ्राता त्वन्नाथा हि वयं वने
गया चौत द्वचे दण्डकारण्ये संश्रुतं जनकात्मजा[7]

(बा०रा० अबका०, 10/ 16,177)

जब खर ने चौदह राक्षसों को श्रीराम पर आक्रमण करने के लिए भेजा तो श्रीराम ने कहा कि तुम सब ऋषियों की हत्या करने वाले हो। मैं तुम्हारा बध करने के लिए ही यहाँ आया। जब राक्षस श्री राम पर आयुध छोड़ने लगे तब भी राम ने अत्यधिक कुपित होकर शान पर चढ़ा कर तेज किए हुए सूर्य तुल्य तेजस्वी चौदह नाराच हाथमें लिया। फिर धनुष लेकर उस पर उन बाणों को रखा और कान तक खींच कर राक्षसों को लक्ष्य करके छोड़ दिया। मानो इन्दु ने वज्रों का प्रहार किया हो।

"जगाह परम कृद्धरश्चतुर्दिश शिलालिशि तान ॥
वृहीत्वा धनुरायं यय्य लक्ष्यणविदिश राक्षसोन ॥"[8]

(रामा० अ०का० 20/19)

राक्षस कुपित हुए जब श्री राम पर बाणों की वर्षा करने को लगे तब श्री राम ने सूक्ष्म और वृघात करके उन राक्षसों पर परम तेजस्वी गान्धर्व नामक अस्त्र का प्रयोग किया।

"स कल्या भैरवं नादमस्त्र ॥ परमभास्वरमा ॥
संयोजयद्य गान्धर्व राक्षसेषु महाबल॥"[9]

(रामा० अ०का० 25/37)

श्रीराम के बाणसमुदाय से आकाश में अंधकार छा गया। एक ही समय बाणों द्वारा अदुयन्त घायल हो गिरे हुए बहुसंख्यक राक्षसों की लाशों से वहाँ की भूमि पट गयी।

"युगपय तमा तमेलेश च युगपत्त च्च हतेभ्नैशम।
युगवप्पति तैनैच वहिकिणो वसुधाभवत प्रत्व ॥"[10]

(रामा० अ०का० 25/41)

श्रीराम ने कुम्भकर्ण के पर्वत के समान तथा हिलते हुए मनोहर कुण्डलों से अलंकृत सुशोभित मस्तक को धड़ से अलग कर दिया।

"स तन्महापर्वतकूटसन्निभं
सुवर्णदं चारु च कुण्डलम।

चकर्त रक्षोऽधिपते; शिरस्तदा
यथेत वज्रस्य पुरा पुरन्दरः।।"[11]

(रामा० युद्ध काण्ड 67/18)

यदि श्रीराम ने अवतार न लिया होता तो रावण को भी मारने वाला कोई भी नहीं था। जब राम ने रावण को मारने के लिए बाण का संधान किया तो सारी पृथ्वी डोलने लगी। राम ने अत्यधिक कुपित होकर रावण पर बाण चला दिया जो रावण की छाती पर लगा। शरीर का अन्त कर देने वाले उस वज्रतुल्य बाण ने दुष्टात्मा रावण के हृदय को विदीर्ण कर डाला।

"स विव्याध महावेग; शरैरान्तकः परः।
बिभेद हृदयं तस्य रावणस्य दुरात्मनः।।"[12]

(रामा० युद्ध काण्ड 108/18)

श्री राम की भक्तिपूर्ण भूमिका –श्रीराम की प्रथम भूमिका तो माता-पिता के प्रति सम्मान में दिखाई देती है। जब वे गुरुकुल में विद्याध्ययन कर करके विद्या, विनय और शील जैसे गुणों से युक्त हो जाते हैं तो जिस प्रकार से नगर के लोग सुशासन जैसा ही व्यवहार करते हैं और प्रातः उठकर माता-पिता की सेवा नवाते हैं।

"प्रातकाल उठि कै रघुनाथा।
मातर-पिता गुरूं नावहिं माथा।।"[13]

माता-पिता और गुरु के साथ ही उनकी भक्ति भगवान शंकर में अटूट थी।

जब श्रीराम ने रावण पर चढ़ाई की तो स्वयं शिवजी भगवान का लिंग स्थापित कर भगवान शिव का पूजन किया। शिवजी के सामने झुककर कहा "शिवजी के समान मुझे कोई प्रिय वही।"

हनुमान की वीरतापूर्ण भूमिका –जब श्रीराम सुग्रीव से मिलने आए हुए, तब कि किष्किंधा का ओर बढ़ते हुए राम और लक्ष्मण को देखकर डरकर भागे। वे उनको पहचान नहीं पाए थे। हनुमान जी विप्र रूप धारण कर सुग्रीव आगमन के लिए उनके पास पहुँचे।

हनुमान जी तो श्रीराम को पहचानते ही थे, वे प्रेम की मूर्ति थे ही। हनुमान ने उनसे पूछा "कि आप श्यामल और गौर वर्ण शरीर के कौन हैं? स्वामी राजाधिराज करके कहते हैं कि आपके पद कोमल हैं और आप फिर क्यों इस कठोर भूमि में चलकर कष्ट सह रहे हैं। आप का शरीर कोमल और सुन्दर है। इस वन के ताप और वायु के ताप को कैसे सहन कर रहे हैं। क्या आप क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र में से कोई एक हैं या आप और नारायण दोनों हैं।"

को तुम्ह स्यामल गौर सरीरा। छत्री रूप फिरहु बन बीरा ॥
कठिन भूमि कोमल पद गामी। कवन हेतु बिचरहु बन स्वामी॥[14]

सुग्रीव जानते थे कि हनुमान जहां वीर हैं वहीं बुद्धिमान भी हैं। अतः वे उनका भेद जान ही लेंगे। यदि युद्ध की स्थिति आती है तो भी हनुमान नीति से उन्हें समझा ही लेंगे। हनुमान जी ने लंका जाते समय बुद्धि और वीरता के बल पर ही सुरसा को जीता था–

जोजन भरि तेहिं बदनु पसारा। कपि तनु कीन्ह दुगुन बिस्तारा ॥
सोरह जोजन मुख तेहिं ठयऊ। तुरत पवनसुत बत्तिस भयऊ॥[15]
जस जस सुरसा बदनु बढ़ावा। तासु दून कपि रूप देखावा॥
सत जोजन तेहिं आनन कीन्हा। अति लघु रूप पवनसुत लीन्हा।।[16]

जब माता सीता का हरण हुआ, तब हनुमान जी ने ही अपनी बुद्धिमत्ता और शक्ति से समुद्र लांघकर लंका में प्रवेश किया। उन्होंने माता सीता को श्री राम की मुद्रिका (अंगूठी) सौंपकर उनका ढाढस बंधाया और श्री राम को माता सीता का संदेश लाकर दिया। वे दोनों के बीच अटूट विश्वास की कड़ी बने।

अहंकार का नाश- जब माता सीता ने उन्हें मोतियों की कीमती माला भेंट की, तो हनुमान जी ने उसे सिर्फ इसलिए

तोड़ दिया क्योंकि उसमें राम का नाम या छवि नहीं थी। जब लोगों ने इस पर सवाल उठाया, तो उन्होंने अपना सीना चीरकर दिखा दिया कि उनके हृदय में साक्षात राम और सीता वास करते हैं। यह प्रसंग दर्शाता है कि हनुमान जी ने अपने अहंकार (मन) को पूरी तरह से विलीन कर दिया था। इस दोहे से ठीक पहले हनुमान जी विभीषण जी से कहते हैं कि मैं तो स्वभाव से चंचल वानर हूँ, जिसका सुबह-सुबह नाम लेने से उस दिन भोजन तक नसीब नहीं होता। वे विभीषण जी को समझा रहे हैं कि जब प्रभु श्रीराम मुझ जैसे साधारण और वानर रूपी 'अधम' पर इतनी असीम कृपा कर सकते हैं, तो आप तो मन से भक्त हैं, आप पर कृपा क्यों नहीं करेंगे। यह हनुमान जी की परम विनम्रता और प्रभु के प्रति अनन्य भक्ति को दर्शाता है।

अस मैं अधम सखा सुनु मोहू पर रघुबीर।
कीन्हीं कृपा सुमिरि गुन भरे बिलोचन नीर॥[17]

हे सखा! सुनिए, मैं ऐसा अधम हूँ, पर श्री रामचंद्रजी ने तो मुझ पर भी कृपा ही की है। भगवान के गुणों का स्मरण करके हनुमान जी के दोनों नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का) जल भर आया।

हनुमान जी की भक्तिपूर्ण भूमिका—हनुमान जी श्रीरामचन्द्र जी के परम भक्त थे। जब सीता ने यह कहा कि हनुमान तुम श्रीराम के दूतों के नाते कैसे हो। तुम्हारा क्या काम है। मैं तुम से अपनी बातें नहीं कहूँगी। अब सीता का सन्देश लेकर हनुमान अशोक वाटिका पर लंका में जहाँ रघुवंश सीता की स्मृति में शिला पर बैठकर ध्यानमग्न हैं। वे वह जाकर उनके पैरों पर गिर जाते हैं।

राम कपिन्ह जब आवत देखा। किएँ काजु मन हरष बिसेषा ॥
फटिक सिला बैठे द्वौ भाई। परे सकल कपि चरनन्हि जाई ॥[18]

श्री रामजी ने जब वानरों को लंका से कार्य (माता सीता की खोज का समाचार लेकर) पूर्ण करके आते देखा, तब उनके मन में अत्यंत हर्ष (प्रसन्नता) हुआ। दोनों भाई (श्री राम और लक्ष्मण) स्फटिक शिला पर बैठे थे, और सभी वानर ने जाकर उनके चरणों में प्रणाम किया (उनके चरणों पर गिर पड़े)। श्रीराम ने जब उनके कार्य की सराहना की और उन्हे देखकर उन्हें हृदय से लगा लिया।

नाथ पवनसुत कीन्हि जो करनी। सहसहुँ मुख न जाइ सो बरनी॥
पवनतनय के चरित सुहाए। जामवंत रघुपतिहि सुनाए॥[19]

हे नाथ! पवनपुत्र हनुमान ने जो करनी की, उसका हजार मुखों से भी वर्णन नहीं किया जा सकता। तब जाम्बवान ने हनुमान जी के सुंदर चरित्र (कार्य) श्री रघुनाथजी को सुनाए॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि जहाँ श्रीराम ने नारायम से नर रूप धारण किया हुआ, वहीं हनुमान जी ने श्रीराम का दूत बनकर उनकी आज्ञा का पालन किया। श्रीराम ने वनवास में मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में संसार के लिए एक उदाहरण प्रस्तुत किया। यदि आज का समाज श्रीराम की वीरता, करुणा और हनुमान की भक्ति तथा एकनिष्ठा का अनुसरण करता है तो निश्चय ही यह संसार सुखी हो सकता है। हनुमान की वीरता और भक्ति यदि आज के मानव में हो तो आततायियों का संसार से समूल उन्मूलन हो जाएगा।

संदर्भ

1. गोस्वामी तुलसीदास, रामचरितमानस, गीता प्रेस गोरखपुर (उत्तर प्रदेश), संवत 2060, पृ0 64
2. वही, पृ0 48
3. वही, पृष्ठ 452
4. श्रीवाल्मीकि, रामायण, प्रथम खण्ड, गीता प्रेस गोरखपुर (ब्लॉक - 4 - 10) संवत 2003 ई. बाल काण्ड, अष्टम सर्ग, संवत 2008, पृ 21

5. वही, पृ0 198
6. वही, पृ0 198
7. वही, पृ0 593
8. वही, पृ0 601
9. वही, पृ0 612
10. वही, पृ0 613
11. वही, रामायण तृतीय खण्ड, पृ0 452
12. वही, पृ0 596
13. महर्षि वाल्मीकि रामायण (उत्तर), पृ0 198
14. वही, पृ0 67
15. वही, पृ0 68
16. वही, किष्किन्धाकाण्ड, पृ0 442
17. वही, सुन्दरकाण्ड, पृ0 463
18. वही, पृ0 471
19. रामायण, सुन्दरकाण्ड, पृ0 154

पूर्व उपाचार्य, संस्कृत विभाग
के.एम.आई., आगरा

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

बौद्ध धर्म और सामाजिक मूल्य दया, अहिंसा और सद्भाव

डॉ. रवीन्द्र कुमार

सार संक्षेप : बौद्ध धर्म मात्र एक दार्शनिक या धार्मिक प्रणाली नहीं है, बल्कि यह एक सशक्त सामाजिक-नैतिक जीवन पद्धति भी है। छठी शताब्दी ईसा पूर्व में भगवान बुद्ध द्वारा प्रतिपादित शिक्षाओं ने तत्कालीन समाज में व्याप्त असमानता, कर्मकाण्डीय हिंसा और सामाजिक कठोरता को चुनौती दी। इस शोध पत्र में बौद्ध दर्शन के तीन प्रमुख स्तंभों-दया (करुणा), अहिंसा और सद्भाव का सामाजिक मूल्यों के निर्माण और मानवीय सम्बन्धों के नियमन में योगदान का विस्तृत अध्ययन किया गया है। प्रस्तुत पत्र यह दर्शाता है कि कैसे ये विचार समकालीन वैश्विक समस्याओं जैसे हिंसा, सामाजिक असमानता और मानसिक अशांति के समाधान में अत्यन्त प्रासंगिक है।

1. प्रस्तावना

बौद्ध धर्म का उद्धभव उदय वैदिक कालीन जटिल कर्मकाण्डों, बलि प्रथाओं और कटोर जाति व्यवस्था की पृष्टभूमि में हुआ। सिद्धार्थ गौतम (महात्मा बुद्ध) का मुख्य उद्देश्य मानव जीवन के मूलभूत सत्य-दुःख की पहचान कनरा और उससे मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करता था।

बुद्ध का दर्शन 'केवल व्यक्तिगत मोक्ष' तक सीमित नहीं है, इसका एक गहरा सामाजिक आयाम (Social Dimension) भी है। बोद्ध धर्म का सामाजिक दर्शन मानव-केन्द्रित है, जो सामाजिक के अन्तिम व्यक्ति तक सार्वभौमिक भातृत्व और समता का संदेश पहुँचाता है।

2. बौद्ध दर्शन के सामाजिक मूल्य

बौद्ध दर्शन में सामाजिक मूल्यों का आधार 'पंचशील' और 'अष्टांगिक मार्ग' है। समाज में शांति और व्यवस्था बनाए रखने के लिए बुद्ध ने निम्नलिखित मुख्य नैतिक मूल्यों पर बल दिया-

(i) दया और करुणा-बौद्ध परंपरा में करुणा को केवल 'सहानुभूति' तक सीमित नहीं माना गया है, बल्कि यह दूसरों के दुःख को दूर करने की एक सक्रिय इच्छा है।

सक्रिय करुणा बौद्ध धर्म सिखाता है कि दूसरों के कष्टों के प्रति संवेदनशील होना ही करुणा का पहला चरण है।

दुःनिरोध का संकल्प : करुणा केवल भावुक होना नहीं, बल्कि दुःखी जन की सहायता हेतु व्यावहारिक प्रयास करना है।

(ii) अहिंसा-बौद्ध दर्शन में अहिंसा का अर्थ केवल शारीरिक चोट न पहुँचाना ही नहीं है, बल्कि मन, वचन और कर्म तीनों से किसी जीव को क्षति न पहुँचाना है।

मनसा, वाचा, कर्मणा : विचारों में हिंसा रखना भी बौद्ध दर्शन के अनुसार अकुशल कतर्म है।

जीवन मात्र के प्रति सम्मान : बौद्ध धर्म ने पशु बलि और युद्ध जैसी सामाजिक बुराइयों का विरोध करके अहिंसा

को एक सामाजिक आंदोलन का रूप दिया।

(iii) सद्भाव और मैत्री रू-मैत्री (सद्भाव) का अर्थ है बिना किसी भेद-भाव और स्वार्थ के सभी प्राणियों के प्रति प्रेम और कल्याण की भावना रखना।

'सुत्त निपात' के अनुसार बुद्ध ने कहा कि जिस प्रकार एक माँ अपने इकलौते बच्चे की रक्षा अपनी जान देकर भी करती है, उसी प्रकार मनुष्य को सभी प्राणियों के प्रति असीम मैत्री भाव रखना चाहिए।

3. बौद्ध सामाजिक मूल्यों का ऐतिहासिक प्रभाव

बौद्ध धर्म के सामाजिक मूल्यों ने न केवल प्राचीन और मध्यकालीन भारत के के सामाजिक ताने-बाने को नया आकार दिया, बल्कि संपूर्ण दक्षिणा-पूर्व और पूर्व एशिया के समाजों पर गहरा और स्थायी प्रभाव डाला। बौद्ध मूल्यों का ऐतिहासिक प्रभाव निम्नलिखित प्रमुख क्षेत्रों में देखा जा सकता है –

(i) जाति व्यवस्था और सामाजिक असमानता पर प्रहार-बौद्ध धर्म ने जन्म के आधार पर तय होने वाली जाति व्यवस्था और उच्च-निम्न के भेद को नकार दिया।

समानता का मूल्य : बुद्ध ने स्पष्ट किया कि व्यक्ति अपने 'कर्म' से श्रेष्ठ बनता है, न कि अपने जन्म से।

संघ में प्रवेश : बौद्ध संघ के द्वार ब्राह्मणों और क्षत्रियों से लेकर शूद्रों, चंडालों और वंचित वर्ग के लोगों तक सभी के लिए समान रूप से खुले थे।

(ii) स्त्रियों की स्थिति में सुधार- तत्कालीन वैदिक युग के उत्तरार्द्ध में महिलाओं की सामाजिक स्थिति में गिरावट आ रही थी। बौद्ध दर्शन ने इसमें महत्वपूर्ण बदलाव किया-

भिक्षुणी संघ की स्थापना : महाप्रजापति गौतमी के आग्रह पर बुद्ध ने महिलाओं के लिए 'भिक्षुणी संघ' की अनुमति दी, जिससे उन्हें आध्यात्मिक स्वतन्त्रता और नेतृत्व का अवसर मिला।

थेरीगाथा : बौद्ध साहित्य का 'थेरीगाथा' भाग महिलाओं द्वार रचित आध्यात्मिक अनुभवों का अनूठा संग्रह है, जो प्राचीन इतिहास में महिला अधिकारों और अभिव्यक्ति का एक दुर्लभ उदाहरण है।

(iii) अहिंसा और करुणा का राज्य व्यवस्था पर प्रभाव –बौद्ध धर्म के दो केन्द्रीय मूल्य-अहिंसा और करुणा ने केवल व्यक्तिगत जीवन को ही नहीं, बल्कि शासन प्रणाली को भी प्रभावित किया।

सम्राट अशोक का हृदय परिवर्तन -कलिंग युद्ध के नरसंहार के बाद असोक ने बौद्ध धर्म अफनाया। उसने 'धम्म' का प्रसार किया, युद्ध नीतियों का त्याग किया (भेरीघोष की जगह धम्मघोष) और पशु बलि पर रोक लगाई।

लोक कल्याणकारी राज्य : अशोक औऱ बाद के कई बौद्ध शासकों (जैसे कनिष्क और हर्षवर्धन) ने सड़कों के किनारे पड़ लगवाए, विश्रामगृह बनवाए और मनुष्यो व पशुओं दोनों के लिएओ अस्पतालों के निर्माण करवाया।

(iv) शिक्षा और ज्ञान का लोकतंत्रीकरण-बौद्ध सामाजिक मूल्यों ने शिक्षा को धर्मकांडों और विशिष्ट वर्गों के दायरे से बाहर निकालकर व्यापक समाज तक पहुँचाया।

लोकभाषा का प्रयोग : बुद्ध ने अपने उपदेश संस्कृत के बजाय आम जनता की भाषा पालि में दिए, जिससे ज्ञान पर से किसी एख वर्ग का अधिकार समाप्त हुआ।

विश्वविद्यालयों की स्थापना : बौद्ध मठ केवल पूजा स्थल नहीं, बल्कि विश्व प्रसिद्ध अध्ययन केन्द्र बने। नालंदा, विक्रमशिला और बल्लभी जैसे अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालयों ने दुनिया भर स विद्यार्थियों को आकर्षित किया।

(v) व्यापार, अर्थ व्यवस्था और वैश्विक सम्बन्ध-वैदिक काल में समुद्र यात्रा को कभी-कभी वर्जित माना जाता था, लेकिन बौद्ध धर्म ने व्यापार और यात्रा को प्रोत्साहन दिया।

व्यापारी वर्ग (सार्थवाह) का समर्थन : बौद्ध धर्म के व्यावहारिक और अहिंसक मूल्यों ने व्यापारी वर्ग के आकर्षित किया। व्यापारियों ने बौद्ध संघों को भारी दान दिया।

सांस्कृतिक और व्यापारिक मार्ग : सिल्क रोड के माध्यम से बौद्ध धर्म चीन, कोरिया, जापान, श्रीलंका और दक्षिण पर्व एशिया तक फैला। इसने भारत के इन देशों के साथ मजबूत व्यापारिक और कूटनीति सम्बन्ध स्थापित किए।

(vi) आधुनिक युग में प्रभाव (डॉ. बी. आर. आंबेडकर और नव बौद्ध आंदोलन)-बौद्ध सामाजिक मूल्यों का प्रभाव केवल इतिहास तक समित नहीं रहा, बल्कि आधुनिक भारत के निर्माण में भी इसकी महत्वपूर्ण भूमिका रही,

1956 में डॉ. भीमराव आंबेडकर ने लाखों समर्थकों के साथ बौद्ध धर्म अपनाया, उन्होंने बौद्ध धर्म के समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व के मूल्यों को भारतीय समाज के, पुनरुत्थान और दलितों के सशक्तिकरण को आधार बनाया।

भारत के राष्ट्रीय प्रतीकों (जैसे अशोक चक्र और सारनाथ का सिंह स्तंभ) में बौद्ध मूल्यों की गहरी छाप है।

4. समकालीन विश्व में प्रासंगिकता- आधुनिक युग में जहाँ तकनीकी प्रगति हुई है, वहीं सामाजिक विघटन, युद्ध और मानसिक तनाव भी बढ़ा है। बौद्ध मूल्य आज के समय में निम्नलिकित रूपों में प्रासंगिक है :

(i) अन्तरराष्ट्रीय शान्ति और कूटनीति : अहिंसा मैत्र के सिद्धान्त वैश्विक संघर्षो (जैसे युद्ध और आतंकवाद) के शांतपूर्ण समाधान में एक आर्गदर्शक की भूमिका निभा सकते हैं।

(ii) पर्यावरण संरक्षण : बौद्ध धर्म सभी जीवों के सह-अस्तित्व पर बल देता है। बुद्ध का प्रकृति-केन्द्रित दर्शन आज के वैश्विक जलवायु संकट से निपटने का नैतिक आधार प्रदान करता है।

(iii) मानसिक स्वास्थ्य : बौद्ध ध्यान पद्धतियाँ (जैसे विपश्यन) आधुनिक जीवन के तनाव, अवसाद और क्रोध को दूर करने में अत्यन्त प्रभावी सिद्ध हो रही है।

5. निष्कर्ष- बौद्ध धर्म के मूल में सामाजिक समरसता, नैतिक आचरण और जी मात्र के प्रति संवेदना। समाहित है। दया, अहिंसा और सद्‌भाव केवल धार्मिक अनुष्ठान नहीं है, बल्कि ये एक स्वस्थ और शांतिपूर्ण समाज के निर्जीव के लए व्यावहारिक औजार हैं।

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में, यदि मानव समाज इन तीन सिद्धान्तों को अपने आचरण में उतार ले, तो एक ऐसे समाज की स्थापना सम्भव है। जहाँ समानता, शान्ति और भ्रातृत्व का साम्राज्य हो।

सन्दर्भ सूची

1. अम्बेडकर, बी. आर. (1957) बुद्ध और उनका धम्म, सिद्धार्थ पब्लिकेशन, मुंबई।
2. कोशाम्बी डी. डी. (1956), प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. शर्मा, चन्द्रधर (2004), भारतीय दर्शन, आलोचनात्मक सर्वेक्षण, मोतीलाल, बनारसीदास, दिल्ली।
4. Eonze, Edward (1951) Buddhism : Its Essense and Development, Harpur - Row, Newyork.
5. Rahual Walpola (1959). What Its Buddh Taught. Grove Press, New York.
6. Sangharakshita (1987) A Survey of Buddhism. Its Doctrines and Mathods Through the Ages, Tharpu Publications, London.

डॉ. रवीन्द्र कुमार

प्राचार्य- श्री किशोरी लाल महाविद्यालय,

डहर का पुरा, सैंया, आगरा

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

भारत और श्रीलंका के अवनद्ध वाद्यों की परम्पराओं का तुलनात्मक अध्ययन

प्रो. मीरा अग्रवाल

सारांश- अवनद्ध वाद्य भारतीय उपमहाद्वीप तथा श्रीलंका की संगीत-संस्कृति के अत्यंत प्राचीन और महत्वपूर्ण अंग हैं। ऐसे वाद्य जिनके खोखले शरीर के एक या दोनों मुखों पर चमड़ा अथवा अन्य झिल्ली कसकर मढ़ी जाती है और आघात के माध्यम से ध्वनि उत्पन्न की जाती है, सामान्यतः अवनद्ध वाद्य कहलाते हैं। भारतीय संगीतशास्त्र में इन्हें प्रायः 'पुष्कर' या 'अवनद्ध' वाद्य की संज्ञा मिली है। इनका इतिहास केवल संगीत तक सीमित नहीं है; धार्मिक अनुष्ठान, नृत्य, नाट्य, युद्ध, राजकीय घोषणाएँ, लोक-संचार, सामाजिक उत्सव और सामुदायिक जीवन में भी इनकी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। भारत में अवनद्ध वाद्यों का इतिहास वैदिक साहित्य में उल्लिखित दुन्दुभि और भूमिदुन्दुभि जैसे वाद्यों से लेकर भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में वर्णित पुष्कर-परंपरा, मृदंग, पखावज, तबला, मृदंगम्, तविल, ढोलक तथा अनेक लोकवाद्यों तक फैला हुआ है। नाट्यशास्त्र में अवनद्ध वाद्यों का जिस व्यवस्थित रूप में वर्णन मिलता है, वह इस परंपरा की प्राचीन तकनीकी उन्नति का प्रमाण है। त्रिपुष्कर के आंकिक, ऊर्ध्वक और आलिंग्य रूपों को आधुनिक पखावज/मृदंग तथा तबला-डग्गा के विकास से जोड़कर देखा जाता है। आधुनिक तबले की उत्पत्ति के विषय में अनेक मत हैं और इसे किसी एक व्यक्ति अथवा एक कालखंड का आविष्कार मानना ऐतिहासिक दृष्टि से पर्याप्त नहीं है। श्रीलंका में ढोल-वाद्य परंपरा का इतिहास लगभग ढाई सहस्र वर्षों तक पीछे ले जाया जाता है। महावंस तथा अन्य ऐतिहासिक-सांस्कृतिक स्रोतों में ढोल के प्रयोग का उल्लेख मिलता है। श्रीलंका की पारंपरिक नृत्य - परंपराओं - कांडियन, रुहुणु और सबरगमुवा - के साथ क्रमशः गेटा बेरया, यक बेरया और दावुला जैसे विशिष्ट वाद्यों का गहरा संबंध है। इसके अतिरिक्त तम्मट्टमा, उडेक्कि, डक्किया, बुम्मडिया, रबाना और दण्डु बेरया जैसे वाद्य धार्मिक, अनुष्ठानिक, लोक और सामाजिक संदर्भों में प्रयुक्त होते रहे हैं।

यह शोध-पत्र भारत और श्रीलंका की अवनद्ध वाद्य परंपराओं की उत्पत्ति, विकास, निर्माण-तकनीक, वादन-पद्धति, धार्मिक एवं सामाजिक उपयोग, नृत्य-संगति, औपनिवेशिक तथा आधुनिक प्रभाव और वर्तमान संरक्षण-चुनौतियों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि दोनों देशों की ढोल-परंपराओं में ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक संपर्क के अनेक संकेत हैं, फिर भी दोनों ने अपनी विशिष्ट सामाजिक, धार्मिक और नृत्य-सांस्कृतिक परिस्थितियों के अनुरूप स्वतंत्र वाद्य रूपों और वादन- शैलियों का विकास किया। मुख्य शब्दरू अवनद्ध वाद्य, पुष्कर, मृदंग, पखावज, तबला, मृदंगम्, गेटा बेरया, यक बेरया, दावुला, तम्मट्टमा, श्रीलंकाई संगीत, भारतीय संगीत, ताल, नृत्य।

मानव सभ्यता के प्रारंभिक इतिहास में संगीत का उद्भव प्रकृति और मानवीय अनुभवों से जुड़ा हुआ दिखाई देता है। वर्षा की बूंदों की ध्वनि, पत्थरों के टकराने की आवाज, लकड़ी पर आघात और पशु-चर्म पर पड़ने वाली चोट से उत्पन्न ध्वनि ने मनुष्य को ताल और लय के संसार की ओर प्रेरित किया होगा। इसी क्रम में झिल्लीदार या चमड़े से मढ़े हुए वाद्यों का विकास हुआ। आज जिन वाद्यों को हम ड्रम या अवनद्ध वाद्य कहते हैं, वे संभवतः मानव द्वारा निर्मित सबसे प्राचीन वाद्य-वर्गों में से एक हैं।

भारतीय संगीतशास्त्र में वाद्यों का वर्गीकरण अत्यंत विकसित अवस्था में मिलता है। घन, सुषिर, तत और अवनद्ध-इन वाद्य-वर्गों में अवनद्ध वाद्यों की विशेषता यह है कि इनके शरीर पर किसी झिल्ली या चर्म का आवरण होता है। वर्तमान भारतीय संगीत में तबला, पखावज और मृदंगम् जैसे वाद्य न केवल संगति के लिए, बल्कि स्वतंत्र वादन के लिए भी प्रतिष्ठित हैं। भारतीय परंपरा में अवनद्ध वाद्य ताल के वाहक हैं; इनके बिना अनेक संगीत एवं नृत्य शैलियों की कल्पना कठिन है।

श्रीलंका में भी ढोल वाद्यों की स्थिति अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। वहाँ 'बेरा' अथवा 'बेरया' शब्द का संबंध ढोल से है और द्वीप के विभिन्न क्षेत्रों तथा नृत्य-परंपराओं के अनुसार अलग-अलग प्रकार के बेरया विकसित हुए। कांडियन नृत्य में गेटा बेरया, निम्नभूमि अथवा रुहुणु परंपरा में यक बेरया तथा सबरगमुवा परंपरा में दावुला प्रमुख हैं।

भारत और श्रीलंका भौगोलिक रूप से निकट हैं और प्राचीन काल से इनके बीच समुद्री, धार्मिक, व्यापारिक और सांस्कृतिक संपर्क रहा है। विशेषतः बौद्ध धर्म के प्रसार, दक्षिण भारतीय राजवंशों के संपर्क, समुद्री व्यापार और दक्षिण एशियाई सांस्कृतिक आदान-प्रदान ने दोनों क्षेत्रों की संगीत परंपराओं को प्रभावित किया। श्रीलंका में मृदंग, मद्दुलया और तविल जैसे भारतीय मूल या भारतीय प्रभाव वाले वाद्यों की उपस्थिति इसका एक उदाहरण है।

इसलिए भारत और श्रीलंका के अवनद्ध वाद्यों का तुलनात्मक अध्ययन केवल दो देशों के संगीत वाद्यों की सूची तैयार करना नहीं है, बल्कि यह यह समझने का प्रयास है कि किस प्रकार मानव समुदायों ने ध्वनि, ताल, धर्म, नृत्य और सामाजिक संचार को वाद्य-निर्माण की तकनीक से जोड़ा है।

भारत और श्रीलंका : ऐतिहासिक समानताएँ

भारत और श्रीलंका की अवनद्ध परंपराओं में कई समानताएँ दिखाई देती हैं।

1. प्रकृति और ध्वनि से प्रेरणा -दोनों संस्कृतियों में वाद्य-निर्माण की अवधारणा प्रकृति और मानव जीवन से जुड़ी है। भारतीय परंपरा में वर्षा की ध्वनि से पुष्कर की प्रेरणा की कथा मिलती है, जबकि श्रीलंका में स्थानीय लकड़ी, पशु-चर्म और पात्रों से वाद्य निर्माण की परंपरा विकसित हुई।

2. धार्मिक संबंध -भारत में मृदंग, पखावज और मृदंगम् मंदिर, भक्ति तथा नृत्य परंपराओं से जुड़े रहे। श्रीलंका में दावुला, तम्मट्टमा और अन्य ढोल बौद्ध मंदिरों और धार्मिक समारोहों से गहराई से जुड़े हैं।

3. नृत्य के साथ संबंध- भारत में पखावज का कथक और ध्रुपद-धमार परंपरा से तथा मृदंगम् का भरतनाट्यम एवं कर्नाटक संगीत से संबंध है। श्रीलंका में गेटा बेरया, यक बेरया और दावुला क्रमशः विशिष्ट नृत्य परंपराओं से जुड़े हैं।

4. सामाजिक संचार- दोनों क्षेत्रों में ढोलों का उपयोग राजकीय घोषणा, युद्ध, धार्मिक समारोह और सामाजिक उत्सव में हुआ।

भारत और श्रीलंका : प्रमुख अंतर- समानताओं के बावजूद दोनों देशों की परंपराओं में उल्लेखनीय अंतर हैं। भारत में तबला और पखावज जैसी वाद्य परंपराएँ अत्यधिक विकसित शास्त्रीय संगीत-व्यवस्था का हिस्सा बन गईं। इनके स्वतंत्र वादन के लिए जटिल रचनात्मक व्याकरण, घराने और ताल-पद्धतियाँ विकसित हुईं। श्रीलंका में पारंपरिक ढोल मुख्यतः नृत्य, अनुष्ठान, मंदिर समारोह और लोक-सामुदायिक जीवन से अधिक निकटता से जुड़े रहे। वहाँ वाद्य की पहचान अक्सर किसी विशेष क्षेत्रीय नृत्य या धार्मिक अनुष्ठान से होती है। भारत में तबले की दोहरी संरचना - दायाँ और बायाँ - स्वर - व्यवस्था एवं बोलों की सूक्ष्मता को बढ़ाती है। श्रीलंका में गेटा बेरया जैसे वाद्यों में दोनों ओर की चर्म-संरचना होते हुए भी उनका प्रयोग मुख्यतः नृत्य और तालात्मक पैटर्न के लिए होता है।

निर्माण सामग्री का तुलनात्मक अध्ययन

भारत

भारतीय अवनद्ध वाद्यों में-

- मिट्टी

- लकड़ी
- ताँबा
- पीतल
- अन्य धातुएँ
- पशु-चर्म

प्राकृतिक रेशे का प्रयोग हुआ है।

मृदंग के प्रारंभिक रूपों में मिट्टी का उल्लेख मिलता है, जबकि आधुनिक पखावज और मृदंगम् मुख्यतः लकड़ी के बने होते हैं। तबले में दायाँ और बायाँ अलग-अलग संरचना वाले होते हैं; बायाँ प्रायः लकड़ी, धातु या अन्य सामग्री से बनाया जा सकता है।

श्रीलंका

श्रीलंका में जैक, कोहोंबा आदि स्थानीय लकड़ियों के साथ पशु-चर्म का उपयोग पारंपरिक वाद्य निर्माण में मिलता है। दावुला में जैक लकड़ी और हिरन अथवा बछड़े की खाल के प्रयोग का विवरण उपलब्ध है। चर्म को कसने के लिए प्राकृतिक रेशों और पट्टियों का प्रयोग किया जाता है। इससे स्पष्ट होता है कि दोनों देशों में स्थानीय प्राकृतिक संसाधनों ने वाद्य-निर्माण को प्रभावित किया।

चर्म और नाद-विज्ञान

अवनद्ध वाद्य की ध्वनि मुख्यतः चार कारकों से निर्धारित होती है—

- झिल्ली की मोटाई,
- झिल्ली का तनाव,
- वाद्य के शरीर का आकार,
- झिल्ली पर किए गए लेपन या अन्य संशोधन।

भारतीय तबले में चर्म पर विशेष काली स्याही/लेप का प्रयोग नाद को अधिक निश्चित और संगीतमय बनाने में महत्वपूर्ण है। इसी प्रकार पखावज तथा मृदंगम् में चर्म और लेपन की तकनीक नाद की गुणवत्ता को प्रभावित करती है।

श्रीलंका के वाद्यों में भी विभिन्न प्रकार के पशु-चर्म का उपयोग विभिन्न ध्वनि-गुण प्राप्त करने के लिए किया जाता रहा है। उपलब्ध विवरणों के अनुसार कुछ बेरया में दोनों ओर अलग-अलग प्रकार की खाल उपयोग की जाती है।

वादन तकनीक- भारत में अवनद्ध वाद्यों की वादन तकनीक अत्यधिक विकसित है। तबला में उंगलियों, हथेली और विभिन्न अंगुलियों के संयोजन से अनेक बोल निकाले जाते हैं। पखावज में हथेली और उंगलियों का व्यापक प्रयोग होता है। मृदंगम् में दोनों हाथों की विभिन्न उंगलियों और हथेली से जटिल नाद उत्पन्न किए जाते हैं। श्रीलंका में वादन तकनीक वाद्य विशेष के अनुसार बदलती है। गेटा बेरया और यक बेरया मुख्यतः हाथों से बजाए जाते हैं, जबकि दावुला में एक ओर हाथ और दूसरी ओर प्रहारक का प्रयोग होता है। यह अंतर वाद्य की ध्वनि के साथ-साथ नृत्य की गति और अनुष्ठान की प्रकृति को भी प्रभावित करता है।

अवनद्ध वाद्य और नृत्य- ताल और नृत्य का संबंध सार्वभौमिक है। नृत्य में शरीर की गति को संरचना देने के लिए ताल की आवश्यकता होती है। **भारत में-**

कथक -तबला/पखावज

ध्रुपद - पखावज

भरतनाट्यम – मृदंगम्

मणिपुरी - पुंग

अनेक लोकनृत्य - ढोल, ढोलक आदि
का प्रयोग होता है।

श्रीलंका में-

कांडियन नृत्य – गेटा बेरया

रुहुणु नृत्य - यक बेरया

सबरगमुवा नृत्य – दावुला का संबंध स्थापित है।

इससे पता चलता है कि वाद्य का विकास नृत्य की सौंदर्यात्मक संरचना के साथ समानांतर हुआ।

धार्मिक जीवन में अवनद्ध वाद्य

भारत में मंदिर संगीत और भक्ति आंदोलनों ने मृदंग तथा मृदंगम् जैसे वाद्यों के प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वैष्णव कीर्तन परंपरा में खोल और मृदंग प्रमुख हैं। शैव और शक्ति परंपराओं में ढोल तथा नगाड़ों का उपयोग मिलता है।

श्रीलंका में बौद्ध मंदिरों में ढोल का धार्मिक उपयोग विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। हेविसी वादन धार्मिक अनुष्ठान के रूप में आज भी संरक्षित है। सांस्कृतिक विभाग द्वारा ऐसे पारंपरिक वादन- गुरु परिवारों और विद्यालयों का उल्लेख किया गया है जो इस ज्ञान को आगे बढ़ा रहे हैं।

राजकीय और युद्ध संबंधी उपयोग- प्राचीन समाज में संगीत केवल मनोरंजन नहीं था। ढोल की ऊँची और दूर तक जाने वाली ध्वनि इसे संदेश प्रसारित करने का प्रभावी साधन बनाती थी। भारत में नगाड़ा, दुन्दुभि और पटह जैसे वाद्य युद्ध और राजकीय अवसरों से जुड़े रहे। श्रीलंका में भी ढोल का उपयोग राजकीय घोषणा और युद्ध से संबंधित रहा है। श्रीलंकाई परंपरागत स्रोतों में राजा के आदेश, सेना और सार्वजनिक घोषणाओं से जुड़े विभिन्न ढोल-प्रयोगों का वर्णन मिलता है।

वाद्य-निर्माता समुदाय की भूमिका- किसी भी पारंपरिक वाद्य का इतिहास केवल कलाकारों का इतिहास नहीं होता। उसके पीछे वाद्य-निर्माताओं की पीढ़ियाँ काम करती हैं। भारत में तबला, पखावज और मृदंगम् निर्माण की अलग-अलग पारंपरिक शिल्प परंपराएँ विकसित हुई हैं। लकड़ी का चयन, खोल को आकार देना, चर्म तैयार करना, पट्टियाँ लगाना, लेप तैयार करना और अंतिम स्वर-संतुलन - ये सभी कौशल अनुभव से सीखे जाते हैं। श्रीलंका में भी पारंपरिक ढोल-निर्माण परिवार पीढ़ियों से इस कार्य में लगे रहे हैं। उपलब्ध विवरणों में ऐसे गाँवों का उल्लेख मिलता है जहाँ वाद्य निर्माण सामुदायिक शिल्प परंपरा के रूप में चलता रहा। लगभग चालीस प्रकार के बेरया की परंपरा का भी उल्लेख मिलता है, यद्यपि सभी प्रकार आज समान रूप से सक्रिय नहीं हैं।

परंपरा और गुरु-शिष्य प्रणाली- भारत की शास्त्रीय तालवाद्य परंपरा में गुरु-शिष्य प्रणाली की केंद्रीय भूमिका रही है। तबले के घरानों और पखावज की परंपराओं में बोल, बंदिश, हाथ की तकनीक और मंचीय अनुशासन लंबे समय तक मौखिक प्रशिक्षण से सीखे जाते थे। श्रीलंका में भी ढोल-वादन की परंपरा पारंपरिक गुरु-परिवारों द्वारा आगे बढ़ाई गई। सांस्कृतिक विभाग द्वारा हेविसी वादन से संबंधित कई पारंपरिक विद्यालयों का उल्लेख किया गया है।

आधुनिक संगीत विद्यालयों और विश्वविद्यालयों ने इस ज्ञान को औपचारिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में लाने का प्रयास किया है।

आधुनिकता और अवनद्ध वाद्यों में परिवर्तन

आधुनिक काल में अवनद्ध वाद्यों में तीन प्रमुख परिवर्तन दिखाई देते हैं–

पहला-निर्माण तकनीक में परिवर्तन- पारंपरिक प्राकृतिक सामग्री के स्थान पर कभी-कभी आधुनिक कृत्रिम सामग्री और आधुनिक उपकरणों का उपयोग किया जाने लगा है। दूसरा- प्रस्तुति का मंचीयकरण जो वाद्य पहले मंदिर, गाँव, विवाह या अनुष्ठान तक सीमित थे, वे अब मंचीय प्रस्तुतियों, सांस्कृतिक महोत्सवों और शैक्षणिक कार्यक्रमों में प्रस्तुत किए जाते

हैं। तीसरा - शिक्षा का संस्थानीकरण भारत में तबला, पखावज और मृदंगम् विश्वविद्यालयों तथा संगीत संस्थानों में पढ़ाए जाते हैं। श्रीलंका में भी पारंपरिक ढोल-वादन के प्रशिक्षण हेतु सांस्कृतिक संस्थानों द्वारा उपकरण और प्रशिक्षण व्यवस्था उपलब्ध कराई जाती है।

संरक्षण की चुनौतियाँ- परंपरागत अवनद्ध वाद्यों के सामने अनेक चुनौतियाँ हैं।

1. पारंपरिक कलाकारों की संख्या में कमी-आधुनिक रोजगार व्यवस्था और शिक्षा के कारण पारंपरिक कलाकार परिवारों की नई पीढ़ी अन्य व्यवसायों की ओर जा रही है। श्रीलंका के पारंपरिक तालवाद्य के संबंध में किए गए शोधों में कलाकारों की कमी और पारंपरिक परिवारों के अन्य रोजगार की ओर जाने की समस्या की ओर संकेत किया गया है।

2. वाद्य-निर्माण की कठिनाई-उत्तम लकड़ी, उपयुक्त चर्म और पारंपरिक निर्माण-कौशल की उपलब्धता लगातार चुनौती बन रही है।

3. आर्थिक असुरक्षा- वाद्य-निर्माता और पारंपरिक कलाकार अक्सर अपनी कला से पर्याप्त आय प्राप्त नहीं कर पाते।

4. औपचारिक मान्यता की कमी- विशेषकर लोक और अनुष्ठानिक परंपराओं के अनेक कलाकारों को शास्त्रीय कलाकारों की तुलना में कम संस्थागत पहचान मिलती है।

5. सांस्कृतिक संदर्भ का क्षरण- जब कोई वाद्य केवल मंच पर प्रदर्शन की वस्तु बन जाता है और उसका मूल धार्मिक, सामाजिक अथवा नृत्य संदर्भ समाप्त हो जाता है, तो उसके साथ जुड़ा सांस्कृतिक ज्ञान भी कमजोर हो सकता है।

संरक्षण के उपाय- अवनद्ध वाद्यों की परंपरा को जीवित रखने के लिए निम्न उपाय किए जा सकते हैं—पारंपरिक कलाकारों को आर्थिक सहायता दी जाए। वाद्य-निर्माताओं के लिए शिल्प प्रशिक्षण केंद्र स्थापित किए जाएँ। गुरु-शिष्य परंपरा को छात्रवृत्ति से जोड़ा जाए। विद्यालय और विश्वविद्यालय स्तर पर स्थानीय तालवाद्यों को पाठ्यक्रम में शामिल किया जाए। पुराने वाद्यों का डिजिटल संग्रह तैयार किया जाए। दुर्लभ वाद्यों के ऑडियो-वीडियो अभिलेख बनाए जाएँ। वाद्य निर्माण की पारंपरिक तकनीक का दस्तावेजीकरण किया जाए। स्थानीय समुदायों को संरक्षण कार्यक्रमों में सक्रिय भागीदार बनाया जाए। भारत और श्रीलंका के बीच तालवाद्य संबंधी सांस्कृतिक आदान-प्रदान बढ़ाया जाए। पारंपरिक कलाकारों को राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय मंच उपलब्ध कराया जाए।

भारत-श्रीलंका सांस्कृतिक संबंध और अवनद्ध वाद्य- भारत और श्रीलंका के संबंध केवल राजनीतिक या धार्मिक इतिहास तक सीमित नहीं हैं। संगीत और नृत्य में भी दोनों समाजों के बीच लंबे समय से आदान-प्रदान रहा है।

श्रीलंका में मृदंग, तविल और मड्डलया जैसे वाद्यों की उपस्थिति भारतीय सांस्कृतिक संपर्क का संकेत देती है। विशेषतः तमिल हिंदू धार्मिक परंपराओं और दक्षिण भारतीय नृत्य-संगीत के माध्यम से मृदंगम् और तविल जैसे वाद्य श्रीलंका की संगीत - संस्कृति का हिस्सा बने। श्रीलंकाई सांस्कृतिक स्रोत मृदंग को भारतीय मूल का बताते हैं तथा इसे भरतनाट्यम प्रस्तुतियों में प्रयुक्त होने वाला वाद्य बताते हैं। दूसरी ओर, श्रीलंका की गेटा बेरया, यक बेरया और दावुला जैसी विशिष्ट परंपराएँ स्थानीय सांस्कृतिक विकास की मौलिकता को दर्शाती हैं। इसलिए सांस्कृतिक संपर्क को केवल 'प्रभाव' के रूप में देखना पर्याप्त नहीं है; स्थानीय समाज बाहरी तत्वों को अपनी आवश्यकताओं के अनुसार रूपांतरित करता है। भारत और श्रीलंका की अवनद्ध वाद्य परंपराओं का तुलनात्मक अध्ययन कई महत्वपूर्ण निष्कर्ष सामने लाता है। पहला, दोनों देशों में अवनद्ध वाद्यों का मूल उपयोग ताल और लय से कहीं व्यापक था। ये धार्मिक, राजकीय, सैन्य, सामाजिक और सांस्कृतिक संचार के माध्यम रहे। दूसरा, प्राकृतिक संसाधनों ने वाद्य-निर्माण को गहराई से प्रभावित किया। स्थानीय लकड़ी, चर्म और मिट्टी का उपयोग दोनों परंपराओं में मिलता है। तीसरा, नृत्य ने वाद्य विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। भारत में पखावज और मृदंगम् की तकनीक नृत्य एवं संगीत की आवश्यकताओं के अनुरूप विकसित हुई, जबकि श्रीलंका में गेटा बेरया, यक बेरया और दावुला विशिष्ट नृत्य प्रणालियों के साथ विकसित हुए। चौथा, भारत में कुछ अवनद्ध वाद्यों ने अत्यंत विकसित शास्त्रीय और स्वतंत्र वादन परंपरा प्राप्त की। तबले का घराना तंत्र इसका उत्कृष्ट उदाहरण है। पाँचवाँ, श्रीलंका में क्षेत्रीय और अनुष्ठानिक पहचान अपेक्षाकृत अधिक प्रमुख दिखाई देती है। ढोल का प्रकार अक्सर उसके क्षेत्र और नृत्य / अनुष्ठान से निर्धारित होता है। छठा,

दोनों देशों में आधुनिकता के कारण पारंपरिक कलाकार और वाद्य-निर्माता नई चुनौतियों का सामना कर रहे हैं। इसलिए संरक्षण के लिए केवल संग्रहालयों में वाद्य सुरक्षित करना पर्याप्त नहीं; जीवित कलाकारों और गुरु-परंपराओं को भी समर्थन देना आवश्यक है।

निष्कर्ष- भारत एवं श्रीलंका में अवनद्ध वाद्यों की परंपरा मानव सभ्यता की ध्वनि-सृजन क्षमता, सामुदायिक जीवन और धार्मिक चेतना की दीर्घकालीन यात्रा का प्रतिनिधित्व करती है। भारत में इसकी जड़ें दुन्दुभि और भूमिदुन्दुभि जैसे प्राचीन वाद्यों से जुड़ती हैं और नाट्यशास्त्र के पुष्कर-विचार में एक विकसित संगीतशास्त्रीय रूप प्राप्त करती हैं। त्रिपुष्कर, आंकिक, ऊर्ध्वक और आलिंग्य की परंपरा के आधार पर मृदंग तथा बाद के जोड़ी वाद्यों के विकास को समझा जा सकता है। मृदंग से पखावज और दक्षिण भारतीय मृदंगम् की विकसित परंपराएँ सामने आईं। तबले की उत्पत्ति के संबंध में अनेक सिद्धांत हैं, परंतु आधुनिक दृष्टि से इसे किसी एक व्यक्ति द्वारा अचानक आविष्कृत वाद्य मानना उचित नहीं है। अठारहवीं शताब्दी में खयाल के विकास के साथ तबले की शास्त्रीय प्रतिष्ठा बढ़ी और आगे चलकर उसके अनेक घराने विकसित हुए। श्रीलंका में ढोल परंपरा का विकास वहाँ की विशिष्ट धार्मिक, राजकीय, लोक और नृत्य-संस्कृति के साथ हुआ। गेटा बेरया, यक बेरया और दावुला तीन प्रमुख क्षेत्रीय नृत्य-परंपराओं के प्रतिनिधि वाद्य हैं। तम्मट्टमा, उडेक्कि, रबाना और बुम्मडिया जैसे वाद्य श्रीलंका के लोक एवं धार्मिक जीवन को और अधिक विविध बनाते हैं।

भारत और श्रीलंका के बीच ऐतिहासिक सांस्कृतिक संपर्क के कारण कुछ वाद्य रूपों और वादन-परंपराओं में समानताएँ मिलती हैं। श्रीलंका में मृदंग और तविल जैसे भारतीय प्रभाव वाले वाद्यों की उपस्थिति इसका प्रमाण है। फिर भी श्रीलंका ने अपने स्थानीय समाज, धर्म, नृत्य और पर्यावरण के आधार पर स्वतंत्र बेरया परंपरा विकसित की। अतः दोनों देशों की अवनद्ध वाद्य परंपराओं को 'एक ही स्रोत से निकली हुई' मानना उतना ही अनुचित होगा जितना उन्हें पूर्णतः असंबद्ध मानना। अधिक उपयुक्त निष्कर्ष यह है कि भारतीय उपमहाद्वीप और श्रीलंका में तालवाद्य निर्माण की एक व्यापक दक्षिण एशियाई सांस्कृतिक पृष्ठभूमि रही, जिसके भीतर विभिन्न क्षेत्रों ने अपने सामाजिक और धार्मिक संदर्भों के अनुसार विशिष्ट वाद्य विकसित किए। आज संरक्षण की सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि इन वाद्यों को केवल 'पुरानी संस्कृति' की वस्तु न माना जाए। इनके निर्माणकर्ताओं, कलाकारों, गुरु-शिष्यों और स्थानीय समुदायों को संरक्षण देकर इन्हें जीवित परंपरा के रूप में आगे बढ़ाना आवश्यक है। श्रीलंका में पारंपरिक हेविसी वादन विद्यालयों और भारत में शास्त्रीय तालवाद्य संस्थानों की गतिविधियाँ इस दिशा में महत्वपूर्ण हैं। अंततः अवनद्ध वाद्य केवल चमड़े और लकड़ी से बने उपकरण नहीं हैं। वे किसी समाज की स्मृति, समय-बोध, धार्मिक आस्था, नृत्य-भाषा, सामुदायिक संवाद और कलात्मक चेतना के ध्वनि-रूप हैं। भारत और श्रीलंका दोनों की संस्कृति में इनका अध्ययन इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि इनके माध्यम से हम केवल संगीत का इतिहास नहीं, बल्कि दक्षिण एशिया के सामाजिक और सांस्कृतिक इतिहास की भी एक महत्वपूर्ण धारा को समझ सकते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- भरतमुनि नाट्यशास्त्र. विभिन्न हिंदी संस्करण, नई दिल्ली : साहित्य अकादमी।
- शारंगदेव. संगीत रत्नाकर. हिंदी अनुवाद, संगीत कार्यालय, हाथरस।
- मतंग मुनि बृहद्देशी. हिंदी अनुवाद, चौखम्बा संस्कृत सीरीज़, वाराणसी।
- अहोबल. संगीत पारिजात. हिंदी संस्करण, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।
- पं. ओंकारनाथ ठाकुर. संगीतांजलि (भाग 1-6). प्रयाग संगीत समिति, प्रयागराज।
- डॉ. लालमणि मिश्र. भारतीय संगीत वाद्य. भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली।
- डॉ. प्रेमलता शर्मा. भारतीय संगीत का इतिहास. राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
- डॉ. शरच्चन्द्र श्रीधर परांजपे. भारतीय संगीत का इतिहास. चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।

- डॉ. भगवतशरण शर्मा. भारतीय संगीत का इतिहास एवं सिद्धांत. कनिष्क पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
- डॉ. सुनीता शर्मा. भारतीय संगीत के वाद्य यंत्र. राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
- डॉ. अशोक कुमार. भारतीय ताल एवं तालवाद्य. कनिष्क पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
- डॉ. सुरेश गोपाल श्रीखंडे. तालशास्त्र. मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल।
- कपिला वात्स्यायन. भारतीय कला और संस्कृति. राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली।
- वासुदेवशरण अग्रवाल. भारतीय कला. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
- राहुल सांकृत्यायन. बौद्ध संस्कृति. किताब महल, इलाहाबाद।
- अनुराधा सेनविरत्न. श्रीलंका की संस्कृति और परंपरा. (हिंदी अनुवाद उपलब्ध होने पर)।
- श्रीलंका संस्कृति मंत्रालय. श्रीलंका की पारंपरिक संगीत एवं नृत्य परंपरा (विभिन्न प्रकाशन)।
- भारतीय संगीत नाटक अकादमी. भारतीय लोक एवं शास्त्रीय वाद्य. नई दिल्ली।
- इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र (आईजीएनसीए), नई दिल्ली से प्रकाशित संगीत एवं वाद्य संबंधी शोध प्रकाशन।

आचार्य-संगीत विभाग (एच. ओ.डी.)

श्रीमती बी. डी. जैन कन्या महाविद्यालय, आगरा कैन्ट, आगरा।

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

भारत और श्रीलंका के मध्य संबंध

सोनी केशरी

सारांश- भारत और श्रीलंका के मध्य संबंध केवल दो पड़ोसी देशों के पारंपरिक कूटनीतिक संबंधों तक सीमित नहीं हैं, बल्कि इनके पीछे एक दीर्घकालीन सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक विरासत विद्यमान है। बौद्ध धर्म, धार्मिक यात्राएँ, साहित्य, शिक्षा, कला, परंपराएँ तथा जन-से-जन संपर्क दोनों देशों के संबंधों के महत्वपूर्ण आधार रहे हैं। विशेष रूप से सम्राट अशोक के काल में बौद्ध धर्म के श्रीलंका पहुँचने के बाद भारत और श्रीलंका के बीच विकसित धार्मिक एवं सांस्कृतिक संबंधों ने दोनों समाजों को एक विशिष्ट ऐतिहासिक निकटता प्रदान की।

वर्तमान समय में श्रीलंका के साथ चीन की बढ़ती आर्थिक एवं सामरिक भागीदारी ने इस पारंपरिक सामाजिक-सांस्कृतिक समीकरण को एक नया आयाम प्रदान किया है। चीन की भूमिका प्रारंभ में मुख्यतः आर्थिक सहयोग, ऋण, व्यापार तथा आधारभूत संरचना परियोजनाओं से जुड़ी दिखाई देती थी, किंतु हाल के वर्षों में उसका प्रभाव शिक्षा, पर्यटन, बौद्ध कूटनीति, चीनी भाषा, सांस्कृतिक विरासत, मीडिया तथा जन-से-जन संपर्क तक विस्तृत हुआ है। वर्ष 2025 में चीन और श्रीलंका के मध्य हुए संयुक्त वक्तव्य में शिक्षा, छात्र एवं शोधकर्ता आदान-प्रदान, चीनी भाषा, पर्यटन, युवा, मीडिया, बौद्ध आदान-प्रदान तथा सांस्कृतिक विरासत सहयोग को विशेष महत्व दिया गया।

यह शोध-पत्र भारत-श्रीलंका सामाजिक एवं सांस्कृतिक संबंधों में चीन की बढ़ती भूमिका का आलोचनात्मक अध्ययन करता है। इसका मुख्य तर्क है कि चीन की श्रीलंका में बढ़ती उपस्थिति को केवल आर्थिक विस्तार के रूप में देखना पर्याप्त नहीं है। सांस्कृतिक कूटनीति और सॉफ्ट पावर के माध्यम से चीन श्रीलंका में दीर्घकालीन सामाजिक स्वीकार्यता एवं सकारात्मक छवि निर्मित करने का प्रयास कर रहा है। हालांकि, भारत की स्थिति चीन से भिन्न है क्योंकि भारत के पास श्रीलंका के साथ ऐतिहासिक, भौगोलिक तथा सभ्यतागत निकटता की विशिष्ट पूँजी है। अतः श्रीलंका में भारत और चीन की भूमिका को केवल प्रतिस्पर्धा के रूप में देखना उचित नहीं होगा; बल्कि यह श्रीलंका की अपनी राष्ट्रीय आवश्यकताओं, रणनीतिक स्वायत्तता और संतुलनकारी विदेश नीति से भी जुड़ा हुआ है।

मुख्य शब्द : भारत, श्रीलंका, चीन, सामाजिक संबंध, सांस्कृतिक संबंध, बौद्ध कूटनीति, सॉफ्ट पावर, सांस्कृतिक कूटनीति, BRI, जन-से-जन संपर्क।

1. प्रस्तावना

दक्षिण एशिया में भारत और श्रीलंका के संबंधों का स्वरूप विशिष्ट एवं बहुआयामी है। दोनों देशों के बीच समुद्री दूरी कम होने के कारण प्राचीन काल से ही व्यापारियों, यात्रियों, धार्मिक विद्वानों तथा भिक्षुओं का आवागमन होता रहा है। परिणामस्वरूप दोनों देशों के मध्य केवल राजनीतिक और आर्थिक संबंध ही विकसित नहीं हुए, बल्कि सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्तर पर भी गहरे संबंध स्थापित हुए।

भारत और श्रीलंका के संबंधों में बौद्ध धर्म का विशेष महत्व है। भारतीय विदेश मंत्रालय के अनुसार, सम्राट अशोक

द्वारा महिंद तथा संघमित्रा को श्रीलंका भेजे जाने की परंपरा दोनों देशों के साझा बौद्ध विरासत की आधारभूत कड़ी मानी जाती है। इस धार्मिक संपर्क ने आगे चलकर शिक्षा, दर्शन, साहित्य, कला तथा तीर्थ परंपराओं के विकास को प्रभावित किया।

समकालीन समय में भारत-श्रीलंका संबंधों की प्रकृति और अधिक व्यापक हो गई है। बौद्ध तीर्थयात्रा, सांस्कृतिक कार्यक्रम, छात्रवृत्तियाँ, विश्वविद्यालयीय सहयोग, विरासत संरक्षण तथा धार्मिक आदान-प्रदान इसके महत्वपूर्ण घटक हैं। भारत ने वर्ष 2020 में दोनों देशों के बौद्ध संबंधों के संरक्षण एवं संवर्धन के लिए 15 मिलियन अमेरिकी डॉलर की अनुदान सहायता की घोषणा की थी। इस सहायता का उपयोग बौद्ध मठों, बौद्ध शिक्षा, विद्वानों एवं धार्मिक नेताओं के बीच संपर्क, विरासत संग्रहालय तथा पुरातात्विक सहयोग जैसे क्षेत्रों में किया जा सकता है।

परंतु पिछले दो दशकों में श्रीलंका में चीन की उपस्थिति तेजी से बढ़ी है। चीन का प्रभाव पहले आर्थिक तथा आधारभूत संरचना परियोजनाओं के संदर्भ में अधिक चर्चा में रहा, किंतु अब उसकी गतिविधियाँ सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों तक भी पहुँच चुकी हैं। शिक्षा, चीनी भाषा, पर्यटन, बौद्ध आदान-प्रदान, सांस्कृतिक विरासत और मीडिया सहयोग इसके प्रमुख उदाहरण हैं।

यहीं से इस अध्ययन का केंद्रीय प्रश्न उत्पन्न होता है—क्या श्रीलंका में चीन की बढ़ती सांस्कृतिक भूमिका भारत की पारंपरिक सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थिति को चुनौती दे रही है?

इस प्रश्न का उत्तर सरल रूप से 'हाँ' या 'नहीं' में देना उचित नहीं होगा। चीन की सांस्कृतिक उपस्थिति निश्चित रूप से बढ़ी है, लेकिन भारत की सांस्कृतिक स्थिति का आधार केवल वर्तमान कूटनीतिक गतिविधियाँ नहीं, बल्कि सदियों पुराना सभ्यतागत संबंध है। साथ ही श्रीलंका स्वयं भी भारत और चीन के बीच अपने हितों के अनुसार संबंधों को संतुलित करने की क्षमता रखता है।

2. अध्ययन के उद्देश्य

इस अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

1. भारत और श्रीलंका के सामाजिक एवं सांस्कृतिक संबंधों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का अध्ययन करना।
2. भारत की बौद्ध एवं सांस्कृतिक कूटनीति का विश्लेषण करना।
3. श्रीलंका में चीन की बढ़ती सांस्कृतिक भूमिका के प्रमुख आयामों का अध्ययन करना।
4. बौद्ध धर्म, शिक्षा, पर्यटन एवं भाषा के माध्यम से चीन की बढ़ती भूमिका का विश्लेषण करना।
5. भारत और चीन की सांस्कृतिक कूटनीति के बीच अंतर को समझना।
6. श्रीलंका की रणनीतिक स्वायत्तता एवं संतुलनकारी भूमिका का आलोचनात्मक अध्ययन करना।

3. शोध-पद्धति

प्रस्तुत अध्ययन मुख्यतः गुणात्मक एवं विश्लेषणात्मक शोध पद्धति पर आधारित है। इसमें द्वितीयक स्रोतों का प्रयोग किया गया है। अध्ययन के लिए भारत एवं चीन के विदेश मंत्रालयों के आधिकारिक दस्तावेजों, भारत-श्रीलंका द्विपक्षीय संबंधों से संबंधित आधिकारिक रिपोर्टों तथा सांस्कृतिक कूटनीति एवं बौद्ध कूटनीति पर प्रकाशित शोध-अध्ययनों का उपयोग किया गया है।

अध्ययन में सॉफ्ट पावर, सांस्कृतिक कूटनीति और रणनीतिक आख्यान (Strategic Narratives) की अवधारणाओं को विश्लेषणात्मक आधार बनाया गया है।

4. भारत-श्रीलंका सामाजिक एवं सांस्कृतिक संबंधों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारत और श्रीलंका के सामाजिक एवं सांस्कृतिक संबंधों की जड़ें प्राचीन काल में दिखाई देती हैं। दोनों देशों के बीच

समुद्री संपर्क ने व्यापार के साथ-साथ धार्मिक एवं सांस्कृतिक विचारों के आदान-प्रदान को भी संभव बनाया।

4.1 बौद्ध धर्म : संबंधों की प्रमुख कड़ी

भारत-श्रीलंका संबंधों में बौद्ध धर्म को सबसे महत्वपूर्ण सांस्कृतिक सेतु माना जा सकता है। भारतीय बौद्ध परंपरा का श्रीलंका में प्रसार महिंद और संघमित्रा से जुड़ा हुआ है। इसके बाद श्रीलंका बौद्ध अध्ययन एवं थेरवाद परंपरा का एक महत्वपूर्ण केंद्र बन गया।

इस ऐतिहासिक प्रक्रिया ने दोनों देशों के बीच धार्मिक यात्राओं एवं विद्वत आदान-प्रदान की परंपरा को जन्म दिया। आज भी बोधगया, सारनाथ, कुशीनगर तथा अन्य बौद्ध स्थलों के प्रति श्रीलंकाई बौद्ध समाज में विशेष श्रद्धा है।

भारत सरकार ने भी इस ऐतिहासिक संबंध को आधुनिक कूटनीति के माध्यम से मजबूत करने का प्रयास किया है। भारत और श्रीलंका के बीच बौद्ध अवशेषों का आदान-प्रदान, बौद्ध तीर्थयात्रा, सांस्कृतिक संस्थानों की स्थापना तथा धार्मिक विद्वानों के संपर्क इसी दिशा में किए गए प्रयास हैं।

4.2 शिक्षा एवं सांस्कृतिक आदान-प्रदान

भारत और श्रीलंका के बीच शिक्षा का क्षेत्र भी महत्वपूर्ण है। भारतीय संस्थानों में श्रीलंकाई विद्यार्थियों को अवसर प्रदान किए जाते हैं तथा श्रीलंका में भारतीय सांस्कृतिक एवं शैक्षिक गतिविधियों का विस्तार हुआ है।

भारतीय विदेश मंत्रालय के अनुसार, श्रीलंका में लगभग 30 विश्वविद्यालयों, विद्यालयों तथा पिरिवेना संस्थानों में विभिन्न अकादमिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियाँ संचालित की गई हैं तथा भारतीय पक्ष द्वारा श्रीलंकाई विद्यार्थियों के लिए छात्रवृत्ति के अवसर भी उपलब्ध कराए जाते हैं।

इस प्रकार भारत की सांस्कृतिक कूटनीति केवल अतीत की स्मृतियों तक सीमित नहीं है, बल्कि शिक्षा और संस्थागत संपर्कों के माध्यम से वर्तमान पीढ़ी के साथ भी संबंध विकसित करने का प्रयास करती है।

5. श्रीलंका में चीन की बढ़ती भूमिका

श्रीलंका और चीन के संबंधों का इतिहास आधुनिक काल से काफी पहले का है। दोनों समाजों के मध्य प्राचीन बौद्ध संपर्कों के प्रमाण मिलते हैं। हालांकि, समकालीन दौर में चीन की भूमिका मुख्यतः आर्थिक सहयोग और आधारभूत संरचना के क्षेत्र में तेजी से बढ़ी।

विशेष रूप से Belt and Road Initiative (BRI) के बाद चीन की आर्थिक एवं राजनीतिक उपस्थिति अधिक स्पष्ट हुई। हम्बनटोटा बंदरगाह और कोलंबो पोर्ट सिटी जैसी परियोजनाओं ने चीन को श्रीलंका के आर्थिक एवं रणनीतिक परिदृश्य में महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया।

लेकिन वर्तमान स्थिति की विशेषता यह है कि चीन का प्रभाव अब केवल बंदरगाहों और आधारभूत संरचना तक सीमित नहीं है। शिक्षा, भाषा, पर्यटन, बौद्ध धर्म और सांस्कृतिक विरासत भी चीन–श्रीलंका सहयोग का हिस्सा बन चुके हैं।

6. चीन की सांस्कृतिक कूटनीति के प्रमुख आयाम

6.1 बौद्ध कूटनीति

चीन की बढ़ती सांस्कृतिक भूमिका को समझने के लिए बौद्ध कूटनीति का अध्ययन अत्यंत आवश्यक है।

श्रीलंका में बौद्ध धर्म सामाजिक और सांस्कृतिक पहचान का एक महत्वपूर्ण आधार है। इसलिए बौद्ध संस्थाओं, भिक्षुओं और धार्मिक विद्वानों के साथ संपर्क स्थापित करना चीन के लिए सामाजिक स्वीकार्यता बढ़ाने का एक माध्यम बन सकता है।

चीन द्वारा श्रीलंकाई बौद्ध संस्थाओं और धार्मिक नेताओं के साथ संपर्क, बौद्ध सम्मेलनों तथा धार्मिक आदान-प्रदान को बढ़ावा दिया गया है। शोधकर्ता Tabita Rosendal के अध्ययन के अनुसार, ठत्प् के बाद श्रीलंका में चीन की बौद्ध कूटनीति

अधिक सक्रिय हुई और दोनों पक्षों ने साझा बौद्ध इतिहास एवं धार्मिक आदान-प्रदान को द्विपक्षीय संबंधों को मजबूत करने के लिए इस्तेमाल किया।

यहाँ एक महत्वपूर्ण आलोचनात्मक प्रश्न उठता है कि चीन द्वारा बौद्ध धर्म को बढ़ावा देना केवल धार्मिक-सांस्कृतिक सहयोग है अथवा इसका कोई व्यापक कूटनीतिक उद्देश्य भी है।

कुछ अध्ययनों का निष्कर्ष है कि चीन की बौद्ध कूटनीति को उसके व्यापक सॉफ्ट पावर प्रयासों से अलग करके नहीं देखा जा सकता। बौद्ध धार्मिक संबंधों के साथ आर्थिक एवं राजनीतिक सहयोग का जुड़ना चीन की व्यापक रणनीति का हिस्सा माना जा सकता है।

फिर भी इसे केवल 'प्रचार' मानना भी उचित नहीं होगा, क्योंकि श्रीलंका स्वयं इन संपर्कों को अपने धार्मिक एवं आर्थिक हितों के अनुसार स्वीकार करता है।

6.2 शिक्षा और चीनी भाषा

चीन ने शिक्षा को अपनी सांस्कृतिक कूटनीति का महत्वपूर्ण माध्यम बनाया है। श्रीलंका में चीनी भाषा के अध्ययन तथा विश्वविद्यालयीय सहयोग को बढ़ावा दिया जा रहा है।

2025 के चीन-श्रीलंका संयुक्त वक्तव्य में दोनों देशों ने शिक्षक, विद्यार्थी और शोधकर्ता आदान-प्रदान बढ़ाने, चीनी भाषा शिक्षा को प्रोत्साहित करने तथा छात्रवृत्तियों और व्यावसायिक प्रशिक्षण के अवसरों को बढ़ाने पर सहमति व्यक्त की।

यह पहल दीर्घकाल में महत्वपूर्ण हो सकती है क्योंकि भाषा केवल संचार का माध्यम नहीं होती; वह किसी समाज के इतिहास, संस्कृति और विचारों को समझने का माध्यम भी बनती है।

इस प्रकार चीनी भाषा के विस्तार को चीन की दीर्घकालीन सांस्कृतिक उपस्थिति के एक साधन के रूप में देखा जा सकता है।

6.3 पर्यटन एवं जन-से-जन संपर्क

पर्यटन भारत और चीन दोनों के लिए सांस्कृतिक कूटनीति का महत्वपूर्ण माध्यम है।

श्रीलंका अपने धार्मिक एवं प्राकृतिक पर्यटन के कारण अंतरराष्ट्रीय स्तर पर महत्वपूर्ण है। चीन ने श्रीलंका के साथ पर्यटन संपर्क बढ़ाने और दोनों देशों के बीच अधिक पर्यटक आवागमन को प्रोत्साहित करने पर बल दिया है।

2025 के संयुक्त वक्तव्य में चीन और श्रीलंका ने पारस्परिक पर्यटन, विमानन संपर्क तथा पर्यटन प्रचार गतिविधियों को बढ़ाने पर सहमति व्यक्त की। इसी वक्तव्य में युवा, थिंक टैंक, खेल, मीडिया, बौद्ध आदान-प्रदान तथा पेजमत-बपजल संबंधों को भी जन-से-जन संपर्क मजबूत करने के साधन के रूप में स्वीकार किया गया।

यह दिखाता है कि चीन की कूटनीति अब केवल सरकार-से-सरकार संबंधों पर निर्भर नहीं है। वह समाज के विभिन्न वर्गों के साथ संपर्क स्थापित करने की दिशा में भी आगे बढ़ रही है।

6.4 सांस्कृतिक विरासत एवं अकादमिक सहयोग

सांस्कृतिक विरासत संरक्षण भी चीन—श्रीलंका सहयोग का नया क्षेत्र है।

2025 के संयुक्त वक्तव्य में दोनों देशों ने सांस्कृतिक विरासत संरक्षण में सहयोग को आगे बढ़ाने की बात कही। इसके अतिरिक्त शिक्षा एवं अनुसंधान संस्थानों के बीच सहयोग तथा विश्वविद्यालयों और शोधकर्ताओं के आदान-प्रदान पर भी बल दिया गया।

इस प्रकार चीन की सांस्कृतिक भूमिका को अब केवल धार्मिक कार्यक्रमों तक सीमित नहीं रखा जा सकता। यह शिक्षा - संस्कृति - पर्यटन - विरासत - मीडिया - बौद्ध धर्म के संयुक्त स्वरूप में विकसित हो रही है।

7. भारत और चीन की सांस्कृतिक कूटनीति : एक तुलनात्मक दृष्टिकोण

भारत और चीन दोनों श्रीलंका में सांस्कृतिक संपर्क को महत्व देते हैं, लेकिन दोनों की रणनीति में महत्वपूर्ण अंतर है।

आधार	भारत	चीन
प्रमुख आधार	सभ्यतागत एवं ऐतिहासिक संबंध	आधुनिक संस्थागत एवं रणनीतिक सहयोग
प्रमुख सांस्कृतिक माध्यम	बौद्ध धर्म, तीर्थयात्रा, शिक्षा	बौद्ध धर्म, भाषा, शिक्षा, पर्यटन
संबंधों की प्रकृति	ऐतिहासिक निरंतरता	बढ़ती समकालीन संस्थागत उपस्थिति
प्रमुख शक्ति	भौगोलिक एवं सभ्यतागत निकटता	आर्थिक संसाधन एवं संस्थागत क्षमता
प्रमुख चुनौती	ऐतिहासिक संबंधों को समकालीन रूप देना	सांस्कृतिक स्वीकार्यता को दीर्घकाल तक बनाए रखना

हाल के शोध में भी यह अंतर सामने आता है कि भारत की बौद्ध कूटनीति मुख्यतः सभ्यतागत निरंतरता, पवित्र स्थलों, तीर्थ नेटवर्क और विरासत संरक्षण पर आधारित है, जबकि चीन की रणनीति अधिक राज्य-केंद्रित एवं संस्थागत रूप से समन्वित दिखाई देती है।

इसलिए भारत और चीन की सांस्कृतिक प्रतिस्पर्धा को केवल 'कौन अधिक प्रभावशाली है' के प्रश्न तक सीमित करना उचित नहीं होगा। दोनों देशों की soft power की प्रकृति अलग-अलग है।

8. आलोचनात्मक विश्लेषण

चीन की बढ़ती सांस्कृतिक भूमिका के भारत-श्रीलंका संबंधों पर सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों प्रकार के प्रभाव दिखाई दे सकते हैं।

8.1 सकारात्मक पक्ष

पहला, चीन की बढ़ती भागीदारी श्रीलंका के लिए शिक्षा, पर्यटन, भाषा प्रशिक्षण तथा अंतरराष्ट्रीय अकादमिक संपर्कों के अतिरिक्त अवसर पैदा करती है।

दूसरा, सांस्कृतिक विरासत संरक्षण के क्षेत्र में बाहरी सहयोग श्रीलंका के लिए उपयोगी हो सकता है।

तीसरा, चीन और भारत दोनों के साथ संबंध रखने से श्रीलंका को अपनी विदेश नीति में विकल्प प्राप्त होते हैं।

चौथा, विभिन्न देशों के साथ सांस्कृतिक संपर्क श्रीलंका को एशियाई स्तर पर अपनी सांस्कृतिक पहचान को व्यापक रूप से प्रस्तुत करने का अवसर देते हैं।

8.2 नकारात्मक एवं चिंताजनक पक्ष

इसके बावजूद चीन की सांस्कृतिक कूटनीति के कुछ पहलुओं पर आलोचनात्मक दृष्टि आवश्यक है।

सबसे पहली चिंता यह है कि संस्कृति और रणनीतिक हितों के बीच अंतर हमेशा स्पष्ट नहीं रहता। यदि धार्मिक एवं सांस्कृतिक संपर्कों के साथ बड़े आर्थिक और सामरिक हित जुड़े हों तो सांस्कृतिक कूटनीति व्यापक विदेश नीति का साधन बन सकती है।

Rosendal के अध्ययन में यह तर्क सामने आता है कि चीन की बौद्ध रणनीतिक कथाएँ ठत्प् से संबंधित आर्थिक परियोजनाओं के साथ जुड़ी हुई थीं और साझा बौद्ध इतिहास का उपयोग द्विपक्षीय सहयोग को सकारात्मक रूप में प्रस्तुत करने के लिए किया गया।

दूसरी ओर, चीन की आर्थिक क्षमता उसे बड़े पैमाने पर छात्रवृत्ति, संस्थागत सहयोग, सांस्कृतिक कार्यक्रम और परियोजनाएँ संचालित करने की क्षमता देती है। इससे भारत के सामने यह चुनौती आती है कि केवल ऐतिहासिक निकटता के आधार पर भविष्य की सांस्कृतिक प्रभावशीलता सुनिश्चित नहीं की जा सकती।

9. क्या चीन भारत की सांस्कृतिक स्थिति को चुनौती दे रहा है?

यह प्रश्न इस पूरे अध्ययन का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष है।

एक दृष्टिकोण के अनुसार चीन की बढ़ती बौद्ध एवं सांस्कृतिक कूटनीति भारत के लिए चुनौती है। इसका कारण यह है कि भारत स्वयं को बौद्ध सभ्यता की जन्मभूमि के रूप में प्रस्तुत करता है और श्रीलंका के साथ उसका बौद्ध संबंध अत्यंत पुराना है। यदि चीन भी बौद्ध धर्म के माध्यम से श्रीलंका में अपनी सामाजिक स्वीकार्यता बढ़ाता है, तो इससे दोनों देशों के बीच सांस्कृतिक प्रतिस्पर्धा उत्पन्न हो सकती है।

हालाँकि दूसरा दृष्टिकोण अधिक संतुलित है। चीन भारत के ऐतिहासिक संबंधों को पूरी तरह समाप्त नहीं कर सकता, क्योंकि भारत और श्रीलंका के बीच संबंध केवल सरकारी परियोजनाओं पर आधारित नहीं हैं। धार्मिक यात्राएँ, परिवारों एवं समुदायों के संपर्क, ऐतिहासिक स्मृतियाँ और साझा बौद्ध विरासत इन संबंधों को गहराई प्रदान करती हैं।

अतः चीन की बढ़ती भूमिका को भारत के सांस्कृतिक प्रभाव के पूर्ण विकल्प के रूप में देखना उचित नहीं होगा। इसके बजाय इसे श्रीलंका में उभरती बहुस्तरीय सांस्कृतिक प्रतिस्पर्धा के रूप में समझना अधिक उचित है।

10. श्रीलंका की भूमिका : केवल प्रतिस्पर्धा का क्षेत्र नही

भारत और चीन के संदर्भ में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि श्रीलंका को केवल दो शक्तियों के बीच प्रतिस्पर्धा का निष्क्रिय क्षेत्र नहीं माना जाना चाहिए।

श्रीलंका अपने आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक हितों के आधार पर दोनों देशों से संबंध विकसित करता है। चीन से उसे आर्थिक निवेश, शिक्षा और आधारभूत संरचना के अवसर प्राप्त होते हैं, जबकि भारत के साथ उसके ऐतिहासिक, धार्मिक और भौगोलिक संबंध हैं।

इसलिए श्रीलंका की नीति को strategic balancing या संतुलनकारी दृष्टिकोण के रूप में देखा जा सकता है।

यहाँ श्रीलंका की agency को समझना आवश्यक है। वह भारत या चीन की नीतियों का केवल अनुसरण नहीं करता, बल्कि अपने हितों के अनुरूप दोनों देशों के साथ संबंधों का उपयोग करता है।

इस दृष्टि से भारत–चीन सांस्कृतिक प्रतिस्पर्धा को केवल ‘मतव-नउ हंउम’ मानना वास्तविक स्थिति को अत्यधिक सरल बना देगा।

11. भारत के लिए संभावित चुनौतियाँ एवं अवसर

चीन की बढ़ती सांस्कृतिक उपस्थिति भारत के लिए चुनौती अवश्य है, किंतु इसके साथ नए अवसर भी उपलब्ध हैं।

पहला, बौद्ध कूटनीति को और मजबूत करना

भारत को बौद्ध देशों के साथ केवल धार्मिक संबंधों पर निर्भर रहने के बजाय बौद्ध शिक्षा, शोध एवं विरासत संरक्षण का व्यापक नेटवर्क विकसित करना चाहिए।

दूसरा, बौद्ध पर्यटन को बढ़ावा देना

भारत में स्थित बोधगया, सारनाथ, कुशीनगर और अन्य बौद्ध स्थलों को श्रीलंकाई तीर्थयात्रियों के लिए अधिक सुविधाजनक एवं आकर्षक बनाया जा सकता है।

तीसरा, शिक्षा एवं युवा संपर्क

भारत को श्रीलंकाई विद्यार्थियों के लिए छात्रवृत्ति और उच्च शिक्षा के अवसर बढ़ाने के साथ-साथ युवा आदान-प्रदान कार्यक्रमों को भी मजबूत करना चाहिए।

चौथा, सांस्कृतिक कूटनीति का आधुनिकीकरण

भारत की सांस्कृतिक कूटनीति को केवल प्राचीन सभ्यता के गौरव तक सीमित नहीं रहना चाहिए। आधुनिक भारत

की शिक्षा, विज्ञान, तकनीक, सिनेमा, योग, आयुर्वेद, डिजिटल तकनीक और लोकतांत्रिक अनुभव को भी सांस्कृतिक संवाद का हिस्सा बनाया जाना चाहिए।

पाँचवाँ, श्रीलंका की स्वायत्तता का सम्मान

भारत के लिए यह आवश्यक है कि वह श्रीलंका के साथ संबंधों को केवल चीन के संदर्भ में न देखे। यदि भारत हर श्रीलंकाई-चीनी सहयोग को भारत-विरोधी गतिविधि के रूप में देखेगा, तो इससे द्विपक्षीय विश्वास प्रभावित हो सकता है।

12. निष्कर्ष

भारत और श्रीलंका के सामाजिक एवं सांस्कृतिक संबंधों की प्रकृति ऐतिहासिक, धार्मिक और सभ्यतागत आधारों पर निर्मित हुई है। बौद्ध धर्म ने इन संबंधों को विशेष गहराई प्रदान की है। आधुनिक काल में भारत ने बौद्ध तीर्थयात्रा, सांस्कृतिक विरासत, शिक्षा, छात्रवृत्ति तथा जन-से-जन संपर्क के माध्यम से इन संबंधों को संस्थागत रूप देने का प्रयास किया है।

दूसरी ओर, चीन की श्रीलंका में बढ़ती भूमिका ने इस सामाजिक-सांस्कृतिक परिदृश्य को नया स्वरूप दिया है। चीन अब केवल आर्थिक निवेशक या आधारभूत संरचना प्रदाता नहीं है। शिक्षा, चीनी भाषा, पर्यटन, बौद्ध आदान-प्रदान, सांस्कृतिक विरासत, मीडिया तथा अकादमिक सहयोग के माध्यम से वह श्रीलंका में अपनी सामाजिक उपस्थिति को मजबूत कर रहा है। 2025 का चीन–श्रीलंका संयुक्त वक्तव्य इस व्यापक सांस्कृतिक एवं जन-से-जन सहयोग की स्पष्ट पुष्टि करता है।

इसका अर्थ यह नहीं है कि चीन ने श्रीलंका में भारत की ऐतिहासिक सांस्कृतिक भूमिका को समाप्त कर दिया है। भारत की सबसे बड़ी शक्ति उसकी सभ्यतागत निकटता और ऐतिहासिक विश्वसनीयता है। वहीं चीन की शक्ति उसकी आर्थिक क्षमता, संस्थागत समन्वय और आधुनिक सांस्कृतिक कूटनीति में दिखाई देती है।

अतः श्रीलंका में भारत और चीन की भूमिका को प्रतिस्पर्धा के साथ-साथ सह-अस्तित्व और संतुलन की प्रक्रिया के रूप में समझना अधिक उपयुक्त होगा। श्रीलंका दोनों देशों के साथ अपने हितों के अनुसार संबंधों को विकसित कर रहा है। इसलिए वह केवल भारत और चीन के बीच प्रभाव की लड़ाई का क्षेत्र नहीं, बल्कि अपनी विदेश नीति और रणनीतिक स्वायत्तता का सक्रिय निर्धारक भी है।

अंततः कहा जा सकता है कि चीन की बढ़ती सामाजिक एवं सांस्कृतिक भूमिका भारत के लिए एक नई चुनौती अवश्य प्रस्तुत करती है, किंतु यह भारत की सभ्यतागत स्थिति का अंत नहीं है। इसके बजाय यह भारत को अपनी पारंपरिक सांस्कृतिक पूँजी को आधुनिक शिक्षा, पर्यटन, डिजिटल संपर्क, युवा आदान-प्रदान और संस्थागत सहयोग के माध्यम से पुनः सक्रिय करने की आवश्यकता को रेखांकित करती है।

भारत की भविष्य की रणनीति का उद्देश्य चीन को केवल रोकना नहीं, बल्कि श्रीलंका के साथ ऐसे समानता-आधारित, पारस्परिक सम्मान और साझा सभ्यतागत विरासत पर आधारित संबंधों को मजबूत करना होना चाहिए, जिनमें श्रीलंका स्वयं को किसी शक्ति के प्रभाव क्षेत्र के बजाय एक स्वतंत्र एवं सम्मानित साझेदार के रूप में अनुभव करे।

संदर्भ सूची

1. Ministry of EÛternal Affairs, Government of India. Brief on India–Sri Lanka Bilateral Relations.
2. Ministry of EÛternal Affairs, Government of India. People-to-People Ties: India–Sri Lanka Relations.
3. Ministry of Foreign Affairs of the People's Republic of China. Joint Statement between the People's Republic of China and the Democratic Socialist Republic of Sri Lanka, 2025.
4. Rosendal, Tabita. "China's Buddhist Strategic Narratives in Sri Lanka–Benefits and Buddhism\" The Pacific Review, 2022.

5. Attanayake, Chulanee. "China's Buddhist Influence in Sri Lanka." Centre for Security and Policy Studies, 2023.
6. Chung, Chien-peng. "China's Buddhist Diplomacy Under Xi Jinping: A Preliminary Investigation."
7. Scott, David. "Buddhism in Current China–India Diplomacy."
8. Confucius Institute, University of Colombo. Institutional information on Chinese language and cultural cooperation.
9. Confucius Institute, University of Kelaniya. Institutional information on Chinese language and educational cooperation.
10. Ministry of Foreign Affairs, Sri Lanka. Documents relating to India–Sri Lanka and China–Sri Lanka bilateral relations.

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

बुद्ध का जीवन, दर्शन और सामाजिक मूल्य : करुणा, अहिंसा और सद्भाव की दृष्टि

रविन्द्र कुमार गौतम

सारांश- भारतीय चिंतन-परंपरा में गौतम बुद्ध का स्थान केवल एक धार्मिक प्रवर्तक के रूप में नहीं, बल्कि एक ऐसे महान चिंतक, नैतिक शिक्षक और सामाजिक दृष्टा के रूप में है, जिन्होंने मनुष्य के दुःख, उसके कारणों और उससे मुक्ति के व्यावहारिक उपायों पर गंभीर विचार किया। बुद्ध का चिंतन कर्मकांड, अंधविश्वास और जन्माधारित श्रेष्ठता की अपेक्षा अनुभव, विवेक, नैतिक आचरण और करुणा को महत्त्व देता है। उनके द्वारा प्रतिपादित चार आर्य सत्य और आर्य अष्टांगिक मार्ग जीवन की समस्याओं को समझने तथा उनके समाधान की एक व्यवस्थित नैतिक-दार्शनिक पद्धति प्रस्तुत करते हैं। मध्यम मार्ग, प्रतीत्यसमुत्पाद, अनित्य, अनात्म और निर्वाण जैसी अवधारणाएँ बौद्ध दर्शन की वैचारिक आधारभूमि निर्मित करती हैं। साथ ही अहिंसा, मैत्री, करुणा, समता और सदाचार जैसे मूल्य व्यक्ति तथा समाज दोनों के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। प्रस्तुत शोध-पत्र में बुद्ध के जीवन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, उनके बौद्धिक विकास, प्रमुख दार्शनिक सिद्धांतों और सामाजिक दृष्टि का विवेचन किया गया है। इसके अतिरिक्त आधुनिक लोकतांत्रिक समाज, सामाजिक न्याय, शांति, पर्यावरणीय संवेदनशीलता और मानवीय संबंधों के संदर्भ में बुद्ध के विचारों की प्रासंगिकता पर भी विचार किया गया है। अध्ययन का निष्कर्ष है कि बुद्ध का चिंतन किसी एक काल या समुदाय तक सीमित नहीं है; उसमें मानव-मुक्ति, नैतिक विवेक और सह-अस्तित्व की ऐसी सार्वभौमिक दृष्टि है, जो आज भी मनुष्य को अधिक संवेदनशील और जिम्मेदार बनाने की क्षमता रखती है।

बीज शब्द : बुद्ध, गौतम बुद्ध, बौद्ध दर्शन, चार आर्य सत्य, अष्टांगिक मार्ग, मध्यम मार्ग, करुणा, अहिंसा, सामाजिक समता, निर्वाण।

1. प्रस्तावना- भारतीय इतिहास में ईसा पूर्व छठी शताब्दी का काल सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और बौद्धिक परिवर्तन का काल था। नगरों का विकास, व्यापारिक गतिविधियों का विस्तार, नए सामाजिक समूहों का उभार और वैदिक कर्मकांड की जटिलता के प्रति बढ़ती असंतुष्टि ने नए चिंतन के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ निर्मित कीं। इसी परिवेश में अनेक श्रमण परंपराएँ विकसित हुईं। जैन, आजीवक और अन्य विचारधाराओं के साथ बौद्ध परंपरा ने भी मनुष्य और समाज की समस्याओं पर नए ढंग से विचार किया। सिद्धार्थ गौतम का उदय इसी व्यापक वैचारिक परिवर्तन की पृष्ठभूमि में हुआ।

2. बुद्ध के जीवन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि- गौतम बुद्ध का जन्म शाक्य गणराज्य के क्षेत्र में लुंबिनी में हुआ माना जाता है। परंपरा के अनुसार उनके पिता शुद्धोधन शाक्य कुल से संबंधित थे और माता महामाया थीं। उनका प्रारंभिक नाम सिद्धार्थ था। राजकीय परिवेश में पालन-पोषण होने के बावजूद सिद्धार्थ के भीतर जीवन की मूल समस्याओं को समझने की जिज्ञासा विकसित हुई। वृद्धावस्था, रोग, मृत्यु और संन्यासी के अनुभवों ने उन्हें जीवन की अनित्यता और दुःख के प्रश्न पर गंभीरता से सोचने के लिए प्रेरित किया।

युवा अवस्था में उन्होंने गृहत्याग किया और विभिन्न आचार्यों से साधना तथा दार्शनिक ज्ञान प्राप्त किया। कठोर तपस्या के अनुभव के बाद उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि न तो इंद्रिय-भोग में डूबना मुक्ति का मार्ग है और न ही शरीर को अत्यधिक

कष्ट देना। इसी अनुभव से मध्यम मार्ग की अवधारणा विकसित हुई। गया के निकट उरुवेला में ध्यान-साधना के पश्चात उन्हें बोधि की प्राप्ति हुई और वे 'बुद्ध' अर्थात जाग्रत हुए। बोधि प्राप्ति के बाद बुद्ध ने सारनाथ के मृगदाय में अपने प्रथम उपदेश के माध्यम से धर्मचक्र प्रवर्तन किया। इसके बाद उन्होंने लगभग चार दशकों तक उत्तर भारत के विभिन्न क्षेत्रों में भ्रमण करते हुए अपने विचारों का प्रचार किया। उनके प्रमुख शिष्यों में सारिपुत्र, महामौद्गल्यायन, आनंद और महाकाश्यप का उल्लेख मिलता है। संघ की स्थापना ने बौद्ध परंपरा को संगठित स्वरूप प्रदान किया। कुशीनगर में महापरिनिर्वाण के साथ उनके जीवन का लौकिक अध्याय समाप्त हुआ, किंतु उनकी शिक्षाओं का प्रभाव निरंतर बढ़ता गया।

3. बुद्ध और उनके समय की सामाजिक-धार्मिक परिस्थितियाँ- बुद्ध के समय समाज में धार्मिक कर्मकांड और यज्ञ-परंपराएँ प्रभावशाली थीं। धार्मिक जीवन का एक बड़ा हिस्सा अनुष्ठानों और पुरोहितीय व्यवस्था से जुड़ा था। दूसरी ओर नगरों, व्यापार और नए आर्थिक समूहों के विकास ने सामाजिक संरचना में परिवर्तन पैदा किया। इन परिवर्तनों के बीच यह प्रश्न महत्त्वपूर्ण था कि धार्मिक और नैतिक श्रेष्ठता का आधार जन्म है या आचरण।

4. चार आर्य सत्य : दुःख की समस्या और उसका समाधान- बुद्ध के दर्शन का केंद्रीय आधार चार आर्य सत्य हैं। पहला सत्य दुःख का है। जन्म, जरा, व्याधि, मृत्यु, अप्रिय से संयोग, प्रिय से वियोग तथा इच्छित वस्तु की अप्राप्ति आदि जीवन की असंतोषजनक स्थितियों की ओर संकेत करते हैं। यहाँ दुःख का अर्थ केवल शारीरिक पीड़ा नहीं, बल्कि जीवन की अनित्यता के कारण उत्पन्न असंतोष और असुरक्षा भी है। दूसरा आर्य सत्य दुःख के कारण की पहचान करता है। तृष्णा, आसक्ति और इच्छा की वह प्रवृत्ति जो वस्तुओं, अनुभवों और अस्तित्व को स्थायी रूप में पकड़ना चाहती है, दुःख की उत्पत्ति में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। तीसरा आर्य सत्य यह प्रतिपादित करता है कि दुःख का निरोध संभव है। अर्थात मनुष्य तृष्णा और आसक्ति के क्षय के माध्यम से दुःख से मुक्ति की दिशा में आगे बढ़ सकता है। चौथा आर्य सत्य उस मार्ग को बताता है जो दुःख-निरोध की ओर ले जाता है—यह आर्य अष्टांगिक मार्ग है।

5. आर्य अष्टांगिक मार्ग और नैतिक जीवन- आर्य अष्टांगिक मार्ग बुद्ध की नैतिक और साधनात्मक दृष्टि का व्यवस्थित रूप है। इसमें सम्यक दृष्टि, सम्यक संकल्प, सम्यक वाणी, सम्यक कर्मांत, सम्यक आजीविका, सम्यक व्यायाम, सम्यक स्मृति और सम्यक समाधि शामिल हैं। इन आठ अंगों को सामान्यतः प्रज्ञा, शील और समाधि के व्यापक वर्गों में समझा जाता है।

निष्कर्ष- गौतम बुद्ध का व्यक्तित्व और चिंतन भारतीय इतिहास तथा विश्व की बौद्धिक परंपरा की अमूल्य धरोहर है। उन्होंने मानव जीवन की मूल समस्या—दुःख—को केंद्र में रखकर उसके कारण और निरोध का व्यावहारिक मार्ग प्रस्तुत किया। चार आर्य सत्य, अष्टांगिक मार्ग, मध्यम मार्ग, प्रतीत्यसमुत्पाद, अनित्य, अनात्म और निर्वाण जैसी अवधारणाएँ बौद्ध दर्शन की वैचारिक आधारभूमि बनाती हैं।

बुद्ध की महानता केवल उनके दार्शनिक सिद्धांतों में नहीं, बल्कि उनके नैतिक और सामाजिक दृष्टिकोण में भी है। करुणा, मैत्री, अहिंसा, समता, संयम और विवेक जैसे मूल्य मनुष्य को अपने भीतर तथा समाज के साथ बेहतर संबंध स्थापित करने की प्रेरणा देते हैं। उन्होंने जन्माधारित श्रेष्ठता की अपेक्षा आचरण और नैतिकता को महत्त्व देकर सामाजिक गरिमा की एक वैकल्पिक दृष्टि प्रस्तुत की।

आज जब विश्व हिंसा, असमानता, उपभोग की अति, मानसिक तनाव और सामाजिक ध्रुवीकरण जैसी चुनौतियों का सामना कर रहा है, तब बुद्ध के विचारों का पुनर्पाठ उपयोगी हो सकता है। बुद्ध किसी संकीर्ण धार्मिक आग्रह के प्रतीक नहीं, बल्कि जागरूकता, करुणा और विवेक की सार्वभौमिक मानवीय परंपरा के प्रतिनिधि हैं।

अतः बुद्ध का चिंतन अतीत का केवल ऐतिहासिक विषय नहीं है। यह वर्तमान मनुष्य से यह प्रश्न पूछता है कि वह अपनी इच्छाओं, क्रोध, अहंकार और असहिष्णुता के साथ किस प्रकार व्यवहार करता है; वह दूसरों के दुःख को कितना समझता है; और वह व्यक्तिगत स्वतंत्रता को सामाजिक जिम्मेदारी से कैसे जोड़ता है। इस अर्थ में बुद्ध की शिक्षाएँ आज भी मनुष्य को अधिक मानवीय, विवेकशील और सह-अस्तित्ववादी बनाने की दिशा में महत्त्वपूर्ण मार्गदर्शन प्रदान करती हैं।

संदर्भ ग्रंथ एवं स्रोत

1. आंबेडकर, भीमराव रामजी. बुद्ध और उनका धम्म. नई दिल्ली : सिद्धार्थ प्रकाशन.
2. धम्मपद. भिक्षु जगदीश काश्यप (सं.). वाराणसी : महाबोधि सभा.
3. राहुल सांकृत्यायन. बौद्ध दर्शन. इलाहाबाद : किताब महल.
4. राहुल सांकृत्यायन. दर्शन-दिग्दर्शन. इलाहाबाद : किताब महल.
5. नालिनाक्ष दत्त. बौद्ध धर्म का इतिहास एवं दर्शन. नई दिल्ली : संबंधित भारतीय संस्करण.
6. कोसांबी, डी. डी. प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन.
7. थापर, रोमिला. प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास और अन्य अध्ययन. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन.
8. वर्मा, के. एम. (सं.). बौद्ध दर्शन और भारतीय चिंतन पर विविध अध्ययन. नई दिल्ली : संबंधित अकादमिक संस्करण.
9. दीघनिकाय. पालि बौद्ध साहित्य का प्रमुख निकाय.
10. मज्झिमनिकाय. पालि बौद्ध साहित्य का प्रमुख निकाय.
11. संयुक्तनिकाय. पालि बौद्ध साहित्य का प्रमुख निकाय.
12. विनयपिटक. बौद्ध संघ की अनुशासन एवं संस्थागत परंपरा का प्रमुख स्रोत.

रविन्द्र कुमार गौतम

करमा बाजार, प्रयागराज

मो- 8738926772

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

सीता और शबरी की संवेदना : एक तुलनात्मक अध्ययन

प्रियंका खंडेलवाल

सारांश- भारतीय साहित्य की समृद्ध परंपरा में वाल्मीकि रामायण एवं संत शिरोमणि तुलसीदास जी की रामचरितमानस का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह केवल धार्मिक पुस्तकें नहीं, बल्कि भारतीय जीवन-दर्शन, नैतिक एवं मानवीय संवेदनाओं का व्यापक दस्तावेज हैं। रामायण एवं रामचरितमानस के स्त्री-पात्रों में सीता और शबरी का स्थान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। दोनों की सामाजिक पृष्ठभूमि, जीवन-परिस्थितियाँ और संघर्ष अलग-अलग हैं, परन्तु दोनों के व्यक्तित्व में त्याग, समर्पण, धैर्य, प्रेम, करुणा, सेवा और आत्मबल जैसी मानवीय संवेदनाएँ अत्यन्त प्रभावशाली रूप में अभिव्यक्त होती हैं।

सीता जहाँ मर्यादा, दाम्पत्य-निष्ठा, आत्मसम्मान और मातृत्व की संवेदना को अभिव्यक्त करती हैं, वहीं शबरी भक्ति, गुरु-निष्ठा, सेवा, प्रतीक्षा और सामाजिक समरसता की प्रतिनिधि हैं। इस प्रकार दोनों पात्र भारतीय संस्कृति में स्त्री-संवेदना के दो विशिष्ट, किंतु परस्पर पूरक रूप प्रस्तुत करते हैं। प्रस्तुत शोध-पत्र में सीता और शबरी की संवेदनाओं का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि दोनों पात्रों की संवेदना के केंद्र अलग होते हुए भी उनकी मूल चेतना मानवता, प्रेम और नैतिकता से जुड़ी हुई है।

मुख्य शब्द- सीता, शबरी, रामायण, संवेदना, तुलनात्मक अध्ययन, त्याग, धैर्य, भक्ति, करुणा, आत्मसम्मान, सेवा, सामाजिक समरसता।

प्रस्तावना- भारतीय साहित्य में मनुष्य के बाह्य जीवन के साथ-साथ उसके अंतर्मन की अनुभूतियों को भी अभिव्यक्ति मिलती है। प्रेम, करुणा, त्याग, सहानुभूति, सेवा, समर्पण और आत्मसम्मान जैसी भावनाएँ भारतीय साहित्य की मूल संवेदनात्मक भूमि का निर्माण करती हैं।[1] इसी संदर्भ में रामायण एवं रामचरितमानस का अध्ययन अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता है। महर्षि वाल्मीकि द्वारा रचित रामायण भारतीय साहित्य परंपरा का महत्वपूर्ण ग्रंथ है। गोस्वामी तुलसीदास का श्रीरामचरितमानस, लोक कथाएँ एवं अनेक टीका इसी परंपरा की अत्यंत प्रभावशाली कृतियाँ हैं। रामकथा के स्त्री-पात्रों में सीता और शबरी दो ऐसे चरित्र हैं, जिनकी सामाजिक स्थितियाँ भिन्न हैं, लेकिन उनकी मानवीय संवेदनाएँ अत्यंत गहरी हैं। सीता राजमहल से वन और वन से अशोक वाटिका तक संघर्ष करती हैं, जबकि शबरी वनवासी जीवन में रहते हुए गुरु-भक्ति और राम-प्रतीक्षा को अपने जीवन का आधार बनाती हैं।[2] इन दोनों पात्रों का तुलनात्मक अध्ययन यह समझने में सहायता करता है कि अलग-अलग सामाजिक परिस्थितियों में स्त्री की संवेदना किस प्रकार अलग रूप ग्रहण करती है और फिर भी उसके मूल में प्रेम, निष्ठा और मानवीय गरिमा किस प्रकार बनी रहती है।

त्याग एवं समर्पण : सीता और शबरी- सीता के व्यक्तित्व में त्याग और समर्पण अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। राम को वनवास मिलने पर वे स्वयं भी वन जाने का निर्णय लेती हैं। गोस्वामी तुलसीदासकृत रामायण 'बालबोधनी' टीका में उनका भाव अत्यंत मार्मिक रूप में व्यक्त हुआ है–

> **"प्राणनाथ करुनायतन सुंदर सुखद सुजान।**
> **तुम्ह बिनु रघुकुल कुमुद बिधु सुरपुर नरक समान॥"[3]**

सीता के लिए राम का साथ ही जीवन का वास्तविक सुख है। इसलिए वे राजसी सुख-सुविधाओं का त्याग कर वन के कठिन जीवन को स्वीकार करती हैं। इसी प्रकार शबरी के जीवन में भी त्याग और समर्पण का स्वरूप दिखाई देता है। शबरी के पास राजसी वैभव नहीं है। उनके जीवन का आधार गुरु-सेवा, साधना और राम की प्रतीक्षा है। उन्होंने सांसारिक सुख-सुविधाओं की अपेक्षा अपने गुरु के आदेश और राम-दर्शन की अभिलाषा को जीवन का उद्देश्य बनाया। इस प्रकार सीता का त्याग दाम्पत्य-निष्ठा से जुड़ा है, जबकि शबरी का त्याग गुरु-निष्ठा और भक्ति से। दोनों के समर्पण का केंद्र भिन्न होते हुए भी दोनों में पूर्ण निष्ठा और प्रेम की भावना समान रूप से विद्यमान है।

धैर्य एवं आत्मबल : सीता और शबरी- सीता का जीवन अनेक कठिनाइयों से गुजरता है। वाल्मीकि रामायण में सीता अपनी राम-निष्ठा को स्पष्ट करते हुए कहती हैं—

"अनन्या राघवेणाहं भास्करेण प्रभा यथा।"[4] अर्थात् जिस प्रकार सूर्य और उसकी प्रभा को अलग नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार मैं राम से अभिन्न हूँ। यह कथन उनके प्रेम के साथ-साथ उनके मानसिक आत्मबल को भी व्यक्त करता है। रावण के अत्याचार और प्रलोभन के सामने उनका धैर्य टूटता नहीं है। दूसरी ओर शबरी के जीवन में धैर्य और प्रतीक्षा का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। गुरु के निर्देश के अनुसार वह राम के आगमन की प्रतीक्षा करती रहती हैं। उनका जीवन इसी विश्वास पर आधारित है कि एक दिन राम उनके आश्रम में अवश्य आएँगे। वर्षों की प्रतीक्षा के बावजूद उनकी आस्था कमजोर नहीं होती। इस प्रकार सीता का धैर्य विपरीत परिस्थितियों और अत्याचार के बीच दिखाई देता है, जबकि शबरी का धैर्य दीर्घकालीन प्रतीक्षा और विश्वास के रूप में प्रकट होता है। दोनों पात्रों में परिस्थितियों के सामने न टूटने वाला आत्मबल दिखाई देता है।

आत्मसम्मान और सामाजिक समरसता : सीता और शबरी- सीता के चरित्र का अत्यंत महत्वपूर्ण पक्ष उनका आत्मसम्मान है। अशोक वाटिका में रावण उन्हें भय और प्रलोभन दोनों के माध्यम से अपने पक्ष में करने का प्रयास करता है, लेकिन सीता उसके समक्ष झुकती नहीं हैं। गोस्वामी तुलसीदासकृत रामायण 'बालबोधनी' टीका में सीता की महत्ता इस प्रकार व्यक्त होती है—

"जनकसुता जग जननि जानकी।
अतिसय प्रिय करुनानिधान की॥"[5]

सीता केवल राम की पत्नी नहीं, बल्कि भारतीय सांस्कृतिक चेतना में आदर्श नारीत्व का महत्वपूर्ण प्रतीक बन जाती हैं। उनका आत्मसम्मान परिस्थितियों से समझौता न करने की शक्ति देता है। शबरी के चरित्र में सामाजिक समरसता का भाव विशेष रूप से दिखाई देता है। यहाँ सामाजिक ऊँच-नीच की सीमाएँ समाप्त होती हैं और प्रेम तथा भक्ति को प्रधानता प्राप्त होती है। इस प्रकार सीता अपने आत्मसम्मान के माध्यम से नारी की गरिमा को स्थापित करती हैं, जबकि शबरी अपने निष्कपट प्रेम और भक्ति के माध्यम से सामाजिक भेदभाव से ऊपर उठकर समरसता का संदेश देती हैं।

गुरु-भक्ति एवं दाम्पत्य-निष्ठा : सीता और शबरी- शबरी का चरित्र गुरु-भक्ति का अद्‌भुत उदाहरण है। मतंग ऋषि की सेवा और उनके प्रति श्रद्धा शबरी के जीवन का आधार रहा। गुरु के निर्देश को वह जीवन-साधना मानकर राम की प्रतीक्षा करती रहती हैं। भारतीय परंपरा में गुरु के महत्व को इस प्रसिद्ध उक्ति में व्यक्त किया गया है—

"गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुर्साक्षात् परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥"[6]

शबरी की भक्ति केवल धार्मिक आस्था नहीं, बल्कि गुरु के प्रति पूर्ण विश्वास और समर्पण की संवेदना है। इसके समानांतर सीता के चरित्र में दाम्पत्य-निष्ठा प्रमुख रूप से दिखाई देती है। राम के वनवास के समय वे अपने पति का साथ देने के लिए राजमहल के सुखों का त्याग करती हैं। उनके लिए पति का साथ ही जीवन का वास्तविक सुख है। इस प्रकार शबरी की संवेदना गुरु-भक्ति से और सीता की संवेदना दाम्पत्य-निष्ठा से जुड़ी है, किंतु दोनों के मूल में विश्वास, प्रेम और समर्पण की समान भावना विद्यमान है।

सेवा, प्रतीक्षा और निष्काम प्रेम : सीता और शबरी- शबरी के पास राजसी वैभव नहीं है। उनके पास केवल कंद-मूल और फल हैं, लेकिन वे इन्हें अत्यंत प्रेम से राम को अर्पित करती हैं। उनके लिए सेवा ही प्रेम की अभिव्यक्ति है। तुलसीदास कृत रामायण 'बालबोधनी' में राम के शबरी-आश्रम पहुँचने का प्रसंग अत्यंत भावपूर्ण है–

"कंद मूल फल सुरस अति, दिए राम कहुँ आनि।
प्रेम सहित प्रभु खाए, बारंबार बखानि॥"[7]

शबरी की प्रतीक्षा का चरम उस समय दिखाई देता है जब राम वास्तव में उनके आश्रम पहुँचते हैं। वर्षों की साधना और प्रतीक्षा एक क्षण में सार्थक हो जाती है। सीता के जीवन में भी प्रेम और समर्पण का स्वरूप अत्यंत गहरा है। वे राम के साथ वन जाती हैं और विपरीत परिस्थितियों में भी अपनी निष्ठा बनाए रखती हैं। इस प्रकार सीता का प्रेम साथ और संघर्ष के माध्यम से अभिव्यक्त होता है, जबकि शबरी का प्रेम सेवा और प्रतीक्षा के माध्यम से। शबरी का चरित्र यह स्थापित करता है कि प्रेम की श्रेष्ठता वस्तु के मूल्य में नहीं, बल्कि भावना की पवित्रता में होती है।

नवधा भक्ति और संवेदनात्मक समर्पण : सीता और शबरी- शबरी प्रसंग में नवधा भक्ति का विशेष महत्व है। श्रीराम कहते हैं–

"प्रथम भगति संतन्ह कर संगा।
दूसरि रति मम कथा प्रसंगा॥"[8]

नवधा भक्ति के माध्यम से भक्ति के विभिन्न रूपों को स्पष्ट किया गया है। सत्संग, कथा-श्रवण, गुरु-सेवा, सरलता, संतोष और ईश्वर में विश्वास जैसे तत्व शबरी के जीवन में दिखाई देते हैं। इस दृष्टि से शबरी स्वयं नवधा भक्ति के व्यवहारिक स्वरूप का उदाहरण बन जाती हैं। वहीं सीता के जीवन में भी समर्पण, निष्ठा, प्रेम और विश्वास की संवेदना निरंतर दिखाई देती है। दोनों के जीवन में भक्ति और समर्पण का रूप अलग है, किंतु दोनों ही अपने आराध्य और अपने जीवन-मूल्यों के प्रति अटूट निष्ठा रखती हैं।

करुणा, प्रेम और मानवीय संवेदना : सीता और शबरी- सीता और शबरी दोनों के चरित्र में प्रेम और करुणा की संवेदना अत्यंत प्रभावशाली रूप में दिखाई देती है। सीता का प्रेम दाम्पत्य संबंध से जुड़कर त्याग, धैर्य और आत्मबल को जन्म देता है। उनके जीवन की पीड़ा पाठक के मन में करुणा उत्पन्न करती है और उनके संघर्ष के माध्यम से नारी की आंतरिक शक्ति सामने आती है। शबरी का प्रेम निष्काम और सरल है। वे किसी प्रतिफल की अपेक्षा नहीं करतीं। वर्षों तक राम की प्रतीक्षा करना और उनके आगमन पर प्रेमपूर्वक कंद-मूल-फल अर्पित करना उनकी निष्कपट संवेदना का परिचायक है। इस प्रकार सीता का प्रेम संघर्ष में तपता है और शबरी का प्रेम प्रतीक्षा में परिपक्व होता है। दोनों पात्रों में प्रेम की पवित्रता और मानवीयता समान रूप से दिखाई देती है।

निष्कर्ष- सीता और शबरी रामकथा के दो ऐसे स्त्री-पात्र हैं, जिनके माध्यम से भारतीय संस्कृति में नारी की संवेदनात्मक शक्ति के विविध रूप सामने आते हैं। सीता का जीवन त्याग, दांपत्य-निष्ठा, धैर्य, आत्मसम्मान और मातृत्व की गहरी अनुभूति से निर्मित है। वे विपरीत परिस्थितियों में भी अपने व्यक्तित्व की गरिमा को बनाए रखती हैं। दूसरी ओर शबरी गुरु-भक्ति, प्रतीक्षा, सेवा, सरलता और निष्काम प्रेम की प्रतिमूर्ति हैं। दोनों के जीवन की परिस्थितियाँ भिन्न होने पर भी उनका मूल भाव प्रेम और समर्पण है। सीता का प्रेम संघर्ष में तपता है और शबरी का प्रेम प्रतीक्षा में परिपक्व होता है। एक ओर सीता हमें आत्मसम्मान और धैर्य का संदेश देती हैं, तो दूसरी ओर शबरी यह बताती हैं कि निष्कपट प्रेम और भक्ति में सामाजिक भेदों के लिए कोई स्थान नहीं होता। अतः सीता और शबरी की संवेदना का अध्ययन केवल दो स्त्री-पात्रों का अध्ययन नहीं, बल्कि मानवीय भावनाओं के दो सशक्त रूपों–मर्यादित प्रेम और निष्काम भक्ति–का अध्ययन है। दोनों पात्र रामकथा को मानवीय गहराई प्रदान करते हैं और भारतीय साहित्य में नारी-संवेदना के विविध आयामों को उजागर करते हैं।

सन्दर्भ सूची

1. हुसैन, आबिद. भारत की संस्कृति राष्ट्रीय संस्कृति. राष्ट्रीय पुस्तक न्यास.1987. पृष्ठ 21
2. राजीव मिश्र (संपादक). श्रीराम लीला स्मारिका.प्रयागरूश्री पथरचट्टी रामलीला कमेटी. पृष्ठ 15
3. पं. रूपनारायण पाण्डेय (संपादक). तुलसीदास कृत रामायण 'बालबोधनी' टीका. लखनऊ : नवलकिशोर बुक डिपो. पृष्ठ 375
4. शास्त्री, रामनारायणदत्त.श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण. गोरखपुर : गीता प्रेस.सं0 2017. पृष्ठ नंबर 918
5. पं. रूपनारायण पाण्डेय (संपादक). तुलसीदास कृत रामायण 'बालबोधनी' टीका. लखनऊ : नवलकिशोर बुक डिपो. पृष्ठ 378
6. holybooks-com
7. पं. रूपनारायण पाण्डेय (संपादक). 'बालबोधनी' टीका. लखनऊ : नवलकिशोर बुक डिपो. पृष्ठ 626
8. पं. रूपनारायण पाण्डेय (संपादक). 'बालबोधनी' टीका. लखनऊ : नवलकिशोर बुक डिपो. पृष्ठ 628

शोधार्थिनी

किशोरी रमण महिला स्नातकोत्तर

महाविद्यालय, मथुरा (उत्तर प्रदेश)

मो- 827991673

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

सुषम बेदी के उपन्यासों में अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष करते नारी पात्र

कल्पना सिंह, प्रो. शिखा श्रीधर

"नारी। तुम केवल श्रद्धा हो विश्वास-रजत-नग पगतल में
पीयूष स्रोत सी बहा करो जीवन के सुन्दर समतल में।"[1]

जयशंकर प्रसाद की 'कामायनी' के लज्जा सर्ग की ये पंक्तियाँ नारी आदरणीय छवि, उसके गौरव एवं त्याग का अति सुन्दर चित्रण करती हैं। नारी केवल भोग की वस्तु नहीं है, बल्कि वह तो आदर, विश्वास, निष्ठा, समर्पण एवं पवित्रता की वह जीवित मूरत है जो कि मानव जीवन को शीतलता एवं प्रेम रूपी सुधा में सराबोर कर देती है।

प्राचीन काल से ही नारी को देवी का स्थान दिया गया है। नारी हर रूप में आदरणीय एवं पूजनीय है। मनुस्मृति के तृतीय अध्याय के 56वे श्लोक में भी नारी की महत्ता बताते हुएओ कहा है कि –

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र' देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वासत्रत्राफलाः क्रियाः।।"[2]

मेरे शोध आलेख का विषय है "सुषम बेदी के उपन्यासों में अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष करते नारी पात्र।" सुषम बेदी प्रवासी महिला हिंदी साहित्यकारों में एक ऐसा प्रतष्ठित नाम है जिन्होंने प्रवासी नारी को ही अपने साहित्य सृजन का आधार बनाया। अमेरिकी प्रवासी महिला हिंदी साहित्यकार सुषम बेदी ने कुल 9 उपन्यास लिखे हैं। इन्होंने नारी पात्रों को ही कथानक का केन्द्र बिन्दु बनाया है। इन्होंने अपने उपन्यासों में प्रवासी स्त्री की मनोदशा, भारतीय एवं पाश्चात्य संस्कृति से उत्पन्न हुए तनाव, अकेलेपन, बेगानेपन एवं नस्लीय भेदभाव को कथानक का आधार स्तम्भ बनाया है। भारत में घर की चाहरदीवारी ने रहने वाली ये स्त्री जब परदेश गयी तो वहाँ का खुला माहौल, आर्थिक स्वतंत्रता एवं सम्पन्नता देखकर हैरान रह गयी, क्योंकि भारत में तो वह जन्म से बाल्यावस्था तक पिता, युवास्था में भाई, विवाहोपरांत पति एवं वृद्धावस्था में पुत्र के नियंत्रण में रही और हमेशा इन्हीं पर निर्भर रही एवं कभी भी गलत बात का विरोध तक नहीं कर सकी। सुषम बेदी के उपन्यासों में मुख्यरूप से प्रवासी परिवेश (Diasporic Context) की नारी की स्थिति का चित्रण पारंपरिक बनाम आधुनिक मूल्यों के द्वन्द्व में फँसी दिखती है। जो बेगानी धरती पर अपनी अस्मिता की तलाश कर रही है। सुषम बेदी स्वयं एक प्रवासी साहित्यकार थीं उन्होंने पाश्चात्य देशों की चकाचौंध के पीछे भारतीय प्रवासी महिलाओं की मानसिक पीड़ा एवं अन्तर्द्वन्द्व को स्वयं भी झेला था एवं वहाँ के परिवेश में प्रत्यक्ष देखा भी था। इतना ही नहीं अन्य प्रवासी स्त्रियों की भाँति उन्होंने भी विदेशी धरती पर स्वयं को स्थापित करने में संघर्ष किया था शायद यही सबसे बड़ा एवं ठोस कारण है कि वे अपने उपन्यासों में प्रवासी भारतीय स्त्रियों का अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष का सूक्ष्म एवं गहन चित्रण करने में पूर्णतरू सफल रही हैं। आगे हम सुषम बेदी के उपन्यासों में नारी के अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष की गाथा पर चर्चा करेंगे।

सुषम बेदी का प्रथम उपन्यास 'हवन' था जो कि उन्होंने 1989 में लिखा था। 'हवन' उपन्यास में लेखिका ने प्रवासी भारतीय नारी के जीवन की विषमताओं का बड़ा सूक्ष्म एवं गहन चित्रण किया है। ये उपन्यास अपने भीतर प्रवासी नारी के

जीवन में होने वाले उतार-चढ़ावों को अपनी भीतर समाहित किए है। उपन्यास की नायिका 'गुड्डो' जो भारत में अपने पति एवं बच्चों के साथ सुखी जीवन-यापन कर रही थी। अपने पति की असमय मृत्यु के बाद अपने पुत्र राजू को लेकर अपनी छोटी बहन पिंकी के बुलाने पर अमेरिका चली जाती है। कुछ दिन तो पिंकी के यहाँ पर उसके अच्छे कटते हैं। आरम्भ में तो सब कुछ ठीक चलता है, किंतु पिंकी भी आर्थिक रूप से अधिक सम्पन्न नहीं थी। धीरे-धीरे शुरू होता है उसका अपने जीवन-यापन तथा न्यूयार्क जैसे शहर में अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष का दौर। पिंकी के रवैये से आहत होकर वह अपनी दूसरी बहन गीता जो अमेरिका में ही रहती है, उसके यहाँ राजू को लेकर रहने चली जाती है किन्तु वहाँ भी गुड्डो को उसके साथ व उसके बच्चों के साथ होने वाले वैचारिक मतभेद ही दोनों बहनों के बीच कटुता उत्पन्न कर देते हैं, अतः वह वहाँ से भी एक छोटे से घर में रहने चली जाती है और जो गुड्डो भारत में एक बड़े से घर में ठाट से रहती थी। अब जीविकोपार्जन हेतु सेल्सगर्ल की नौकरी भी करने को तैयार हो जाती है तो कभी अकाउंटिंग क्लर्क की नौकरी करती है। जो गुड्डो भारत में खदानो के मालिक पति के साथ नौकरी-चाकर एवं बड़ी सी कोठी में रुतबे के साथ रहती थी, वही गुड्डो विदेश में जीवनयापन के लिए अपनी अस्मिता के साथ समझौता करने को भी तैयार हो जाती है। इतना ही नहीं वह डॉ. जुनेजा के एहसास तले दबी होने के कारण उसके साथ संबंध तक स्थापित कर लेती है, जबकि उसकी अन्तरात्मा इसके लिए मना करती है।

'लौटना' उपन्यास की नायिका मीरा है जो खोने और पाने के द्वन्द्व में अपनी अस्मिता की खोज करती हुई नजर आती है। जो मीरा अपने उसूलों एवं सिद्धान्तों से कभी समझौता नहीं नहीं कर सकती है, और अपनी एक स्वतंत्र पहचान बनाने में विश्वास रखती है वही मीरा विजय से विवाह करने के उपरांत अपनी अस्मिता को खोता हुआ सा महसूस करती है वह सिर्फ विजय की पत्नी बन कर रह जाती है। अमेरिका की मशीनी जिंदगी में उसके शौक पिसकर रह जाते हैं तो भारत लौटने का निर्णय लेती है, क्योंकि वह शरीर से भले ही परदेश में भले ही हो किन्तु मन तो उसका हिन्दुस्तान में ही अटका हुआ है। मीरा की मनोस्थिति को अंजना संधीर की इन पंक्तियों में व्यक्त किया जा सकता है–

"ख्याल उसका हरेक लम्हा मन में रहता है,
वो शमा बन के मेरी अंजुमन में रहता है।
मेरे तेरे पास हूँ परदेश में हूँ, खुश भी हूँ,
मगर ख्याल में हर दम वतन में रहता है।"[3]

उपन्यास में मीरा के माध्यम से लेखिका ने बताने का प्रयास किया है कि भारत में ही नहीं बल्कि विदेश में, प्रवासी स्त्री को भी पारिवारिक जिम्मेदारियों एवं समाजिक दायित्वों क चलने न जाने कितने बार अपनी ख्वाहिशों को मार देना पड़ता है, यहाँ तक कि उसका अपना पति भी उसका साथ न देकर अपनी जिम्मेदारियों से मुँह मोड़ लेता है। अपनी अस्मिता की ये लड़ाई उसे खुद ही लड़नी पड़ती है। 'लौटना' उपन्यास में माध्यम से सुषम बेदी ने पुरुषवर्चस्ववादी समाज के खिलाफ स्त्री प्रतिरोध दर्ज कराया है। स्वयं लेखिका के शब्दों में 'लौटना' में औरत की उस अन्दरूनी कसमसाहट और तकलीफ को व्यक्त करने की छटपटाहट थी जो यहाँ के माहौल में अपने को पूरी तरह खो रही थी, फिर भी अपने प्राकृतिक पर्यावरण में लौट नहीं सकती थी, क्योंकि उसका जीवन अब तक एक निश्चित स्थान एवं दिशा में बँध गया था। इस तरह लौटना की मीरा का जन्म हुआ।"[4] 'इतर' उपन्यास में माधव और उसकी पत्नी रूपा की बाबा के प्रति श्रद्धा को दर्शाया गया है, जो कि एक ढोंगी और पाखण्डी व्यक्ति है जिस पर रूपा अन्धा विश्वास करती है। रूपा उसके झूठ-फरेब, पाखण्ड एवं आडम्बरों के बिछाये जाल में ऐसी फँसती है कि वह चाहकर भी बाहर नहीं निकल सकती है और उसके आडम्बरों में उसका साथ देने लगती है, किन्तु जब ये ढोंगी और पाखण्डी बाबा अमेरिका में पूर्णतरू स्थापित हो जाता है तो वह रूपा की उपेक्षा करने लगता है। तब रूपा पिरोनी की तरफ आकर्षित हो जाती है और उसी साथ रहने का फैसला कर लेती है। चलते समय वह अल्पना से कहती है कि, "बाबा को अब मेरी जरूरत नहीं है। उनकी देखभाल करने वाले अब यहाँ बहुत है। अब मैं अपने आपको

अजमाना चाहती हूँ।"[5] इस तरह अपने अस्तित्व की तलाश में रूपा निकल पड़ती है जिसे रूपा ने उस ढोंगी और पाखण्डी बाबा के साथ रहकर मिटा दिया था।

'गाथा अमरेबल की' में गौतम अपनी माँ शन्नो को इतना अधिक महत्व देता है कि उसकी पत्नी स्वयं को उपेक्षित महसूस करती है मानो गौतम की जिंदगी में दिव्या की कोई जगह ही नहीं है। वह एक आदर्श बेटा बनने के चक्कर में पति के फर्ज एवं कर्तव्य ही भूल जाता है। गौतम द्वारा मिली अवहेलना दिव्या के अस्तित्व पर एक प्रश्नचिह्न लगा देती है। यहँ तक कि वह अपने अस्तित्व को बचाने के लिए गौतम से अलग होने का फैसला कर लेती है। इस उपन्यास के माध्यम से लेखिका ने यह दिखाया है कि सिर्फ पुरूष ही निहीं बल्कि कभी-कभी एक स्त्री ही दूसरी स्त्री को अस्मित को चोट पहुँचाती है। 'नवाभूम की रसकथा' उपन्यास स्त्रीवादी चिन्तन की उपज है। नायिका केतकी ने पीड़ा को नियति नहीं माना। वह परिस्थितियों को चुनौतियों की तरह स्वीकार करती है, और अपनी शर्तो पर जिंदगी जीने में विश्वास करती है। केतकी आदित्य को अपनी मंजिल मानती है उसे लगता है कि यही वह शख़्स है जिसकी तलाश में वह अब तक भटक रही थी, किन्तु आदित्य का उस पर विश्वास न करना उसके प्रति केतकी के प्रेम को धीरे-धीरे खत्म कर देता है। आदित्य की बिना वजह रोक-टोक, उस पर शक करना और पढ़ी-लिखी आत्मनिर्भर केतकी को अपने नियंत्रण में रखना उसके और आदित्य के रिश्ते की जड़ों को हिला कर रख देता है। आदित्य के साथ रहकर वह अपना अस्तित्व खो बैठती है वह आदित्य से कहती है कि "मेरा निज सिर्फ मेरा ही हो सकता है। तुम वहाँ हो। पर बहुत कुछ ऐसा है जो सिर्फमेरा है वहाँ कोई नहीं पहँच सकता है।"[6]

'मोरचे' उपन्यास नारी शोषण पर आधारित है। नायिका तनु का उसके पति अनुज द्वारा शारीरिक एवं मानसिक शोषण तनु को यह सोचने पर विवश कर देता है कि क्या अनुज के बगैर उसका कोई अस्तित्व नहीं है। अनुज तनु को भोग्या समझता है। उसके कई महिलाओं से संबंध हैं। तनु के विरोध करने पर वह उसकी पिटाई तक कर देता है। वह एक हिंसक प्रवृत्ति का युवक है जो गुस्से में आकर उसकी जान लेने का प्रयास कर चुका है। तनु की सास स्वयं एक स्त्री होकर तनु का साथ न देकर अपने बेटे का पक्ष लेती है। वह तनु को फटकारती हुई कहती है कि "तू क्या समझती है हम कोई तेर कंट्रोल में है। लड़के वाले हैं हम। हिंदुस्तान में होती तो अभी तक पेट्रोल डालकर फूँक देती। फिर पता भी नहीं चलता तेरा।"[7] लेखिका ने उपन्यास के माध्यम से बदलते रिश्तों का यथार्थ चित्रण बड़ी ही सूक्ष्मता के साथ किया है। सभी नारी प्रधान उपन्यासों का अवलोकन करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहँचे हैं कि नारी का जीवन अनेक बिडंबनाओं, विषमताओं, आशाओं-निराशाओं, कटुता तथा उपेक्षाओं से भरा होता है फिर चाहे वो भारतीय महिला हो या प्रवासी महिला। नारी को स्थिति आज भी दोयम दर्जे की है, चाहे कोई देश कितनी भी तरक्की क्यों न कर ले। इनके उपन्यास नारी के अन्तर्मन की पीड़ा छटपटाहट, दर्द, तड़प तथा अपनी अस्मिता की तलाश को अभिव्यक्त हैं। ये अपने उपन्यासों के माध्यम से मानव मन की चिरंतन कामनाओं, लालसाओं, कुंठाओं एवं निराशाओं का समग्र अंकन करने में वे पूर्णतरू सफल रहीं है।

इनके उपन्यासों के ये नारी पात्र आत्म सजग एवं अपनी अस्मिता की तलाश में है, और परिस्थितियों के आगे हार नहीं मानते हैं। इनके उपन्यासों की नारी अबला न होकर हर बला का डटकर मुकाबला करने वाली एक सशक्त एवं नए संकल्पों से निर्मित नारी है जो अपनी अस्मिति का मूल्य पहचानती है और उसे बनाए रखना भी जानती है वह केवल परंपराओं को ढोने वाली लाचार वेबस महिलाएँ नहीं हैं वरन् विदेशी धरती पर अपनी अस्मिता के लिए पुरुषवर्चस्व प्रधान समाज से लोहा लेती महिलाएँ हैं।

सन्दर्भ सूची

1. कामायनी-लज्जासर्ग, जयशंकर प्रसाद प्रकाशन, 1936
2. मनुस्मृति-तृतीय अध्याय, 56वे श्लोक।
3. www.streekal.com

4. रमणिका गुप्ता : युद्धरत आम आदमी, त्रैमासिक पत्रिका, नई दिल्ली, अंक जुलाई-सितम्बर 2006, पृष्ठ-14.
5. इतर, सुषमबेदी, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, संस्करण-1997, पृष्ठ संख्या-182.
6. नवाभूम की रस कथा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, संस्करण-2002, पृष्ठ-206.
7. मोरचे, सुषम बेदी, वाणी प्रकाशन ग्रुप, पृष्ठ संख्या-93.

श्रीमती बी. डी. जैन कन्या महाविद्यालय,
आगरा (उ. प्र.)
मो- 99277429672

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

बौद्ध धर्म की वैचारिकी एवं दर्शन : कर्म, पुनर्जन्म एवं निर्वाण

अल्पना

सारांश- प्रस्तुत शोध पत्र विश्वव्यापी ऐतिहासिक धर्मों में से एक बौद्ध धर्म के प्रभावों के वैचारिक एवं उससे जुड़े दर्शन के अवयवों एवं अन्य तथ्यों पर इस शोध पत्र में विशेष अध्ययन किया गया है। भारतीय इतिहास में कई ऐसे महापुरुषों का आगमन शताब्दियों से होता आया है। जिनमें महात्मा बुद्ध का आगमन एक क्रांतिकारी घटना है। इनका जन्म ईसा पूर्व छठी शताब्दी में हुआ था। और यही से हमारे भारतीय इतिहास की पृष्ठभूमि में , इसे काल बुद्ध युग के नामों से भी जाना जाता है। प्राचीन काल से भारत विभिन्न प्रकार के धर्मों वा संप्रदायों का देश रहा है। एवं उनके शांति का संदेश पूरे विश्व को एक प्रकाशमय दर्शन की ओर निर्वाह करेगा।

अतः बौद्ध धर्म की जिज्ञासा, रूप मंडली, बौद्ध धर्म की नैतिकता तथा मानवतावादी के जीवन पक्षों पर लेखनी चलायी गई है

बीज शब्द- बौद्ध धर्म, दर्शन, ऐतिहासिक, चुनौतियां एवं नैतिकता आदि।

प्रस्तावना- प्रस्तुत शोध पत्र विश्वव्यापी ऐतिहासिक धर्मों में से एक बौद्ध धर्म के प्रभावों के वैचारिक एवं उससे जुड़े दर्शन के अवयवों एवं अन्य तथ्यों पर इस शोध पत्र में विशेष अध्ययन किया गया है। भारतीय इतिहास में कई ऐसे महापुरुषों का आगमन शताब्दियों से होता आया है। जिनमें महात्मा बुद्ध का आगमन एक क्रांतिकारी घटना है। इनका जन्म ईसा पूर्व छठी शताब्दी में हुआ था। और यही से हमारे भारतीय इतिहास की पृष्ठभूमि में, इसे काल बुद्ध युग के नामों से भी जाना जाता है। प्राचीन काल से भारत विभिन्न प्रकार के धर्मों वा संप्रदायों का देश रहा है। आधुनिक युग में आज पूरी दुनिया तमाम प्रकार की घटनाएं , वृद्ध चुनौतियाँ तथा छल- कपट द्वेष आदि व्याप्त है। विश्वव्यापी दुनिया में जातिवाद एवं वर्चस्व के संघर्षरत, महात्मा बुद्ध के दर्शन तथा निर्वाण।

शोध सारांश- बौद्ध धर्म अपने आप में एक विशाल वृक्ष की भांति समाज को निर्वाण करने की शक्ति प्रदान करता है, बल्कि उनमें जीवन्त समाज की समस्याओं के प्रति संघर्ष तत्परता से करते रहें। महात्मा बुद्ध भारतीय साहित्य व दलित, गरीब, शोषित तथा शोषित वर्ग को नवीन चेतना के नव- निर्माण में विशेष भूमिका रही है। भारत देश में जब महात्मा बुद्ध का आगमन होता उस समय देश में सामाजिक वर्ण व्यवस्था और व समाज जातियों पर आधारित था। कहीं-न-कहीं उनका बुद्ध का आगमन रुढ़ियों को तोड़ना तथा देश को ज्ञान की प्रकाश ओर प्रबल करना था। प्रसिद्ध लेखक डॉ. तुलसीराम ने अपनी कविता के माध्यम से महात्मा बुद्ध के विचारों को समझाया है—

चला चलीं मुनि आई....
बुद्ध के विचारवा में का-का मिलेला
का-का मिलेला भन्ते, का-का मिलेला
शान्ति बराबरी आउर भाईचरवा।
चला चलीं सुनि आई बुद्ध के विचारवा।

आज भारत देश को सोने की चिड़ियां कहें जाने वाले समाज व उनके अनुयायियों ने महात्मा बुद्ध के दार्शनिक ज्ञान व विचारों को उनके तीन ग्रन्थों में संकलित किया है जिन्हें 'त्रिपिटक' कहा गया है। कहीं-न-कहीं बुद्ध के द्वारा ही भारत को करुणा और अहिंसा का मार्ग मिला। बौद्ध धर्म दुनिया का प्राचीन धर्म है जहां मानवतावादी, शांतिवादी, तथा विश्वबन्धुत्व की भावना रखने वाला दर्शन के रूप में प्रसिद्ध है। और बौद्ध धर्म में ऐसे ही यथार्थ स्वरूप नियम संग्रहित हैं जो मनुष्य की पहचान अपनी सम्पूर्ण मानवीय मूल्यों को विकासित करने में सहायता प्रदान करता है। अपनी पुस्तक 'हिन्दुस्तान की कहानी' मे जवाहर लाल नेहरू जी लिखते है, "बुद्ध में प्रचलित धर्म, अंधविश्वास, कर्म-काण्ड और यज्ञ की प्रथा पर और इसके साथ जुड़े हुए निहित स्वार्थों पर हमला करने का साहस था। उन्होंने आधिभौतिक और परमार्थी नजरिये का, करामतों, इलहम, आलौकिक व्यापार आदि का विरोध किया। दलील, अम्ल और तजुरबे पर उनका आग्रह था और इन्होने नीति या इखलाक पर जोर दिया। उनका तरीका था मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का और इस मनोविज्ञान में आत्मा को जगह नही दी गई थी। उनका नजरिया आधिभौतिक कल्पना की बासी हवा के बाद पहाड़ की ताजी हवा के हल्के थपेड़े-सा जान पड़ता है।''[2]

बौद्ध दर्शन हो या बौद्ध विचार भारतीय समाज के लिए यह के समय नवजागरण का उदय था। जिसने समाज के अंधविश्वासों के साथ-साथ धर्म एवं ईश्वरीय अवधारणा को को बदल दिया। भारतीय इतिहास में प्राचीन काल से भारतीय संस्कृति की लोककथाएं, सामाजिक वि. मान्यताएं आदि धर्म एवं दर्शन दर्शन के आधार पर कहीं-न-कहीं वैचारिकीय दृष्टिकोण विश्व में अपना वैचारिकीय दृष्टिकोण बनाए रखा है। और यह स्वाभाविक है कि प्रत्येक धर्म का अपना एक नवीन दर्शन होता है कि जिनमें कई तमाम प्रकार के साहित्यिक तत्वों तत्व समाहित है। आज देश में 60 प्रतिशत जनसंख्या बौद्धिक तथ्यों के आधार पर कार्यरत हैं होने के साथ-साथ नैतिक आचरण के साथ जीवन जीने पर बल दिया है। ''वह धर्म, जो अपने दर्शन का मैत्री, करुणा, मुदिता तथा उपेक्षा को बनाकर सभी जीवों के कल्याण की कामना करता हो, ... एक अच्छा बौद्ध जिससे यह आशा की जाती हो कि वह करुणा के प्रति दत्तचित हो।"[3] भारतीय इतिहास की पृष्ठभूमि में महात्मा बुद्ध ने लगभग देशों में आध्यात्मिक ज्ञान, सामाजिक परिवेश, आर्थिक समस्या, बौद्धिक तथा राजनीतिक स्वतन्त्रता व समानता भे ज्ञान की शिक्षा दी है। महात्मा बुद्ध सांसारिक दुखों के सम्बन्ध चार आर्य- सत्यों का उपदेश बताया है—

1- दुख संसार दुखों से परिपूर्ण है,

2- दुख समुदाय दुखों का कारण भी है।

3- दुख निरोध दुखों का अन्त सम्भव है।

4- दुख निरोध गामिनी प्रतिपदाः दुखों के अन्त के मार्ग है।

इससे यह जान पड़ता है कि भगवान बुद्ध ने अपनी प्रज्ञा तथा सूक्ष्म दृष्टिकोण से इस तथा प्रत्यक्ष विवेक बुद्धि के बल पर इन चार आर्य सत्यों को प्रस्तुत किया है। महात्मा बुद्ध की सामाजिक दृष्टि अनेकता में एकता का एक अहम पहलू तथा समानता का सिद्धान्त था। उन्होंने किसी प्रकार के बन्धनों जैसे जन्म पर आधारित कर्म-काण्ड आदि को अस्वीकार करते हुए मनुष्य के कर्मो के आधार पर समानता प्रकट की है। समाज में नवीन प्रकार के विचारों को आदान- प्रदान करने का अनुभव बौद्धिक दर्शन से में समाहित है। जहां बुद्ध ने जन्म को नही बौद्ध कर्म को उच्च्य बताकर संसार की को उद्दीपमय किया। और कहीं-न-कहीं महात्मा बुद्ध ने 'अत्तदीपो भव' अर्थात् अपना अ प्रकाश स्वयं बनो। प्रसिद्ध हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध लेखक रचनाकार रामधारी सिंह दिनकर कहते है, "जाति प्रथा को हु चुनौती देकर बुद्ध इस देश में एक महान आन्दोलन का आरम्भ किया, जो गांधी और अम्बेडकर तक चलता आया है जो आज भी चल रहा है। उन्होंने मनुष्य मनुष्य की मर्यादा को यह कहकर ऊपर उठाया कि कोई मनुष्य केवल ब्राम्हण कुल में जन्म लेकर ही पूज्य नही हो जाता, न कोई शूद्र होने से पतित होता है। उच्चता और नीचता जन्म पर ही नही कर्म पर अवलम्बित है।"[4]

बौद्ध दर्शन के सन्दर्भ में डॉ. तुलसीराम राम लिखते हैं—"महामानव गौतम बुद्ध का दर्शन, जिसे सारे विश्व में बौद्ध धर्म के नाम से जाना जाता है, वास्तव में वह धर्म नही, बल्कि 'धम्म' यानि यानि सिद्धान्त है। यदि परम्परा के अनुसार इसे धर्म ही मान लिया जाए तो भी इसमें ईश्वर के लिए कोई स्थान नही है। अपनी न्या नैतिकता के चलते ही बौद्ध धर्म

वर्ण-व्यवस्थाजनित ऊँच-नीच के हिंसक भेदभाव का प्रबल विरोधी बना, क्योंकि हिन्दू धर्म के सभी ग्रन्थ वर्ण-व्यवस्थाजनित ऊँच-नीच के हिंसक भेदभाव को ईश्वरीय देन बताते हैं।"[5] भारतीय इतिहास में कर्म तथा पुनर्जन्म शब्द प्राचीनकाल से चला आ रहा है, जिसके माध्यम से मनुष्यों के पाप और पुण्य दोनों का अतिशाय फल प्राप्त होते हैं ऐसा माना जाता है। परन्तु बौद्ध धर्म में 'कर्म' जैसे शब्द का प्रयोग सिद्धान्त के रूपू में किया जाता है जिसका तात्पर्य हमारे कर्मो की मनः स्थिति पर निर्भर करता है हम जैसा सोचते हैं वैसा ही पाते हैं। और यह कर्म और इन कर्मों को के परिणामों को 'विपाक' भी कहा गया है।

"यदि कोई व्यक्ति अशुद्ध मन से बोलता या कार्य करता है तो दुख उसका पीछा करता है उसी प्रकार करता है जैसे बैल के पैर को के पीछे पहिया लगा रहता है। यदि कोई व्यक्ति शुद्ध मन से बोलता या कार्य करता है, तो सुख उसका निरन्तर पीछा करता है जैसे उसकी परछाई कभी नही छूटती।

बुद्ध, धम्म पद

"पुनर्जन्म में विश्वास करने वाले अन्य'' भगवान बुद्ध का पुनर्जन्म से यही अभिप्राय था। इन भौतिक पदार्थो के लिए आवश्यक नही है कि वे उसी शरीर के हों जिसका मरण हो चुका है, वे नाना मृत-शरीरों के भौतिक अंश हो सकते हैं। यही बात ध्यान देने की है कि शरीर का मरण होता है लेकिन भौतिक पदार्थ बने रहते हैं। भगवान बुद्ध इसी प्रकार के पुनर्जन्म को मानते थे।"[6] "भगवान बुद्ध ने 'कर्म' के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था। सर्वप्रथम उन्होंने ही कहा थाः "जैसा बोओगे, वैसा काटोगे।" 3-उन्होंने 'कर्म' के सिद्धान्त पर इतना अधिक जोर दिया है कि उनका कहना था कि यदि 'कर्म' के सिद्धान्त को दृढ़ता पूर्वक न माना जाय तो नैतिक- अनुशासन निभ ही नहीं सकता।"[7]

इतिहास के अनुसार बुद्ध के दर्शन व कर्म से जुड़ी दस्तावावेज दस्तावेज में स्वर्ग-नरक की कोई अवधारणा नहीं थी। और उनकी यही मानना था कि कोई ईश्वरीय शक्ति अगर है तो इसी यही धरती पर है। सभी धर्मो में से एक जो शांति का प्रतीक है, बौद्ध धर्म समाज की में छुआ-छूत, कर्मकाण्ड पर विश्वास, कुरीतियों में से उलझा समाज, बौद्ध दर्शन ने हाशिये के समाज को नया नवीन चेतना से मुक्त कराया। डॉ. अमल सिंह 'भिक्षुक' लिखते हैं कि-"आंबेडकर ने हिन्दू धर्म का त्याग करके बौद्ध धर्म को अंगीकार किया था। बौद्ध धर्म विश्वास को नही, वैज्ञानिकता और तार्किकता को अधिक महत्व देता है। बुद्ध का आत्मा-परमात्मा, स्वर्ग-नरक, पूर्वकर्म, कर्मकांड, भाग्यभरोसा आदि में किंचित भी विश्वास नही था। बुद्ध सामाजिक समानता के पक्षधर थे। चातुर्वर्ण और इससे उत्पन्न जातियों- उपजातियों को बुद्ध अप्राकृतिक, मिथ्या, काल्पनिक तथा स्वार्थ सिद्ध हेतु समर्थ और चालाक लोगों द्वारा मनगढ़ंत ढंग से गढ़ी हुई मानते थे। बुद्ध के धर्म का केन्द्र बिन्दु मनुष्य है। अतः मनुष्य के सर्वांगीण विकास एवं कल्याण हेतु बुद्ध द्वारा आविष्कार किया हुआ धर्म एक सर्वथा नवीन एवं ईश्वरीय सत्ता से पूर्णतया मुक्त मानव की उन्नति एवं शान्ति के अभ्युदय का अनुपम मार्ग है।"[8]

जितनी तेजी से बौद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार हुआ उतनी ही तेजी के साथ अन्य धर्मो की तरह इसका विभाजन भी हुआ। और कहीं-न- कहीं इस धर्म का मूल आधार नवीन परम्परावादी तथा प्रगतिवादी विचारधारा ही इस विभाजन का कारण बना। इसमें बौद्ध धर्म की नैतिकता मूल दर्शन तथा चरम वि निर्वाण भी इन विभिन्न मतों के अनुसार देखने को मिला। मुख्य रूप से ये धर्म हीनयान तथा महायान में विभक्त हुआ। महात्मा बुद्ध की जो धारणा थी हीनयान सम्प्रदाय को लेकर वह एक गुरु तथा उपदेशक की की थी, जबकि वही महायान सम्प्रदाय में करुणा, दया, निश्चल प्रेम, आदि गुणों से परिपूर्ण ईश्वरीय शक्ति के रूप में महात्मा बुद्ध ने स्वीकार किया। डॉ. एस. राधाकृष्णन के अनुसार, "महायान के बोधिसत्व का वर्णन उपनिषदों में प्रतिपादित प्रबुद्ध, ईसाई-धर्म में वर्णित मनुष्य मात्र के मुक्तिदाता ईसा मसीह एवं नीत्से के अति मानव के वर्णन के अनुकूल है। क्योंकि वह ऐसे संसार की सहायता करता है जोअपने लक्ष्य को स्वयं बिना किसी सहायता के प्राप्त नही कर सकता।"[9]

भारतीय संस्कृति पूरे विश्व में विश्वगुरु के रूप में विराजमान है। जहां सनातन धर्म की एक छोटी सी शाखा के रूप में पनपता हुआ धर्म बौद्ध धर्म का आविर्भाव एक घटना के रूप अवतरित रही हुई। भारत में कई धर्म हुए कोई भी धर्म हो

सनातन या हिन्दू धर्म, विष्णु के नवे अवतार के रूप में कहीं-न-कहीं महात्मा बुद्ध को परम्परा के अनुसार गिना जाता है। आज बौद्ध धर्म को विश्व का तीसरा सबसे बड़ा धर्म व बौद्ध तत्वों का आकलन सर्वोच्च स्थान पर है। महात्मा बुद्ध विशेष महत्व है। कहा था यदि मनुष्य अपने विवेक, धैर्य, कुशाग्र तथा रचनात्मक बुद्धि का उपयोग नही करेगा तो वह मनुष्य होने का शास्त्र खो देगा। इन्हीं आधारभूत शाखाओं को आगे बढ़ाते हुए पंचशील व निर्वाण का मार्गदर्शन दिखलाया। राहुल सांकृत्यायन अपनी पुस्तक बौद्ध दर्शन में लिखते हैं किकृ "निर्वाण का अर्थ है बुझना - दीप या आग जलते-जलते बुझ जाना। तृष्णा के सारेगे मिलकर जो एक जीवन-प्रवाह का रूप धारण कर प्रवाहित हो रहे हैं, यह प्रज्ज्व0 प्रज्वला अत्यन्त विच्छेद ही निर्वाण है। पुराने तेल-बत्ती या इनके जल चुकने तथा नये की आमदनी न होने से जैसे दीपक या अग्नि बुझ जाते हैं, उसी तरह आस्रवों के क्षीण होने पर यह आवागमन नष्ट हो जाता है। निर्वाण निर्वाण बुझना है, यह उसका शब्दार्थ ही बतलाता है।

...... बुद्ध निर्वाण उस अवस्था को कहा है, जहां तृष्णा क्षीण हो गई, आस्रव जहां नही रह जाते। इससे अधिक कहना बुद्ध के अन्य अ-व्याकृत प्रतिज्ञा की अवहेलना करनी होगी।"[10] "बुद्ध का दर्शन अपने मौलिक रूप में भारी क्रान्तिकारी था। जगत, समाज, मनुष्य सभी को उसने क्षण-क्षण परिवर्तनशील घोषित किया और कभी न लौटने वाले की परवाह छोड़कर परिवर्तन के अनुसार अपने व्यवहार, अपने समाज के परिवर्तन के लिए वक्त तैयार रहने की शिक्षा देता था।"[11]

बौद्ध धर्म एक मनोवैज्ञानिक धर्म माना जाता है। बौद्ध धर्म के मतानुसार ईश्वरीय शक्ति की कोई सम्भावना भी नही है। जहां तक का कर्म और पुन पुनर्जन्म की धारणा के साथ तारतम्य बना रहता है। बुद्ध के अनुसार कर्म से विपाक, विपाक से कर्म और ये संरचना कर्म से पुनर्जन्म, इस प्रकार संसार की सृष्टि चलती रहती है। " पुनर्जन्म यद्यपि वृद्ध नित्य आत्मा का एक दूसरे शरीर शरीर से दूसरे शरीर में आवागमनों के रूप में मानने से इंकार किया था, तो भी दूसरे रूप में परलोक और पुनर्जन्म को माना था।......... आवागमन, धनी-निर्धन का भेद उसी कर्म के कारण है, जिसके कर्ता कभी तुम खुद थे, यद्यपि आज वह कर्म तुम्हारे लिए हाथ से निकला तीर है।"[12]

भारतीय इतिहास में बौद्ध दार्शनिक तथा तर्कशास्त्री नागार्जुन के द्वारा निर्वाण को 'नेति नेति' यानी 'न यह, न वह' शब्द कहा था। क्योंकि कोई भी शब्द उनके संकेत व विचार के माध्यम से उस चीज का सटीक वर्णन व विस्तार नही क हो सकता जिस चीज का कोई अस्तित्व ही न हो। आज हम मनुष्य एक ऐसी दुनिया व समाज में जीवन यापन कर रहे हैं। जहां तक सिर्फ एक दुविधा हो और हमारे पास दुविधा का ही सवाल हो 'है या न'। और बौद्ध धर्म में निर्वाण निर्वाण यही कहीं-न-कहीं अन्तिम सम्भावना है। " विभिन्न प्रवाह के रूप से उत्पन्न नामरूप तृष्णा के वशीभूत होकर जो एक जीवन प्रवाह का रूप धारण कर सतत् गतिशील है, इसी गति या प्रवाह का सर्वथा विच्छेद हो जाने पर जाना ही निर्वाण है। जिस प्रकार दीपक में डाले गये तेल के समाप्त हो जाने पर दीपक बुझ जाता है। उसी प्रकार काम, वासना, पुनर्जन्म और आत्मा के नित्यत्व आदि आस्रवों के क्षीण हो जाने पर आवागमन नष्ट हो जाता है।"[13]

"विज्ञानवादियों के अनुसार अविद्या या ग्राह्य ग्राह्यवासना के नाश से अद्वय विज्ञानमात्र का साक्षात्कार होता है, यही निर्वाण है। अविद्या, कर्म और क्लेश को बन्धन, संक्लेश या अशुद्धि कहते हैं, प्रज्ञा के द्वारा इनके प्रहाण को व्यवदान, विशुद्धि या निर्वाण कहते हैं।"[14]

निष्कर्ष

निष्कर्षतः बौद्ध धर्म सभी निकायों से कहीं-न-कहीं थोड़ा हटकर है। महात्मा बुद्ध के उपदेश, दार्शनिक विचार तथा जीवन कर्तव्य पर मूल रूप से विचार करें तो यह पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि मनुष्य की मूल्य चेतना के सन्दर्भ में सर्वश्रेष्ठ स्तर पर बौद्ध धर्म ठहरता है। गौतम बुद्ध के अनुसार जीवन कर्म ही के कारण आज सामाजिक प्राणियों में। जिस प्रकार विभिन्न भेद वर्तमान में व्याप्त हैं उसका उसी प्रकार कर्म अच्छा-बुरा, ऊँच-नीच आदि। उसी प्रकार कर्म और पुनर्जन्म का यह क्रम इतिहास के चक्र में बढ़ता जाता है। जब तक कि निर्वाण का साक्षात्कार न हो जाये। अर्थात् जीवन के सभी स्तरों पर विश्व

में व्याप्त उच्च पवित्रता का अभ्यास ही सभी सभी धर्मों में एक शांति का प्रतीक बौद्ध धर्म का मूल मंत्र है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. तुलसीराम, तुलसीराम का कवि मन, बहुजन वैचारिकी, अंक-1, जनवरी-2016, पृष्ठ सं0-23
2. जवाहरलाल नेहरू, हिन्दुस्तान की कहानी, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, संस्करण-2016, पृष्ठ सं0-137
3. के0 टी0 एस0 सराओ, प्राचीन भारतीय बौद्ध धर्मः उद्‌भव, स्वरूप एवं पतन, पृष्ठ सं0-121
4. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण-2011, पृष्ठ सं0-86
5. सं0 उमा शंकर चौधरी, तुलसीराम, बौद्ध धर्म तथा वर्ण-व्यवस्था, बहुजन वैचारिकी, अंक-1, जनवरी-2016, पृष्ठ सं0-67
6. डॉ. भीमराव रामजी आ0 आंबेडकर, भगवान बुद्ध और उनका धर्म, बुद्धभूमि प्रकाशन, नागपुर-1997, पृष्ठ सं0-261
7. (वही) पृष्ठ सं0-269
8. डॉ. अमल सिंह, 'भिक्षुक', दलित साहित्यः तेरी, मेरी और उसकी, दलित साहित्य वार्षिकी-2013, पृष्ठ-53
9. डॉ. राधाकृष्णन, प्रकाशन 1986, पृष्ठ सं0-494
10. राहुल सांकृत्यायन, बौद्ध दर्शन, किताब महल, इलाहाबाद, संस्करण-1944 पृष्ठ सं0-53, 54
11. (वही) पृष्ठ सं0-57
12. (वही) पृष्ठ सं0-57, 58
13. वाचस्पति गैरोला, भारतीय दर्शन, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1962
14. चन्द्रधर शर्मा, मोतीलाल बनारसीदास, भारतीय दर्शन आलोचना और अनुशीलन, दिल्ली, 1990, पृष्ठ सं0-118,119.

मो. नं. - 9336179143

पता - सदर ब्लाक के पीछे, विवेकानंद मोहल्ला

गांधीनगर, बस्ती, पिनकोड - 272001

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

भारत और श्रीलंका की बौद्ध सांस्कृतिक परंपरा में लैंगिक अस्मिता : एक तुलनात्मक अध्ययन

मधु, प्रो. राखी उपाध्याय

शोध-सारांश- बौद्ध परंपरा को करुणा, अहिंसा, अनात्मवाद और मुक्ति की दृष्टि से समझा जाता है। लेकिन जब इसी परंपरा को लैंगिक अस्मिता के प्रश्न से जोड़कर देखा जाता है, तो स्थिति अधिक जटिल दिखाई देती है। प्रारंभिक बौद्ध परंपरा में स्त्रियों के लिए भिक्षुणी संघ में प्रवेश, धार्मिक साधना और निर्वाण की संभावना स्वीकार की गई, वहीं संघीय व्यवस्था में भिक्षुणियों के लिए अतिरिक्त अनुशासन और समय के साथ विकसित पुरुष-प्रधान संस्थागत प्रवृत्तियाँ भी दिखाई देती हैं। भारत और श्रीलंका का तुलनात्मक अध्ययन इस द्वंद्व को और स्पष्ट करता है। भारत में बौद्ध संघ का विकास जिस सामाजिक परिवेश में हुआ, उसमें स्त्रियों की धार्मिक भूमिका ने धीरे-धीरे एक अलग संस्थागत पहचान प्राप्त की। श्रीलंका में बौद्ध धर्म के प्रसार के साथ संघमित्रा और अनुला जैसी स्त्रियाँ धार्मिक इतिहास की महत्त्वपूर्ण कड़ियों के रूप में सामने आती हैं। इसी क्रम में 'विमलकीर्तिनिर्देशसूत्र' का देवी-शारिपुत्र संवाद शरीर और लैंगिक पहचान की स्थिरता पर एक अलग दार्शनिक प्रश्न उठाता है। फिर भी प्राचीन बौद्ध अवधारणाओं को आधुनिक लैंगिक अस्मिता या एलजीबीटीक्यू पहचान का प्रत्यक्ष पूर्वरूप मानना ऐतिहासिक रूप से उचित नहीं होगा। प्रस्तुत अध्ययन का केंद्र स्त्रियों की धार्मिक स्थिति, भिक्षुणी संघ, भारत-श्रीलंका सांस्कृतिक संबंध तथा शरीर और पहचान से जुड़े बौद्ध विचारों का तुलनात्मक विवेचन है।

बीज-शब्द : लैंगिक अस्मिता, लैंगिकता, बौद्ध धर्म, भिक्षुणी संघ, थेरवाद, महायान, अनात्मवाद, अनित्यता, निर्वाण, धार्मिक कर्तृत्व, भारत, श्रीलंका।

भारत और श्रीलंका के बौद्ध संबंधों को केवल धर्म के एक देश से दूसरे देश तक पहुँचने की प्रक्रिया के रूप में देखना पर्याप्त नहीं है, इन संबंधों के विकास में ग्रंथ-परंपरा, संघ, राजकीय संरक्षण और सांस्कृतिक स्मृति के साथ स्त्रियों की धार्मिक भागीदारी की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। भारत बौद्ध धर्म की उद्भवभूमि रहा, लेकिन श्रीलंका ने आगे चलकर थेरवाद परंपरा के संरक्षण और विकास में विशिष्ट स्थान प्राप्त किया। इस सांस्कृतिक आदान-प्रदान में स्त्रियाँ केवल धर्म की अनुयायी ही नहीं रहीं, बल्कि कुछ ऐतिहासिक प्रसंगों में वे धार्मिक परंपरा की वाहक और उसके संस्थागत विकास की सक्रिय सहभागी के रूप में भी सामने आती हैं।

लैंगिक अस्मिता के संदर्भ में बौद्ध परंपरा का अध्ययन दो परस्पर संबंधित स्तरों पर किया जा सकता है, पहला, प्राचीन बौद्ध ग्रंथों में देह, स्त्री-पुरुष भेद, सामाजिक भूमिका और धार्मिक साधना की अवधारणाओं का विश्लेषण व दूसरा, आधुनिक लैंगिक अध्ययन के संदर्भ में पहचान, आत्मबोध और सामाजिक भूमिका का विवेचन। चूँकि आधुनिक लैंगिक अस्मिता की अवधारणा प्राचीन बौद्ध साहित्य में अपने वर्तमान अर्थ में उपलब्ध नहीं है, अतः दोनों को समान मानना ऐतिहासिक सरलीकरण होगा। इसलिए आधुनिक लैंगिक अवधारणाओं को प्राचीन बौद्ध संदर्भ पर आरोपित करने के बजाय, दोनों के बीच वैचारिक साम्य और भिन्नताओं को रेखांकित करते हुए बौद्ध परंपरा में देह, पहचान और धार्मिक अस्मिता के स्वरूप का तुलनात्मक एवं आलोचनात्मक मूल्यांकन अधिक उपयुक्त है।

लैंगिक अस्मिता केवल शरीर से तय होने वाली चीज नहीं है। समाज किसी व्यक्ति को किस रूप में देखता है, उससे कैसी भूमिका की अपेक्षा करता है और व्यक्ति स्वयं अपने अस्तित्व को किस तरह समझता है, इन सबका असर उसकी अस्मिता पर पड़ता है। आधुनिक जेंडर अध्ययन ने इसी कारण स्त्रीत्व और पुरुषत्व को केवल प्राकृतिक और स्थायी श्रेणियों के रूप में देखने पर प्रश्न उठाया है। बौद्ध दर्शन में व्यक्ति और आत्मबोध को लेकर मौजूद विचार इस प्रश्न को एक अलग दिशा देते हैं।

बौद्ध चिंतन में 'पंचस्कंध', 'अनित्यता' और 'अनात्मवाद' जैसी अवधारणाएँ व्यक्ति को किसी स्थायी और अपरिवर्तनशील आत्म-सत्ता के रूप में देखने की धारणा पर प्रश्न करती हैं। 'भरतलाल शर्मा' की 'महात्मा बुद्ध की कहानियाँ' में रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान को आत्मा न मानने वाली दृष्टि को सरल ढंग से प्रस्तुत किया गया है। इस दृष्टि से यह सवाल उठता है कि यदि व्यक्ति को किसी स्थायी आत्मा से नहीं समझा जाता, तो स्त्री या पुरुष होना उसकी आध्यात्मिक संभावना का अंतिम आधार किस अर्थ में हो सकता है। फिर भी प्रारंभिक बौद्ध साहित्य का उत्तर पूरी तरह एकरूप नहीं है। स्त्रियों को साधना और मुक्ति का अवसर मिलता है, लेकिन धार्मिक संस्था के स्तर पर उनके लिए अलग अनुशासन भी दिखाई देते हैं। प्रारंभिक बौद्ध समुदाय में भिक्षुणी संघ की स्थापना स्त्रियों की धार्मिक अस्मिता के विकास की महत्त्वपूर्ण घटना थी। 'के. टी. एस. सराओ' की 'प्राचीन भारतीय बौद्ध धर्म की उत्पत्ति, स्वरूप और पतन' के संदर्भ में देखा जाए तो महाप्रजापति गौतमी के प्रसंग ने स्त्रियों के लिए संगठित धार्मिक जीवन का मार्ग खोला। हालांकि, इसे पूर्ण समानता नहीं कहा जा सकता, क्योंकि आगे चलकर संघीय संरचना में पुरुष-केंद्रित प्रवृत्तियाँ प्रभावी रहीं। यहाँ आध्यात्मिक और संस्थागत समानता का अंतर स्पष्ट होता है कि स्त्री को साधना और मुक्ति का अधिकारी मानना अलग बात है, जबकि उसे समान निर्णय-अधिकार और संस्थागत प्रतिष्ठा प्राप्त होना अलग। अतः बौद्ध परंपरा में स्त्री की स्थिति को न पूर्णतः मुक्तिकामी और न केवल पितृसत्तात्मक मानते हुए, इन दोनों के बीच मौजूद अंतर्विरोधों के संदर्भ में देखना अधिक उचित है। 'थेरीगाथा' तथा प्रारंभिक बौद्ध साहित्य में खेमा, धम्मदिन्ना, किसागौतमी और पटाचारा जैसी भिक्षुणियों के प्रसंग स्त्रियों की सक्रिय धार्मिक भूमिका को सामने लाते हैं। 'मज्झिम निकाय' के 'चूलवेदल्ल सुत्त' में धम्मदिन्ना और विशाख के संवाद से स्त्री की बौद्धिक क्षमता स्पष्ट होती है। धम्मदिन्ना द्वारा दार्शनिक प्रश्नों का तर्कपूर्ण विवेचन और बुद्ध द्वारा उनकी प्रज्ञा की स्वीकृति यह दर्शाती है कि स्त्रियाँ ज्ञान-विमर्श में भी सहभागी थीं। किंतु भिक्षुणियों पर लागू अतिरिक्त नियम और संघ में पुरुषों की संस्थागत प्रधानता यह संकेत करती है कि बौद्धिक स्वीकृति के बावजूद पूर्ण संस्थागत समानता स्थापित नहीं हुई थी।

भारत में बौद्ध धर्म जिस सामाजिक परिवेश में विकसित हुआ, उसमें स्त्री की स्थिति परिवार और पितृसत्तात्मक अपेक्षाओं से गहराई से जुड़ी थी। भिक्षुणी संघ ने इस व्यवस्था के भीतर स्त्री के लिए एक अलग धार्मिक पहचान की संभावना पैदा की। गृहस्थ जीवन की अपेक्षित भूमिका से बाहर निकलकर भिक्षुणी बनना केवल धार्मिक नियमों को स्वीकार करना नहीं था; इसके साथ सामाजिक भूमिका और आत्म-पहचान में भी बदलाव आता था। 'आई. बी. हॉर्न की 'वूमेन अंडर प्रिमिटिव बुद्धिज्मरू लेवूमेन एंड ऑल्म्सवूमेन' और 'एलन स्पोनबर्ग' के 'एटिट्यूड्स टुवर्ड वूमेन एंड द फेमिनिन इन अली बुद्धिज्म' जैसे अध्ययन प्रारंभिक बौद्ध परंपरा में स्त्रियों की धार्मिक भागीदारी तथा स्त्री के प्रति विभिन्न दृष्टिकोणों को समझने में उपयोगी हैं। इन्हें साराओ के सामाजिक विवेचन के साथ पढ़ने पर बौद्ध परंपरा में स्त्री की स्थिति का अधिक संतुलित चित्र सामने आता है। धार्मिक साधना के अवसर बढ़े, लेकिन संस्थागत सत्ता में पुरुषों की प्रधानता पूरी तरह समाप्त नहीं हुई। इसलिए भिक्षुणी संघ की स्थापना को स्त्री की पूर्ण सामाजिक मुक्ति के रूप में देखना उचित नहीं। किसी धार्मिक संस्था का सदस्य बन जाना सामाजिक सम्मान, सुरक्षा या निर्णय-क्षमता में समानता की गारंटी नहीं देता। बौद्ध परंपरा का यही अंतर्विरोध लैंगिक अस्मिता के प्रश्न को गहरा करता है, आध्यात्मिक रूप से सक्षम माना जाना और संस्थागत रूप से समान स्थान मिलना दो अलग प्रक्रियाएँ हैं। भारत और श्रीलंका के बौद्ध संबंधों में संघमित्रा का प्रसंग स्त्री की भूमिका को विशेष रूप से सामने लाता है। 'विल्हेल्म गाइगर' के अंग्रेज़ी 'द महावंश ऑर द ग्रेट क्रॉनिकल ऑफ सीलोन' में देवानम्पिय तिस्स, अनुला और संघमित्रा से जुड़े वृत्तांत मिलते हैं। परंपरा के अनुसार अनुला और अन्य स्त्रियों ने प्रव्रज्या की इच्छा व्यक्त की और संघमित्रा को भारत से

श्रीलंका बुलाया गया तथा उनके आगमन को भिक्षुणी संघ की स्थापना और बोधिवृक्ष की शाखा के श्रीलंका पहुँचने से भी जोड़ा गया है, इस तरह भारत से श्रीलंका तक बौद्ध संस्कृति के प्रसार में एक स्त्री स्वयं धार्मिक परंपरा की प्रतिनिधि बनकर सामने आती है।

श्रीलंका के बौद्ध इतिहास में 'भिक्षुणी संघ' स्त्रियों की धार्मिक भूमिका और अस्मिता को समझने का महत्त्वपूर्ण आधार है। 'महावंश' में अनुला की प्रव्रज्या की आकांक्षा और संघमित्रा के श्रीलंका आगमन का उल्लेख मिलता है। 'दीपवंश' और 'महावंश' में स्त्रियों से जुड़े प्रसंगों की भिन्न प्रस्तुति यह संकेत देती है कि उनकी धार्मिक स्मृति समान रूप से संरक्षित नहीं रही। 'बार्थोलोम्यूज़' के अध्ययन के आधार पर भिक्षुणियों की उपलब्धियों और संस्थागत योगदान को इतिहास-लेखन में मिले स्थान पर विचार आवश्यक है। अतः श्रीलंका की भिक्षुणी परंपरा का अध्ययन केवल उपलब्ध ऐतिहासिक विवरणों के आधार पर करना पर्याप्त नहीं है, इसके साथ यह भी देखना आवश्यक है कि धार्मिक स्मृति और इतिहास-लेखन की प्रक्रियाओं ने स्त्रियों की भूमिका को किस प्रकार दर्ज, संरक्षित अथवा सीमित किया। श्रीलंका में भिक्षुणी जीवन ने स्त्रियों को गृहस्थ भूमिका से अलग धार्मिक पहचान, शिक्षा और सामुदायिक सहभागिता का अवसर दिया, किंतु सामाजिक एवं संस्थागत सीमाएँ बनी रहीं। भारत और श्रीलंका में भिक्षुणी परंपरा का विकास स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप भिन्न रहा है। अतः श्रीलंका की भिक्षुणी परंपरा को भारतीय बौद्ध विरासत और स्थानीय सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों के अंतर्संबंध से विकसित प्रक्रिया के रूप में देखना अधिक समीचीन है।

इस तुलना से यह समझ आता है कि बौद्ध सांस्कृतिक परंपरा में लैंगिक अस्मिता का कोई एक स्थिर रूप नहीं था। संप्रदाय, स्थानीय समाज, धार्मिक संस्था और साहित्यिक परंपरा के अनुसार उसकी अभिव्यक्ति बदलती रही। इसलिए भारत और श्रीलंका का तुलनात्मक अध्ययन केवल समानताएँ गिनाने के लिए नहीं, बल्कि यह समझने के लिए उपयोगी है कि एक ही धार्मिक परंपरा अलग सामाजिक परिस्थितियों में किस तरह अलग रूप ग्रहण करती है। बौद्ध धर्म और लैंगिकता पर आधुनिक समय में कई महत्त्वपूर्ण अध्ययन हुए हैं, 'जोसे इग्नासियो काबेज़ोन' द्वारा संपादित 'बुद्धिज्म, सेक्सुअलिटी एंड जेंडर' में बौद्ध परंपरा के भीतर स्त्री, लैंगिकता और यौन व्यवहार से जुड़े प्रश्नों पर विभिन्न विद्वानों के लेख संकलित हैं। 'एलन स्पोनबर्ग' प्रारंभिक बौद्ध धर्म में स्त्री और स्त्रीत्व के प्रति दिखाई देने वाले अलग-अलग दृष्टिकोणों पर विचार करते हैं, जबकि 'रीटा एम. ग्रॉस' की 'बुद्धिज्म आफ्टर पैट्रिआकी' बौद्ध परंपरा के स्त्रीवादी पुनर्पाठ की दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य है। इससे यह स्पष्ट होता है कि बौद्ध धर्म को एक ही स्वर वाली और अपरिवर्तनशील संस्था मानना उचित नहीं है।

आधुनिक लैंगिक विमर्श के साथ बौद्ध परंपरा का संबंध प्रत्यक्ष समानता के स्तर पर नहीं, बल्कि देह, पहचान और सामाजिक भेद की स्थिरता पर उठने वाले प्रश्नों के स्तर पर देखा जा सकता है। अनात्मवाद, अनित्यता, करुणा और अहिंसा जैसी अवधारणाएँ इस दिशा में एक वैचारिक आधार संकेतित करती हैं। किंतु इन संकेतों को आधुनिक लैंगिक अस्मिता का प्रत्यक्ष स्रोत मानना उचित नहीं है, इन्हें दोनों विमर्शों के बीच संभावित वैचारिक संवाद की भूमि के रूप में देखना अधिक समीचीन है।

भारत और श्रीलंका की बौद्ध सांस्कृतिक परंपरा में लैंगिक अस्मिता का अध्ययन किसी एक निष्कर्ष पर रुक जाने वाला विषय नहीं है। प्रारंभिक बौद्ध समुदाय में स्त्रियों के लिए भिक्षुणी जीवन का मार्ग खुलना, महाप्रजापति गौतमी की भूमिका, धम्मदिन्ना जैसी भिक्षुणियों का बौद्धिक कर्तृत्व और श्रीलंका में संघमित्रा तथा अनुला की धार्मिक भूमिका यह बताती है कि स्त्रियाँ बौद्ध धार्मिक जीवन की सक्रिय सहभागी थीं। दूसरी ओर संस्थागत अनुशासन और पुरुष-प्रधान संरचनाएँ यह भी दिखाती हैं कि आध्यात्मिक क्षमता को स्वीकार करना और संस्थागत समानता देना एक ही बात नहीं थी। भारत और श्रीलंका की तुलना से सांस्कृतिक संचरण की जटिलता भी सामने आती है। भारत में विकसित भिक्षुणी परंपरा श्रीलंका पहुँची तो वहाँ की स्थानीय सामाजिक, राजकीय और धार्मिक परिस्थितियों के साथ उसका नया रूप बना। संघमित्रा का प्रसंग इस प्रक्रिया में स्त्री की भूमिका को विशेष रूप से सामने लाता है। वहीं 'दीपवंश' और 'महावंश' जैसे स्रोतों में स्त्रियों की स्मृति का अलग-अलग रूप इतिहास-लेखन और धार्मिक परंपरा के संबंध पर विचार का अवसर देता है।

इस प्रकार, बौद्ध सांस्कृतिक परंपरा में लैंगिक अस्मिता को न तो केवल समानता की उपलब्धि के रूप में देखा जा सकता है और न ही संस्थागत पितृसत्ता के आधार पर पूरी तरह नकारा जा सकता है। इसके स्वरूप को धार्मिक कर्तृत्व, संस्थागत नियंत्रण तथा आध्यात्मिक और सामाजिक समानता के अंतर्विरोधों के संदर्भ में समझना अधिक समीचीन है। भारत और श्रीलंका का तुलनात्मक अध्ययन इन ऐतिहासिक जटिलताओं को रेखांकित करते हुए बौद्ध इतिहास, स्त्री-अध्ययन और आधुनिक लैंगिक विमर्श के बीच आलोचनात्मक अंतर्विषयी संवाद की संभावनाओं को स्पष्ट करता है।

संदर्भ-सूची

1. साराओ, के. टी. एस. प्राचीन भारतीय बौद्ध धर्म की उत्पत्ति, स्वरूप और पतन। दिल्ली : Directorate of Hindi Medium Implementation, University of Delhi, 2004
2. शर्मा, भरतलाल। महात्मा बुद्ध की कहानियाँ। नई दिल्ली : Prabhat Prakashan, 2020
3. जोशी, लालमणि एवं भिक्षु प्रासादिका। विमलकीर्तिनिर्देशसूत्र : तिब्बती संस्करण, संस्कृत पुनर्निर्माण एवं हिंदी अनुवाद। Bibliotheca Indo-Tibetica 5- सारनाथ : Central Institute of Higher Tibetan Studies, 1981-
4. Geiger, Wilhelm (trans.). The Mahava?sa or The Great Chronicle of Ceylon. London: Pali Text Society, 1912.
5. Bartholomeusz, Tessa J. "The Female Mendicant in Buddhist Sri Lanka." In Jose Ignacio Cabezón (ed.), Buddhism, SeÛuality, and Gender. Albany: State University of New York Press, 1992, pp. 37–64.
6. Bartholomeusz, Tessa J. Women Under the Bo Tree: Buddhist Nuns in Sri Lanka. Cambridge: Cambridge University Press, 1994.
7. Sponberg, Alan. "Attitudes toward Women and the Feminine in Early Buddhism." In Jose Ignacio Cabezón (ed.), Buddhism, SeÛuality, and Gender. Albany: State University of New York Press, 1992, pp. 3–36.
8. Horner, I.B. Women Under Primitive Buddhism: Laywomen and Almswomen. Delhi: Motilal Banarsidass, 1975.
9. Gross, Rita M. Buddhism After Patriarchy: A Feminist History, Analysis, and Reconstruction of Buddhism. Albany: State University of New York Press, 1992.
10. Cabezón, José Ignacio (ed.). Buddhism, SeÛuality, and Gender. Albany: State University of New York Press, 1992.
11. Majjhima Nikaya, 44. Cu?avedalla Sutta. Pali Text Society reference: M i 299.
12. Therigatha, 1.12 – Dhammadinna Theri.
13. Witharandeniye Chandasiri Thera. "A Historical and Textual Study of Bhikkhuni Order in Sri Lanka." Proceedings of the First International Research Conference on Humanities and Social Sciences, University of Sri Jayewardenepura, 2012.
14. SuttaCentral. "A Thematic Guide to the A?guttara Nikaya: Bhikkhunis and Women in the A?guttara Nikaya."

शोधार्थी, हिंदी विभाग

डी.ए.वी. (पी.जी.) कॉलेज, देहरादून, उत्तराखंड, 248001

मो- 6397230496,8057910571

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

भक्तिकाल और तमिल साहित्य

डॉ. प्रेमलता

हिन्दी साहित्य के संदर्भ में भक्तिकाल से तात्पर्य उस काल से है, जिसमें मुख्यतः भागवत धर्म के प्रचार तथा प्रसार के परिणामस्वरूप भक्ति-आंदोलन का सूत्रपात हुआ था और उसकी लोकोन्मुखी प्रवृत्ति के कारण धीरे-धीरे लोक-प्रचलित भाषाएँ भक्ति-भावना की अभिव्यक्ति का माध्यम बनती गयीं और कालांतर में भक्ति विषयक विपुल साहित्य की बाढ़-सी आ गयी। परन्तु यह भावना केवल वैष्णव धर्म तक ही सीमित न थी अपितु शैव, शाक्त आदि धर्मो के अतिरिक्त बौद्ध और जैन-संप्रदाय तक इस प्रवाह से प्रभावित हुए बिना न रह सके। भक्तिकाल और तमिल साहित्य का विवेचन करने से पूर्व भक्ति-भावना की परंपरा और परिवेश का संक्षिप्त परिचय विषय को बोधगम्य बनाने में सहायक होगा।

भारतीय धर्म साधना के इतिहास में भक्तिमार्ग का विशिष्ट स्थान है। वैदिक युग में यज्ञ अथवा कर्मकांड के माध्यम से धर्मानुष्ठान हुआ करते थे। लोग प्रायः प्रकृति की उपासना देवता के रूप में करते थे और यज्ञादि का अनुष्ठान करते थे। श्रद्धा विहीन यज्ञ का कोई अर्थ न था, इसी से श्रद्धामूलक भक्ति का प्रादुर्भाव हुआ और आगे चलकर बहुदेववाद का मूल एकदेववाद बना रहा। भक्त के लिए यह स्वाभाविक हो गया कि वह बिखरी हुई शक्तियों में सामंजस्य लाकर अपनी दृष्टि एक में निविष्ट करे। 'भक्ति' का सर्वप्रथम उल्लेख 'श्वेताश्वेतर उपनिषद' में मिलता है।

वैदिक भक्ति-परंपरा के समानान्तर दक्षिण भारत में द्रविड़-संस्कृतगर्भित पृथक भक्ति परंपरा का सूत्रपात हो चुका था। यह परंपरा ईसा-पूर्व कई शताब्दियों से चली आ रही थी, जिसमें शरणागति और समर्पण की भावना प्रबल रूप से पायी जाती थी, जो कालांतर में दाक्षिणात्य आचार्यो द्वारा उत्तर भारत में भी लोकप्रिय बनी। "वास्तव में ईस्वी सन् के प्रारंभिक काल में ही उत्तर और दक्षिण की दोनों परंपराओं का मिलन हो गया था जिसका निदर्शन आडयारों तथा अडियारों के भक्ति साहित्य में सुलभ है। इसके अंतर्गत 'पूजा' को भक्ति का मुख्य साधन माना गया है, जिसे 'शिव' की भांति तमिल भाषा का शब्द ठहराया गया है। 'मायोन' तथा 'तिरुमाल' को भी विष्णु का पर्याय बतलाया जाता है। स्वयं भागवत को भी कन्नड़ प्रदेश में रचित कहा गया है। यह ग्रंथ मध्यकालीन भक्ति-परंपरा का मुख्य प्रेरणा-स्रोत बना।"

मध्यकालीन हिंदू-समाज के दो पक्ष हमारे सामने आते हैं— एक, वह जो शास्त्रों का समर्थक है; दूसरा वह, जो परंपरागत विश्वासों और मान्यताओं अथवा स्वानुभूति का पक्षधर है। यह दूसरा पक्ष पौराणिक पक्ष है। परंतु हम बहुधा यह पाते हैं कि दोनों पक्षों में परस्पर अंतरावलंबन है। कभी जनघोषित विश्वास शास्त्रसम्मत बन जाते हैं, तो कभी शास्त्रविहित मान्यताएं जनता द्वारा अस्वीकृत हो जाती हैं। हमारे यहाँ आध्यात्मिक उपलब्धि को जीवन का परिष्कार माना गया है, जिसके कारण धर्मानुभूति और दार्शनिक चिंतन का अन्योन्याश्रय संबंध जुड़ गया है।

उपनिषद्, भारतीय दर्शन के उपजीव्य हैं और इसी आधार पर वेदांत भी विकसित हुआ है। औपनिषदिक विचारों में भी सर्वत्र मतैक्य नहीं है। इनमें समन्वय की स्थापना के लिए बादरायण (300 ई.) ने ब्रह्मसूत्रों की रचना की, जिस पर शंकराचार्य (788-820 ई.) ने 'शारीरिक भाष्य' लिखा। इस भाष्य में निरूपित व्याख्या का इतना महत्व हो गया कि सर्वसाधारण में वेदांत का अर्थ केवल शांकर-वेदांत समझा जाने लगा। इसमें शब्द प्रमाण को मुख्य मानकर उसे तर्क द्वारा पुष्ट किया गया है।

शंकराचार्य की ही भांति कुमारिल भट्ट ने भी हमारी चिंताधारा को दूर तक प्रभावित किया है। परवर्ती आचार्यों ने इन्हीं मतों की व्याख्या-प्रतिव्याख्या के रूप में विशिष्टाद्वैत, केवलाद्वैत, द्वैताद्वैत, शुद्धाद्वैत आदि मत के माध्यम से भक्ति की व्याख्या की। इन सभी में ईश्वर से बढ़कर ईश्वर की भक्ति का प्रतिपादन किया गया है। "केरल का शास्त्तापूजक संप्रदाय, बंगाल के धर्म ठाकुर, सहजिया, बाउल, सत्यपीर, कर्त्ताभाजा आदि सम्प्रदाय; उड़ीसा का पंचसखा सम्प्रदाय, महाराष्ट्र के वारकरी और महानुभाव-सम्प्रदाय भक्ति-आंदोलन की ही उपज हैं, जिनके अनुयायियों द्वारा भक्तिकाव्य की रचना हुई और इस प्रकार भक्ति-साहित्य का विपुल भंडार समृद्ध हुआ।'' आमतौर पर उत्तर भारत के भक्ति काल (कबीरदास, सूरदास, तुलसीदास, मीराबाई) पर अधिक चर्चा होती है, लेकिन इस विशाल आंदोलन की नींव सुदूर दक्षिण में, विशेषकर तमिल भूमि पर रखी गई थी। प्रसिद्ध उक्ति हैः "भक्ति द्राविड़ ऊपजी, लाए रामानंद।" भक्ति का जन्म द्राविड़ देश में हुआ और उसे उत्तर भारत में लाने का श्रेय स्वामी रामानंद को जाता है। जिस भक्ति की गंगा ने मध्यकाल में पूरे उत्तर भारत को सराबोर किया, उसका मूल स्रोत तमिल भाषा, तमिल संस्कृति और वहाँ का समृद्ध भक्ति साहित्य ही था।

तमिल भक्ति साहित्य ने केवल धार्मिक कविताओं का सृजन नहीं किया, बल्कि उसने रूढ़िवादिता पर प्रहार किया, जातिगत दीवारों को ढहाया और ईश्वर और मनुष्य के बीच एक सीधा प्रेमपूर्ण संबंध स्थापित किया। तमिल साहित्य का इतिहास अत्यंत प्राचीन और गौरवशाली है, जो मुख्य रूप से तीन चरणों में विभाजित है।

संगम काल (300 ईसा पूर्व-300ई.) : यह मुख्य रूप से धर्मनिरपेक्ष साहित्य का काल था। इसमें 'अहम' (प्रेम) और 'पुरम' (युद्ध, वीरता) पर आधारित कविताएँ रची गईं।

संगमोत्तर/कालभ्र काल (300ई.-600ई.) : इस दौर में बौद्ध और जैन धर्म का प्रभाव बढ़ा। इस काल में नीतिपरक और उपदेशात्मक ग्रंथों की रचना हुई, जिनमें संत तिरुवल्लुवर कृत तिरुक्कुरल और 'शिलप्पदिकारम्' जैसे महाकाव्य शामिल हैं।

भक्ति काल (600ई.-1200ई.) : छठी शताब्दी के आस-पास तमिल क्षेत्र (पल्लव और चोल राजवंशों के समय) में एक नई लहर उठी। जैन और बौद्ध धर्म के शुष्क वैराग्य और कठिन नियमों के विरोध में जनमानस ने ईश्वर के प्रति सहज, भावुक और व्यक्तिगत प्रेम (भक्ति) को चुना।

तमिल कवियों ने संगम काल की "तीव्र प्रेम भावना'' को लौकिक धरातल से उठाकर अलौकिक यानी ईश्वर के प्रति समर्पित कर दिया। इस तरह तमिल साहित्य का स्वर्णयुग 'भक्ति काल' के रूप में प्रकट हुआ।

तमिल भक्ति साहित्य मुख्य रूप से दो धाराओं में प्रवाहित हुआ- एक विष्णु के उपासक 'आलवार' दूसरे शिव के उपासक 'नयनार'। इन संतों ने किसी बंद कमरे में या राजदरबार में बैठकर कविताएँ नहीं लिखीं, बल्कि वे हाथ में वाद्य यंत्र लेकर गाँव-गाँव, मंदिर-मंदिर घूमे और तमिल भाषा में आम लोगों के बीच ईश्वर की महिमा का गान किया।

'अलवार' शब्द का तमिल में अर्थ होता है—"वह जो भगवान के प्रेम में पूरी तरह डूब गया हो।" कुल 12 अलवार संत हुए, जिन्होंने विष्णु और उनके अवतारों, विशेषकर राम और कृष्ण की भक्ति में लीन होकर रचनाएँ कीं। नालायिर दिव्य प्रबन्धम् आलवार संतों के 4000 भजनों और पदों का संग्रह है। इसका संकलन 10वीं शताब्दी में आचार्य नाथ मुनि ने किया था। इसे तमिल संस्कृति में 'तमिल वेद' का दर्जा प्राप्त है।

नम्मालवार : इन्हें आलवार संतों में सबसे महान माना जाता है। इनकी रचना 'तिरुवायमौली' को सामवेद के समान पवित्र माना जाता है।

भक्तिमती आंडाल : 12 आलवार संतों में आंडाल एकमात्र महिला संत थीं, जिन्हें 'दक्षिण की मीरा' कहा जाता है। उन्होंने भगवान रंगनाथ को अपना पति मानकर 'तिरुप्पावै' और 'नाच्चियार तिरुमोळ' जैसी अत्यंत सुंदर, शृंगारिक और आध्यात्मिक रचनाएँ कीं।

नयनार संत : 'नयनार' भगवान शिव के अनन्य भक्त थे। इनकी कुल संख्या 63 मानी गई है, जिनमें राजा, सैनिक, किसान से लेकर अछूत समझे जाने वाले जातियों के लोग भी शामिल थे।

लोकभाषा का प्रयोग : वैदिक युग में जहाँ धार्मिक और दार्शनिक ज्ञान केवल संस्कृत तक सीमित था और आम जनता की पहुँच से दूर था, वहीं तमिल संतों ने चेतना जगाने के लिए जनभाषा तमिल को चुना। उन्होंने जटिल दर्शन को सरल गीतों और लोक धुनों में ढाल दिया जिससे यह आंदोलन सीधे जनता के दिलों में उतर गया।

"भक्ति का जो सोता दक्षिण की ओर से धीरे-धीरे उत्तर भारत की ओर पहले से ही आ रहा था उसे राजनीतिक परिवर्तन के कारण शून्य पड़ते जनता के हृदयक्षेत्र में फैलने के लिए पूरा स्थान मिला। रामानुजाचार्य (संवत् 1063) ने शास्त्रीय पद्धति से जिस सगुण भक्ति का निरूपण किया था उसकी ओर जनता आकर्षित होती चली आ रही थी।। "धर्म का प्रवाह कर्म, ज्ञान और भक्ति, इन तीन धाराओं में चलता है। इन तीनों के सामंजस्य से धर्म अपनी पूर्ण सजीव दशा में रहता है। किसी एक के भी अभाव से वह विकलांग रहता है। कर्म के बिना वह लूला-लँगड़ा, ज्ञान के बिना अंधा और भक्ति के बिना हृदयविहीन या निष्प्राण रहता है। ज्ञान के अधिकारी तो सामान्य से बहुत अधिक समुन्नत और विकसित बुद्धि के कुछ थोड़े से विशिष्ट व्यक्ति ही होते हैं। कर्म और भक्ति ही सारे जनसमुदाय की संपत्ति होती है।।"[4] गुजरात में स्वामी मध्वाचार्य जी (संवत् 1254-1333) ने अपना द्वैतवादी वैष्णव संप्रदाय चलाया जिसकी ओर बहुत से लोग झुके। देश के पूर्व भाग में जयदेव जी के कृष्ण-प्रेम-संगीत की गूंज चली आ रही थी जिसके सुर में मिथिला के कोकिल (विद्यापति) ने अपना सुर मिलाया। उत्तर या मध्य भारत में एक ओर तो ईसा की पंद्रहवीं शताब्दी में रामानुजाचार्य की शिष्य परंपरा में स्वामी रामानंदजी हुए जिन्होंने विष्णु के अवतार राम की उपासना पर जोर दिया और एक बड़ा संप्रदाय खड़ा किया, दूसरी ओर वल्लभाचार्य जी ने प्रेममूर्ति श्रीकृष्ण को लेकर जनता को रसमग्न किया। इस प्रकार दक्षिण भारत तमिल से शुरू होकर उत्तर, मध्य, पश्चिम और पूर्व चारों ओर रामोपासक और कृष्णोपासक भक्तों की परंपराएँ चलीं जिनमें आगे चलकर हिन्दी भक्ति काव्य को प्रौढ़ता तक पहुँचाने वाले जगमगाते रत्नों का विकास हुआ। इन भक्तों ने ब्रह्म के 'सत्' और 'आनंद' स्वरूप का साक्षात्कार श्रीराम और श्रीकृष्ण के रूप में इस बाह्य जगत् के व्यक्त क्षेत्र में किया।

कबीर तथा अन्य निर्गुणपंथी संतों के द्वारा अंतस्साधना में रागात्मिका 'भक्ति' और ज्ञान का योग हुआ। श्रीरामानुज की शिष्य परंपरा में होते हुए श्रीरामानन्द जी भक्ति का एक अलग उदार मार्ग निकाल रहे थे जिसमें जाति-पाँति का भेद और खान-पान का आचार दूर कर दिया गया था। कबीर को 'राम नाम' रामानंद जी से प्राप्त हुआ। कबीर में ज्ञानमार्ग की जहाँ तक बातें हैं वे सब हिन्दू शास्त्रों की हैं जिनका संचय उन्होंने रामानंद जी के उपदेशों से किया। माया, जीव, ब्रह्म, तत्त्वमसि, आठ मैथुन (अष्टमैथुन), त्रिकुटी, छह रिपु इत्यादि का परिचय उन्हें सत्संग द्वारा हुआ, क्योंकि वे जैसा कि प्रसिद्ध है, पढ़े-लिखे न थे लेकिन ब्रह्मज्ञान उनका उच्चकोटि का था। उपनिषद् की ब्रह्म विद्या के संबंध में वे कहते हैं—

"तत्त्वमसी इनके उपदेशा, ई उपनीसद कहैं संदेशा।
जागबलिक औ जनक सँवादा, दत्तात्रेय बहै रस स्वादा।।

यहीं तक नहीं, वेदांतियों के कनक-कुंडल न्याय आदि का व्यवहार भी इनके वचनों में मिलता है—

''गहना एक कनक ते गहना, इन महँ भाव न दूजा।
कहन सुनन को दुइ करि थापिन, एक निमाज, इक पूजा।।''

भारतीय आर्ष परंपरा को सर्वाधिक गौरवान्वित करने वाले रामानंदाचार्य जी महाराज का धार्मिक-सांस्कृतिक नवजागरण में अप्रतिम योगदान रहा है। उनके विराट व्यक्तित्व और कर्तृत्व ने उत्तर भारत में श्रीरामभक्ति धारा को जन-जन तक पहुँचाया। उनकी आध्यात्मिक चेतना ने भारतीय परंपरा को गौरवान्वित किया। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने भक्ति देवी को जन-जन के हृदय-सिंहासन पर विराजमान कर दिया और भक्ति साहित्य उन्हें पाकर गौरवान्वित हो गया। इनके विषय में प्रसिद्ध है— भक्ति द्राविड़ उपज्यौ लायौ रामानन्द। स्पष्ट है कि आर्ष परंपरा की भक्ति भगीरथी को इस भव्य भगीरथ ने जनमानस तक पहुँचाकर संपूर्ण युग का कायाकल्प कर दिया। स्वामी रामानंदाचार्य का अवतरण पुण्य प्रदेश प्रयागराज के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम पंडित पुण्य सदन शर्मा तथा माता का नाम सुशीला देवी था। इनका जन्म चौदहवीं शताब्दी के मध्य में हुआ और लीला संवरण पंद्रहवीं शताब्दी के मध्य में हुआ। ये अल्पकाल में ही शास्त्रों-पुराणों में प्रवीणता प्राप्त कर

ली और एक संन्यासी के रूप में भारतीय सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक चेतना के पुनरुद्धार के लिए दंड धारण कर चल पड़े। आचार्यश्री ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'वैष्णव-मताब्जभास्कर' में उद्घोषित किया- "सर्वे प्रपत्तेरधिकारिणो मताः' अर्थात् यह सभी जन ईश्वर के चरणों में शरणागति के सदैव अधिकारी हैं। निश्चितरूपेण यह भारतीय मध्यकाल में एक असाधारण क्रांति का स्वर था, जिसने समाज के हताश, निराश और उदास जनमानस को आशा, विश्वास और उल्लास का अमृत स्वर प्रदान किया। जनजीवन की पारंपरिक कल्मषता को प्रक्षालित कर उन्होंने सार्वभौम वैष्णवता अथवा मानववाद पर आधारित एक ऐसा मत स्थापित किया, जिस पर सभी वर्ण-जाति के लोग उनका शिष्यत्व ग्रहण कर साथ-साथ चलने लगे; उनमें प्रमुख थे- श्री अनंतानंदाचार्य, श्री सुरसुरानंद जी, श्री सुखानंद जी, श्री नरहर्यानंद जी, श्री योगानंद जी, श्री पीपा जी, श्री कबीरदास जी, श्री भावानंद जी, श्री सेन जी, श्री गालवानंद जी तथा श्री रैदास जी। सभी का उल्लेख द्वादश प्रमुख शिष्यों में किया गया है—

अनॅतानंद कबीर सुखा सुरसुरा पद्मावति नरहरि।
पीपा भावानंद रैदास धना सैन सुरसुर की घरहरि।।
औरो शिष्य प्रसिष्य एक ते एक उजागर।

उपर्युक्त बारह शिष्य द्वादश महाभागवत् के नाम से जाने जाते हैं। ये द्वादश आदित्य के नाम से भी जाने जाते हैं। इन शिष्यों के अतिरिक्त इनके अनेक शिष्य युगोद्धार के लिए सन्नद्ध थे। यहाँ एक तथ्य ध्यातव्य है कि भक्तमाल में यह कहा गया है कि 'रामानन्द रघुनाथ ज्यों दुतिय सेतु जग तरन कियो।' अर्थात् स्वामी रामानन्दाचार्य ने भवतारण के लिए श्रीरामचन्द्र जी समान सेतु का निर्माण किए। वैश्वानर संहिता में कहा गया है—''रामानन्द स्वयं रामः प्रादुर्भूतो महीतले।''

इस संबंध में एक छंद प्रचलित है—

'जगत्गुरु आचारज भूपा।
रामानंद राम के रूपा।।

उन्होंने सभी वर्णों, सभी जातियों को अपने संप्रदाय में दीक्षित किया तथा भक्ति परंपरा को आगे बढ़ाया।

रामानंदाचार्य जी जिस वैष्णव वैरागी संप्रदाय की स्थापना की थी, उसे बाद में रामानंदी संप्रदाय के नाम से जाना जाने लगा। दक्षिण भारत का श्री संप्रदाय तथा उसके प्रवर्तक श्री रामानुजाचार्य तथा उनकी शिष्य परंपरा में श्री रामानंदाचार्य और उनके रामानंद जी के बारह शिष्य से होती हुई भक्ति परंपरा उत्तरोत्तर बढ़ती गयी, जो तमिल साहित्य से शुरू होकर हिन्दी साहित्य, मराठी साहित्य, बांग्ला साहित्य इत्यादि तथा सबके अपने साहित्य के माध्यम विशेष रूप से रामायण और अनेक ग्रंथों के माध्यम से लोक और समाज में व्याप्त हुई। लोक समाज से जनमानस में लोकसाहित्य, लोकगाथा, लोकगीत इत्यादि रूप में भक्ति साहित्य का विकास और विस्तार होता गया और आज भी हो रहा है, आगे भी होगा, अखंडित परंपरा चल रहा है और चलता रहेगा। भक्ति लोक समाज, व्यक्ति की आत्मा है, संस्कृति की नींव है। समाज सुचारू रूप से तभी चल सकता है, चलने से ज्यादा व्यवस्थित रह सकता है, जब तक व्यक्ति के संस्कार जीवित रहेंगे; संस्कार से संस्कृति और सभ्यता सुदृढ़ रहेगी। भक्तों के भक्ति के मूल में यही जनकल्याण की भावना है। भक्त और भक्त कवि और उनकी कविता उनकी रचनाएँ आज तक इसीलिए जीवित हैं क्योंकि उनका मुख्य उद्देश्य जनकल्याण था, ऊँच-नीच, छोटा-बड़ा, गरीब-अमीर उनके लिए सब समान थे और सबका कल्याण हो यही उनके जीवन और उनकी रचनाओं का मूल था। भक्त कवि अपने जीवन के अनुभव से जो ज्ञान अर्जित किए, वह समाज का पथ दर्शक सूक्ति बन गया। जैसे-

1. 'मुझे कोसा', 'मुझे मारा', 'मुझे हराया', 'मुझे लूटा'- जो मन में ऐसी गाँठें नहीं बाँधते हैं, उनका बैर शांत हो जाता है। कभी भी बैर से बैर शांत नहीं होते, बल्कि अवैर से शांत होते हैं। यही सनातन धर्म है।

2. जिसका चित्त अस्थिर है, जो सद्धर्भ को नहीं जानता, जिसकी श्रद्धा दोलायमान है, उसकी प्रज्ञा परिपूर्ण नहीं हो सकती।

3. शत्रु शत्रु की अथवा वैरी वैरी की जितनी हानि करता है, कुमार्ग पर लगा हुआ चित्त उसकी (कहीं) अधिक हानि

करता है।

4. 'मेरे पुत्र! मेरा धन!' इस (मिथ्या) चिंतन में ही मूढ़ व्यक्ति व्याकुल बना रहता है। अरे, जब यह तन और मन का अपनापा ही अपना नहीं है, तो कहाँ 'मेरे पुत्र!' कहाँ 'मेरा धन'?

5. न पापी मित्रों की संगति करें, न अधम पुरुषों की।

संगति करें कल्याण मित्रों की, उत्तम पुरुषों की।

इत्यादि अनेक तरह से संतों ने अपनी वाणी से समाज का पथ प्रदर्शन किया है।

भक्ति का सर्वोत्तम रूप प्रपत्ति है, जिसे शरणागति कहा जाता है। शरणागति में ज्ञान और कर्म के कठिन मार्ग के स्थान पर ईश्वर के प्रति पूर्ण आत्मसमर्पण को मोक्ष का साधन बताया गया।

रागात्मिका भक्ति- संतों ने ईश्वर को माता, पिता, सखा, स्वामी और प्रियतम के रूप में देखा। आंडाल और मीराबाई की मधुरा भक्ति इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। इसके अलावा, मंदिरों में सामूहिक गायन की परंपरा शुरू हुई जिससे भक्ति साहित्य जन-जन तक पहुँचा और जनकल्याण का माध्यम बना। आंडाल कहती हैं, "मैं केवल उस मणिवर्ण (कृष्ण) के लिए जीती हूँ। यदि तुम मेरा विवाह किसी नश्वर मनुष्य से करने की बात भी करोगे, तो मैं अपने प्राण त्याग दूँगी।"

मीराबाई सदियों बाद उत्तर भारत में गाती हैं–

"मेरो तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट, मेरो पति सोईं।।"

इसी प्रकार बाह्याडंबरों पर जो चोट नयनार संत अप्पार या सिद्ध संतों ने तमिल में की थी, वही तीखापन हमें कबीर की साखियों में दिखाई देता है।

"नहाए धोए क्या भया, जो मन का मैल न जाय।
मीन सदा जल में रहै, धोया बास न जाय।।"

"तीरथ करि करि जग मुआ, डूबे पानी न्हाइ।
राम नाम की सार न जानी, काल घसीट्या जाइ।।"

यह उदाहरण प्रमाणित करते हैं कि भले ही उत्तर भारत के कबीरदास और दक्षिण भारत के अप्पार या शिववाक्यर के बीच सदियों का समय और हजारों किमी. की दूरी थी, लेकिन मानवतावाद, सहज साधना, और पाखंड-विरोध की जो वैचारिक अंतर्धारा थी, वह एक ही थी। यही कारण है कि दक्षिण का तमिल भक्ति आंदोलन उत्तर भारत में कबीर और रैदास जैसे संतों के माध्यम से पुनः जीवित हो उठा। तमिल साहित्य और भक्तिकाल ने भारत को भौगोलिक और राजनीतिक सीमाओं से ऊपर उठाकर एक 'सांस्कृतिक इकाई' के रूप में स्थापित किया। दक्षिण के संतों ने बद्रीनाथ, पुरी और अयोध्या जैसे उत्तर भारतीय स्थलों को अपने काव्यों में शामिल कर 'अखंड भारत' की चेतना को सुदृढ़ किया। तमिल भक्ति साहित्य ने क्लासिकल तमिल (संगम भाषा) को आम जन की जीवित भाषा से जोड़कर आधुनिक तमिल भाषा के विकास का मार्ग प्रशस्त किया। इसी मॉडल को बाद में कन्नड़ (वचन साहित्य), तेलुगू, मराठी (वारकरी संप्रदाय) और अंततः हिन्दी प्रदेशों ने अपनाया।

अंततः, तमिल साहित्य से शुरू भक्ति साहित्य केवल अतीत की घटना नहीं है, बल्कि वह भारतीय मानस की वह अन्तर्धारा है, जो आज भी हमारे त्योहारों, संगीत, सामाजिक मूल्यों और दार्शनिक विमर्शों में जीवित है।

संदर्भ

1. डॉ. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 82
2. डॉ. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 96

3. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 40
4. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 39
5. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 50, 51
6. आचार्य प्राकट्य, वैश्वानर संहिता, गीता प्रेस गोरखपुर।

प्रयागराज

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

बौद्ध ग्रंथों में वर्णित नारी एवं बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार में उनका योगदान : भारत एवं श्रीलंका के संदर्भ में

डॉ. (प्रो.) मधु वशिष्ठ, डॉ. ममता सिंह

किसी भी समाज की स्थिति का आकलन, वहाँ की नारी और उसकी सामाजिक स्थिति को जानकर ही किया जा सकता है। भारत और श्रीलंका के सांस्कृतिक संबंधों की एक महत्वपूर्ण कड़ी दोनों के मध्य बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार की रही है। इस संदर्भ में बौद्ध धर्म में नारी की स्थिति तथा उनके महत्वपूर्ण योगदान को प्रकाश में लाया जा सकता है। बहुत सारे ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक तथा पालि भाषा के ग्रंथ हैं, जिनमें नारी की स्थिति एवं उनके द्वारा बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार के योगदान को जाना जा सकता है। ये ग्रंथ इस प्रकार हैं–

1. बौद्ध थेरी गाथा एवं नारी– इन रचनाओं में बौद्ध भिक्षुणियाँ अपने अनुभवों को स्वयं व्यक्त करती हैं तथा अपने ज्ञान और साधना पर गर्व करती हैं। वे यह सिद्ध करती हैं कि मुक्ति और आध्यात्मिक उपलब्धियाँ केवल पुरुषों तक सीमित नहीं हैं। थेरीगाथा नारी की मुक्ति के साथ-साथ उनके संघर्षों का भी दस्तावेज है। पालि में रचित इस बौद्ध ग्रंथ में बौद्ध भिक्षुणियों द्वारा रचित लगभग 73 पद्य रचनाएँ संकलित हैं। इसमें से मुत्ताथेरी, पटाचारा थेरी तथा किसा गौतमी की गाथाओं में स्त्रियों ने अपने सांसारिक जीवन, दुःख, संघर्ष, वैराग्य और आध्यात्मिक उपलब्धियों को स्वयं व्यक्त किया है। यह बताती है कि स्त्री केवल माँ, पत्नी ही नहीं बल्कि स्वतंत्र आध्यात्मिक व्यक्तित्व की स्वामिनी है। थेरीगाथा में धम्मदिन्ना थेरी - थेरीगाथा का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष है। इसमें स्त्रियों के अनुभवों के अनुकूल उनकी अपनी व्यथा का वर्णन सामने आता है। यद्यपि थेरीगाथा में स्त्री की स्थिति विरोधाभास वाली लेकिन परिवर्तनशील दिखाई देती है। इस प्रकार थेरीगाथा में स्त्री की आवाज़, उसके संघर्ष और आध्यात्मिक स्वतंत्रता का महत्वपूर्ण प्रमाण है।

2. विनय पिटक – कुल्लवग्ग में महात्मा बुद्ध की विमाता प्रजापति गौतमी के नेतृत्व में भिक्षुणी संघ की स्थापना का उल्लेख किया गया है।

3. अंगुत्तर निकाय – इसमें महाप्रजापति गौतमी के भिक्षुणी बनने और बुद्ध से संबंधित संवाद का महत्वपूर्ण उल्लेख है। अंगुत्तर निकाय के दूसरे भाग में स्त्री-पुरुष दोनों के लिए नैतिकता और आध्यात्मिक जीवन के संदर्भ उपस्थित हैं।

4. अंगुत्तर निकाय के सोमा सुत्त में सोमा भिक्षुणी को मार-पीट के द्वारा स्त्री होने के आधार पर चुनौती दी जाती है। सोमा इसका प्रतिवाद करती है, कहती है कि ज्ञान प्राप्ति में स्त्रीत्व बाधा नहीं हो सकता। यह स्त्री की आध्यात्मिक समानता का महत्वपूर्ण प्रमाण प्रस्तुत करती है।

5. संयुक्त निकाय- संयुक्त निकाय में स्त्रियों के सामाजिक और पारिवारिक जीवन और उनके सामने आने वाली परिस्थितियों का वर्णन मिलता है।

6- मज्जिम निकाय– के कुल्लावेदाला सुत्त में भिक्षुणी धम्मदिन्ना और उनके पूर्व पति विशाख के मध्य संवाद में धम्मदिन्ना की गहरी दार्शनिक समझ दिखाई देती है। यह स्त्री की बौद्धिक एवं धार्मिक क्षमता का महत्वपूर्ण उदाहरण है।

7- दीघ निकाय के नवपरिनिर्वाण में महाप्रजापति गौतमी और भिक्षुणी संघ से संबंधित प्रसंग, बौद्ध समुदायों में स्त्रियों

की स्थिति समझने में उपयोगी हैं।

8- जातक कथाएँ तत्कालीन स्त्रियों की स्थिति को समझने का महत्वपूर्ण स्रोत है। इनका प्रचार-प्रसार सम्पूर्ण भारतवर्ष एवं श्रीलंका के क्षेत्रों में हुआ था। इनमें स्त्रियों को माता-पत्नी, रानी, सेविका और कभी-कभी बुद्धिमान एवं प्रभावशाली व्यक्तित्व के रूप में चित्रित किया गया है, यद्यपि इसमें तत्कालीन समाज की पितृसत्तात्मक धारणाएँ भी दिखाई देती हैं।

9- बुद्ध चरित और बौद्ध व्याख्यान इसमें विशेष रूप से महाप्रजापति गौतमी का प्रसंग विशेष महत्वपूर्ण है।

10 महायान बौद्ध साहित्य में विमलकीर्ति निर्देश और सद्धर्म पुंडरीक सूत्र जैसे ग्रंथों में स्त्री की आध्यात्मिक क्षमता का व्यापक दृष्टिकोण मिलता है। इसमें नागकन्या की कथा यह विचार प्रस्तुत करती है कि स्त्री भी बुद्धत्व को प्राप्त कर सकती है। उपरोक्त स्रोतों में उपलब्ध अनेक ऐसी विदुषी बौद्ध भिक्षुणियों के नाम उल्लिखित हैं, जिनको इतिहास में कभी उजागर ही नहीं किया गया. इनमें से महात्मा बुद्ध की विमाता प्रजापति गौतमी के अतिरिक्त भिक्षुणी खेमा, महात्मा बुद्ध की प्रमुख शिष्या थी जो प्रज्ञा के लिए प्रसिद्ध थी। उप्पलवर्णा बुद्ध की प्रमुख शिष्या को आध्यात्मिक उपलब्धि के लिए जाना जाता है।

किसा गौतमी – बुद्ध की शिष्या थी, जिसने अनित्यता का संदेश दिया।

अंबपाली – वैशाली की प्रसिद्ध महिला, बुद्ध की अनुयायी थी, जिन्होंने संघ के लिए दान दिया।

भद्दा कापिलानी – प्रसिद्ध भिक्षुणी एवं साधिका थीं।

धम्मदिन्ना – बौद्ध ग्रंथों की गहरी समझ के लिए प्रसिद्ध थीं।

पटाचारा – विनय एवं अनुशासन की शिक्षिका के रूप में विख्यात थीं।

सुभा – की कविताएँ थेरीगाथा में मिलती हैं।

सौमा – दृढ़ साधना के लिए विख्यात थीं।

सम्राट अशोक की पुत्री संघमित्रा का बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार में विशेष स्थान है। इस प्रकार पालि, संस्कृत एवं बौद्ध धार्मिक ग्रंथों में वर्णित नारियों ने बौद्ध धर्म को समस्त विश्व धरोहर के रूप में प्रसारित किया। श्रीलंका के बौद्ध ग्रंथों में भारतीय नारी का उल्लेख मुख्य रूप से बौद्ध धर्म के प्रसार, राजवंशीय संबंधों और भिक्षुणी परंपरा के संदर्भ में मिलता है। देवनपिय तिस्स के समय भारत और श्रीलंका के बीच धार्मिक, सामाजिक संबंध मजबूत हुए ए बोधिवृक्ष की शाखा को श्रीलंका ले जाने की कथा में भी संघमित्रा की केंद्रीय भूमिका है। दीपवन्स, महावन्स जैसे श्रीलंकाई ऐतिहासिक ग्रंथ भारतीय महिलाओं को केवल पारिवारिक पात्रों के रूप में नहीं, बल्कि धार्मिक परिवर्तन और बौद्ध संस्थाओं के निर्माण के सक्रिय योगदान के रूप में प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार भारत श्रीलंका के सांस्कृतिक संबंधों के वाहक के रूप में इन नारियों के योगदान को सदैव स्वर्ण अक्षरों में अंकित किया जाएगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची प्रमुख बौद्धएवं पालि ग्रंथ

1. थेरीगाथा, खुद्दकनिकाय, पालि त्रिपिटक
2. मुत्ताथेरी – Thig 6.2
3. पटाथेरी– Thig 6.6
4. धम्मदिन्ना – Thig 12.1
5. विनय पिटक, कुल्लवग्ग X.1
6. अंगुत्तर निकाय – AN. 8.51, AN 8.80, संयुक्त निकाय – AN 5.21, सोमा सुत्त, संयुक्त निकाय – SN. 4.
7. मज्झिमनिकाय – M.N 44.
8. दीघ निकाय
9. जातक कथाएँ, दीपवन्स, महावन्स, जातक अट्ठकथा

अन्य ग्रंथ

1. Naomi Applikon – "Temptress on the Path – women as objects and Subjects in Buddhist Jataka Stories."
2. Indra – "The status of women in the Ancient India" – Motilal Banarsidass – 1955.
3. Geeta Rani Goswami – "Socio-political status of women's studies", University of North Bengal, Vol. IX 2003, pp. 32–42.
4. Sweta Kumari – "Women in Jataka Narratives: An Analysis in Bodhipatha

डॉ. (प्रो.) मधु वशिष्ठ
विभागाध्यक्ष (इतिहास) सेवानिवृत्त
श्रीमती भागवती देवी जैन पी.जी. कन्या महाविद्यालय, आगरा 282001
मो- 9536727174
डॉ. ममता सिंह
असिस्टेंट प्रो (इतिहास) (अतिथि प्रवक्ता)
श्रीमति बैकुंठी देवी कन्या महाविद्यालय, आगरा-282001
मो-7983380450

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

शास्त्रीय संस्कृत नाटकों में भगवान बुद्ध और बौद्ध धर्म

डॉ. शुभ्रा वर्मा

सार- भारतीय साहित्य में भगवान बुद्ध का व्यक्तित्व केवल बौद्ध धर्म तक सीमित नहीं रहा, बल्कि उन्होंने भारतीय संस्कृति, दर्शन, कला और साहित्य की विविध विधाओं को भी गहरे रूप में प्रभावित किया। संस्कृत नाट्य-साहित्य मुख्यतः वैदिक, पौराणिक तथा महाकाव्यों पर आधारित रहा है। इसलिए शास्त्रीय संस्कृत नाटकों में बुद्ध प्रत्यक्ष नायक के रूप में बहुत कम दिखाई देते हैं। इसके बावजूद अश्वघोष, आर्यशूर, हर्षवर्धन आदि के अनेक नाटकों में बौद्ध भिक्षुओं, बौद्ध विहारों, श्रमण परम्परा तथा बौद्ध दर्शन के उल्लेख मिलते हैं। इन उल्लेखों से भारतीय समाज में बौद्ध धर्म की सामाजिक प्रतिष्ठा, धार्मिक सह-अस्तित्व तथा सांस्कृतिक संवाद का स्पष्ट संकेत प्राप्त होता है। आधुनिक समय में गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर रचित नाटक 'चांडालिका' तथा मोहन राकेश कृत नाटक 'लहरों के राजहंस' बौद्ध दर्शन पर आधारित हैं।

मुख्य शब्द : भगवान बुद्ध, अश्वघोष, आर्यशूर, संस्कृत नाटक, नाट्यशास्त्र, बौद्ध धर्म, तुर्फ़ान क्षेत्र पांडुलिपियाँ, नागानन्द, सांस्कृतिक अध्ययन।

प्रस्तावना- भगवान बुद्ध (563—483 ई.पू. के लगभग) भारतीय इतिहास के ऐसे महापुरुष हैं जिन्होंने करुणा, अहिंसा, समता और मध्यम मार्ग का संदेश देकर भारतीय समाज की वैचारिक दिशा को गहराई से प्रभावित किया। उनके उपदेशों का प्रभाव केवल धार्मिक जीवन तक सीमित नहीं रहा, बल्कि साहित्य, कला, स्थापत्य, मूर्तिकला और रंगमंच तक विस्तार हुआ। संस्कृत नाट्य साहित्य का विकास लगभग चौथी से दसवीं शताब्दी के मध्य अपने उत्कर्ष पर पहुँचा। इस काल तक बौद्ध धर्म भारतीय समाज में व्यापक रूप से प्रतिष्ठित था। परिणामस्वरूप संस्कृत नाटककारों ने बौद्ध संस्कृति का समावेश किया। यह उल्लेख कहीं सामाजिक यथार्थ के रूप में, कहीं हास्य-व्यंग्य के माध्यम से और कहीं धार्मिक सहिष्णुता के प्रतीक के रूप में सामने आता है। संस्कृत नाटक भारतीय समाज के जीवंत दस्तावेज हैं; अतः इनमें बुद्ध एवं बौद्ध संस्कृति के संकेत तत्कालीन सामाजिक संरचना को समझने में महत्वपूर्ण स्रोत सिद्ध होते हैं।

संस्कृत नाटक और बौद्ध प्रभाव

भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में नाटक को समस्त समाज का दर्पण कहा गया है। नाटक का उद्देश्य केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि लोकहित, शिक्षण और धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष की प्राप्ति भी है। यही कारण है कि संस्कृत नाटककारों ने अपने समय के सामाजिक जीवन को यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया।

यद्यपि संस्कृत नाटकों का अधिकांश कथानक रामायण, महाभारत अथवा पुराणों से लिया गया है, फिर भी तत्कालीन सामाजिक परिवेश में विद्यमान बौद्ध समुदाय, श्रमण परम्परा तथा विहारों का उल्लेख अनेक स्थानों पर प्राप्त होता है। इससे स्पष्ट होता है कि बौद्ध धर्म तत्कालीन भारतीय समाज का एक अभिन्न अंग था।

आधुनिक काल में गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भगवान बुद्ध के शिष्य भिक्षु आनन्द के जीवन में घटित एक सत्य घटना पर आधारित कालजयी नाटक 'चांडालिका' की रचना की। इस नाटक में भिक्षु आनन्द ने सभी मनुष्यों को एक समान मानते हुए एक चांडाल जाति की कन्या का उसके 'अछूत' होने का दंश समाप्त किया।

मध्य एशिया के तुरफान (Turpan/Turfan) क्षेत्र (शिनजियांग, चीन) से प्राप्त ताड़पत्र के पांडुलिपि खंड (Manuscript Fragments) भारतीय रंगमंच और बौद्ध साहित्य के इतिहास में क्रांतिकारी खोज माने जाते हैं। 20वीं शताब्दी की शुरुआत (1902-1914) में जर्मन तुरफान अभियानों के दौरान खोजी गई इन पांडुलिपियों का संपादन प्रसिद्ध जर्मन विद्वान हाइनरिख लुडर्स (Heinrich LYyders) ने किया था। ये खंड कुषाण काल (लगभग दूसरी शताब्दी ईस्वी) के हैं, जो इन्हें अब तक खोजे गए सबसे प्राचीन संस्कृत नाटक और भारतीय पांडुलिपियां बनाते हैं। इन खोजों में प्रमुख रूप से तीन बौद्ध नाटकों के खंड मिले हैं, जिनमें से एक के लेखक का नाम अश्वघोष है और दो अन्य नाटकों के लेखकों के बारे में पता नहीं चला है। यह तीन नाटक इस प्रकार हैं –

1. शारिपुत्रप्रकरण : यह महाकवि अश्वघोष द्वारा रचित 9 अंकों का नाटक है। इसमें महात्मा बुद्ध के दो प्रमुख शिष्यों, शारिपुत्र और मौद्गल्यायन, के बौद्ध संघ में दीक्षित होने की कथा को नाट्य रूप दिया गया है। यह शास्त्रीय संस्कृत नाटक परंपरा (Classical Sanskrit Drama) का सबसे प्राचीन और प्रामाणिक उदाहरण है, जिससे यह सिद्ध होता है कि अश्वघोष केवल महाकवि ही नहीं बल्कि एक कुशल नाटककार भी थे।

2. रूपात्मक/प्रतीकात्मक बौद्ध नाटक : तुरफान से प्राप्त नाटक खंडों में से एक अत्यंत अनूठा प्रतीकात्मक (Allegorical) नाटक है। इसके लेखक का नाम नहीं पता चल पाया। लंदन स्वामीनाथन के लेख से इस नाटक की विशेषता का पता चलता है। इस नाटक की विशेषता है कि इस नाटक के पात्र कोई वास्तविक मनुष्य नहीं, बल्कि अमूर्त मानवीय भावनाएं और बौद्ध दार्शनिक अवधारणाएं हैं। इसमें 'बुद्धि' (Intellect), 'कीर्ति' (Fame), और 'धृति' (थ्पतउदमे) जैसे चरित्र मंच पर साक्षात् आकर संवाद करते हैं। महाकवि भास के कुछ नाटकों में यह शैली दिखाई देती है।

3. सामाजिक बौद्ध नाटक : तीसरा नाटक खंड भी एक अज्ञात लेखक का है, जो एक 'प्रकरण' शैली का सामाजिक नाटक है। इसमें समाज के विभिन्न वर्गों का सजीव चित्रण है। इसमें एक विदूषक, एक गणिका, एक दुष्ट चरित्र और एक राजकुमार या नायक शामिल हैं। इस नाटक में पात्रों के सामाजिक स्तर के अनुसार विभिन्न प्रकार की प्राकृत भाषाओं के सबसे प्राचीन रूप देखने को मिलते हैं, जो भाषा विज्ञान के अध्ययन के लिए अमूल्य निधि हैं।

तुरफान पाण्डुलिपियों का ऐतिहासिक महत्व

1. प्राचीनता सिद्ध होना : इन खोजों से पहले, भास और कालिदास को सबसे प्राचीन नाटककार माना जाता था। तुरफान के इन बौद्ध नाटकों ने भारतीय नाट्य कला के इतिहास को उससे भी प्राचीन सिद्ध किया है।

2. विकसित नाट्य तकनीक : लुडर्स के अनुसार, इन खंडों से पता चलता है कि ईसा की दूसरी शताब्दी तक आते-आते भारतीय रंगमंच की तकनीक (जैसे विदूषक का होना, प्राकृत और संस्कृत भाषा का मिश्रित उपयोग, नाटक का अंकों में विभाजन) पूरी तरह विकसित हो चुकी थी, जो कि नाट्यशास्त्रीय परंपरा के अनुरूप है।

3. रेशम मार्ग (Silk Route) पर संस्कृति का प्रसाररू ये पांडुलिपियां इस बात का ठोस प्रमाण हैं कि रेशम मार्ग (Silk Route) के माध्यम से भारतीय बौद्ध धर्म, संस्कृत साहित्य और रंगमंच कला सुदूर मध्य एशिया और चीन तक गहराई से फैल चुकी थी। वर्तमान में ये ऐतिहासिक पाण्डुलिपियाँ जर्मनी की बर्लिन राज्य लाइब्रेरी (Berlin State Library) के तुरफान संग्रह (Berlin Turfan Collection) में सुरक्षित रखे गए हैं।

अश्वघोष का 'शारिपुत्रप्रकरण' : भगवान बुद्ध का प्रारम्भिक नाट्य-चित्रण- संस्कृत नाट्य-साहित्य में भगवान बुद्ध के प्रत्यक्ष उल्लेख की चर्चा अश्वघोष के 'शारिपुत्रप्रकरण' के बिना पूर्ण नहीं मानी जा सकती। अश्वघोष (प्रथम—द्वितीय शती ईस्वी) संस्कृत के प्रथम महान बौद्ध कवि एवं नाटककार माने जाते हैं। उनकी प्रसिद्ध कृतियों 'बुद्धचरित' तथा 'सौन्दरानन्द' के साथ 'शारिपुत्रप्रकरण' भी विशेष महत्व रखता है। यद्यपि यह नाटक पूर्ण रूप में उपलब्ध नहीं है और इसके केवल खंडित अंश ही प्राप्त हुए हैं, तथापि उपलब्ध सामग्री इसके ऐतिहासिक एवं साहित्यिक महत्व को स्पष्ट करती है। 'शारिपुत्रप्रकरण' का मूल कथानक भगवान बुद्ध के दो प्रमुख शिष्यों, शारिपुत्र (उपतिस्स) और मौद्गल्यायन (कोलित) के बौद्ध धर्म में दीक्षित

होने की कथा पर आधारित है। नाटक में भगवान बुद्ध केवल एक धार्मिक उपदेशक नहीं, बल्कि सत्य के उद्घाटक, करुणामूर्ति तथा लोककल्याण के मार्गदर्शक के रूप में चित्रित होते हैं। यह प्रस्तुति बौद्ध दर्शन के मूल सिद्धान्तों, दुःख, अनित्यता, अनात्म तथा निर्वाण, को नाटकीय संवादों और चरित्र-निर्माण के माध्यम से अभिव्यक्त करती है।

नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से 'शारिपुत्रप्रकरण' अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह प्रमाणित करता है कि संस्कृत भाषा में बौद्ध नाट्य-परम्परा का विकास अपेक्षाकृत प्रारम्भिक काल में ही हो चुका था। इसमें संस्कृत एवं प्राकृत दोनों भाषाओं का प्रयोग तत्कालीन नाट्य-परम्परा के अनुरूप मिलता है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि बौद्ध आचार्यों ने भरतमुनि की नाट्य-परम्परा को स्वीकार करते हुए उसे अपने धार्मिक एवं दार्शनिक संदेश के संप्रेषण का प्रभावी माध्यम बनाया। 'शारिपुत्रप्रकरण' यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं कि भगवान बुद्ध संस्कृत नाट्य-साहित्य में केवल अप्रत्यक्ष सांस्कृतिक प्रभाव के रूप में ही नहीं, बल्कि प्रत्यक्ष नाट्य-पात्र और आध्यात्मिक गुरु के रूप में भी प्रतिष्ठित थे। इस दृष्टि से यह कृति संस्कृत नाट्य-इतिहास और बौद्ध साहित्य के मध्य एक महत्वपूर्ण सेतु का कार्य करती है।

इस प्रकार यदि 'मृच्छकटिकम्' बौद्ध समाज की सामाजिक उपस्थिति का दर्पण है, 'नागानन्द' बौद्ध करुणा और बोधिसत्त्व-आदर्श का नाट्यरूप है, तो 'शारिपुत्रप्रकरण' भगवान बुद्ध के प्रत्यक्ष नाट्य-चित्रण का प्राचीनतम और सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रमाण माना जा सकता है।

आर्यशूर रचित 'जातकमाला' में बौद्ध आख्यान- बौद्ध संस्कृत साहित्य में आर्यशूर की 'जातकमाला' का भी उल्लेख आवश्यक है। इसमें बोधिसत्त्व के अनेक पूर्वजन्मों की कथाएँ हैं। ये कथाएँ दान, करुणा, सत्य, क्षमा, त्याग और अहिंसा जैसे मूल्यों को प्रतिष्ठित करती हैं। हालाँकि 'जातकमाला' नाटक नहीं है, लेकिन इसकी कथात्मक और संवादात्मक संरचना ने बौद्ध प्रदर्शन-परम्पराओं के लिए पर्याप्त सामग्री उपलब्ध कराई। इसलिए बुद्ध आधारित नाट्य परम्परा का अध्ययन केवल उपलब्ध नाटकों तक सीमित न रखकर जातक साहित्य के साथ भी जोड़ना आवश्यक है।

मृच्छकटिकम् में बौद्ध संस्कृति के संकेत- शूद्रक रचित 'मृच्छकटिकम्' संस्कृत साहित्य का सर्वाधिक यथार्थवादी सामाजिक नाटक माना जाता है। इसकी विशेषता यह है कि इसमें केवल राजाओं और देवताओं का जीवन नहीं, बल्कि नगर समाज का बहुआयामी चित्र प्रस्तुत किया गया है। इस नाटक में बौद्ध भिक्षुओं तथा भिक्षुणियों का उल्लेख अनेक प्रसंगों में प्राप्त होता है। वसंतसेना के आश्रय, नगर जीवन तथा सामाजिक गतिविधियों में बौद्ध विहारों की उपस्थिति दिखाई देती है। यहाँ बौद्ध पात्रों का चित्रण किसी विरोधी सम्प्रदाय के रूप में नहीं, बल्कि समाज के सामान्य एवं सम्मानित अंग के रूप में किया गया है। 'मृच्छकटिकम्' में करुणा, दानशीलता, अहिंसा तथा मानवीय समानता जैसे मूल्य बौद्ध नैतिकता से साम्य रखते हैं।

नागानन्द : बौद्ध करुणा का नाट्य रूप- सम्राट हर्षवर्धन रचित नाटक 'नागानन्द' संस्कृत नाट्य परम्परा में एक अद्वितीय स्थान रखता है। इस नाटक का नायक जीमूतवाहन है, जो अपने प्राणों का त्याग कर नाग जाति की रक्षा करता है। यद्यपि कथा मूलतः बौद्ध जातक-परम्परा से प्रेरित मानी जाती है, नाटक में शैव तथा बौद्ध दोनों धार्मिक परम्पराओं का समन्वय मिलता है। नाटक का मूल भाव करुणा (करुण रस) है, जो भगवान बुद्ध के जीवन-दर्शन का केंद्रीय तत्व भी है। जीमूतवाहन का आत्मबलिदान बोधिसत्त्व की करुणा और लोकमंगल की भावना का नाटकीय रूप है। इस प्रकार 'नागानन्द' प्रत्यक्ष रूप से बुद्ध की कथा न होते हुए भी बौद्ध नैतिक आदर्शों का प्रभावशाली नाट्य रूप प्रस्तुत करता है।

भगवान बुद्ध का संस्कृत नाटकों में प्रत्यक्ष उल्लेख अपेक्षाकृत कम होने के कारण

यह प्रश्न स्वाभाविक है कि यदि बुद्ध का प्रभाव इतना व्यापक था तो संस्कृत नाटकों में वे प्रत्यक्ष नायक क्यों नहीं बने? इसके पीछे कई कारण प्रतीत होते हैं :

1. संस्कृत नाटकों की कथावस्तु मुख्यतः रामायण, महाभारत तथा पुराणों से ग्रहण की जाती थी।
2. बौद्ध साहित्य ने स्वयं पालि एवं बौद्ध संस्कृत में स्वतंत्र नाटकीय और आख्यानात्मक परम्परा विकसित की।
3. भगवान बुद्ध का जीवन त्याग, संन्यास और निर्वाण पर आधारित है, जबकि शास्त्रीय नाटक में नायक के लिए

लौकिक संघर्ष, प्रेम, राज्य और सामाजिक क्रिया-व्यापार अपेक्षित माने गए हैं।

फिर भी यह ध्यान देने योग्य है कि बौद्ध जीवन मूल्य, करुणा, दया, अहिंसा, त्याग और लोकमंगल, संस्कृत नाटकों के अनेक पात्रों और कथानकों में अंतःसलिला की भाँति प्रवाहित होते दिखाई देते हैं।

नाट्यशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य : भरतमुनि के अनुसार नाटक का सर्वोच्च उद्देश्य "लोकहित" और "लोकशिक्षा" है। भगवान बुद्ध के उपदेश भी मानव-कल्याण, करुणा और दुःख-निवारण पर केन्द्रित हैं। इस दृष्टि से नाट्यशास्त्र और बौद्ध दर्शन के बीच गहरी वैचारिक समानता दिखाई देती है। करुण रस, जो संस्कृत नाट्य परम्परा का प्रमुख रस है, बुद्ध के व्यक्तित्व और उपदेशों का भी मूल आधार है। यही कारण है कि संस्कृत नाटककारों ने बुद्ध का प्रत्यक्ष चरित्र न अपनाने पर भी करुणा, सहानुभूति तथा नैतिक उत्तरदायित्व को अपने नाटकों में महत्वपूर्ण स्थान दिया।

सांस्कृतिक महत्व- संस्कृत नाटकों में बुद्ध और बौद्ध परम्परा के उल्लेख भारतीय संस्कृति की बहुलतावादी प्रकृति के प्रमाण हैं। ये उल्लेख सिद्ध करते हैं कि प्राचीन भारत में विभिन्न धार्मिक परम्पराएँ परस्पर संवाद, प्रतिस्पर्धा और सह-अस्तित्व के वातावरण में विकसित हुईं। इन नाटकों से यह भी स्पष्ट होता है कि सांस्कृतिक आदान-प्रदान केवल धार्मिक ग्रन्थों तक सीमित नहीं था, बल्कि रंगमंच भी इस संवाद का प्रभावी माध्यम था। संस्कृत नाटक भारतीय समाज की सांस्कृतिक विविधता तथा सहिष्णुता के ऐतिहासिक दस्तावेज के रूप में देखे जा सकते हैं। आधुनिक काल में छल कपट इतना बढ़ गया है कि लोग मानसिक शांति और सामाजिक सहिष्णुता की खोज में जाने लगे हैं।

निष्कर्ष- शास्त्रीय संस्कृत नाटकों में भगवान बुद्ध का प्रत्यक्ष उल्लेख अपेक्षाकृत सीमित है, किन्तु बौद्ध संस्कृति, बौद्ध भिक्षुओं, विहारों तथा बौद्ध नैतिक आदर्शों की उपस्थिति पर्याप्त रूप से दिखाई देती है। इस प्रकार संस्कृत नाटक भगवान बुद्ध के प्रत्यक्ष जीवनवृत्त से अधिक उनके सांस्कृतिक प्रभाव के अध्ययन का महत्वपूर्ण स्रोत हैं। भविष्य में संस्कृत नाटकों, बौद्ध संस्कृत साहित्य तथा नाट्यशास्त्रीय सिद्धान्तों के तुलनात्मक अध्ययन से भारतीय सांस्कृतिक इतिहास के अनेक नए आयाम उद्घाटित हो सकते हैं। अंततः मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचती हूँ कि जब देश, काल, परिस्थिति, वातावरण दूषित होने लगा, लोग दुखी और क्लांत होने लगे, समाज में छल, कपट, प्रपंच व मिथ्या भाषण बढ़ गया तब लोग भगवान बुद्ध की ओर जाने लगे और नाटकों में भी यही दिखाई देने लगा।

संदर्भ

1. भरतमुनि. नाट्यशास्त्रम्।
2. शूद्रक. मृच्छकटिकम्।
3. हर्षवर्धन. नागानन्दम्।
4. महेन्द्रविक्रमवर्मन्, मत्तविलासप्रहसनम्।
5. A. B. Keith. The Sanskrit Drama: Its Origin, Development, Theory and Practice.
6. M. Winternitz. History of Indian Literature.
7. Sylvain L/vi. Le Th/âtre Indien.
8. Arthur Ryder (Trans.). The Little Clay Cart (Mahcchakashika).
9. Tamil - Vedas by London Swaminathan.
10. Buddhist Drama by Moriz Winternitz
11. Ancient Buddhist Texts, The Turfan German China expedition by Heinrich LYyders, MaÛ Plank Institute, Germany.

नाट्य गुरु व नाट्य प्रवक्ता, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी 221001

मो- 8090400947, 9839235079

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

बौद्ध शिक्षा के केंद्रों का इतिहास तथा वर्तमान शिक्षा में प्रासंगिकता

नीतू गौतम, दीपक गौतम

सारांश- बौद्ध शिक्षा का लक्ष्य ज्ञान प्राप्ति तक ही सीमित नहीं था अपितु सामाजिक चेतना, सामान्य जीवन में संतुलन तथा साधारण लोगों/जनों में नव चेतना विकसित करना था. शिक्षा के प्रमुख केंद्र नालंदा, तक्षशिला, विक्रमशिला, वल्लभी तथा विभिन्न प्रकार के मठ, संघ और विहार थे जो कि अपने ज्ञान, अनुशासन, नैतिकता, धर्म आचरण के लिए प्रसिद्ध थे। पाठ्यक्रम में योग, कला, दर्शन, कौशल, चिकित्सा आदि विषयों का समावेश था. बौद्ध कालीन शिक्षा के केंद्र भारत में ही नहीं अपितु अपने अस्तित्व के लिए विदेश में भी अपने ज्ञान और अनुशासन के लिए प्रसिद्ध थे और गुरू शिष्य्य परंपरा का प्रावधान था यह शिक्षा के केंद्र शिक्षा ही नहीं बल्कि बौद्ध धर्म के प्रचार व प्रसार का माध्यम थे। बौद्ध शिक्षा केंद्रों ने तत्कालीन शिक्षा ही नहीं अपितु आधुनिक शिक्षा में भी अपना महत्व्वपूर्ण योगदान दिया।

भारत का प्राचीनतम धर्म वैदिक धर्म माना जाता है। वैदिक धर्म ज्ञान व परंपराओं के क्षेत्र में भारतीय शिक्षा का प्रमुख आधार रहा है। वैदिक कालीन युग में शिक्षा लौकिक व पारलौकिक थी। शिक्षा का माध्यम मौखिक था तथा शिक्षा गुरु-शिष्य परंपरा पर आधारित थी। प्राचीन वैदिक कालीन शिक्षा प्रणाली वेदों और उपनिषदों पर आधारित थी। संस्कृत भाषा शिक्षा का एकमात्र माध्यम थी। मंत्र, सूत्र, ऋचाएँ मौखिक रूप से पढ़ाये जाते थे। शिक्षा प्रदान करने के मुख्य केंद्र गुरुकुल थे। धीरे-धीरे वैदिक धर्म में कुछ बुराइयाँ जैसे कठोर वर्ण व्यवस्था, कर्मकाण्ड्डों की प्रधानता व्याप्त होने के कारण छठी शताब्दी ईस्वी पूर्व में एक धर्म का उदय हुआ, उसे बौद्ध धर्म कहा जाता है। यह शिक्षा तक सीमित न रहकर आत्म-साक्षात्कार, नैतिक और सामाजिक सिद्धांतों पर आधारित था। इस शिक्षा का मुख्य आधार समाज कल्याण था। बौद्ध शिक्षा के प्रमुख केंद्र बौद्ध मठ और विहार थे जो पारंपरिक शिक्षा की अवधारणा, ऐतिहासिक विकास तथा समय के साथ-साथ हुए परिवर्तनों की व्याख्या करते हैं। बौद्ध शिक्षा प्रणाली का सबसे महत्वपूर्ण विषय इसका व्यावहारिक होना तथा समावेशी विचारधारा था। बौद्ध धर्म में शिक्षा केवल आध्यात्मिक ही नहीं बल्कि सामाजिक कल्याणकारी थी। बौद्ध शिक्षा में चिकित्सा, खगोल, गणित, व्याकरण जैसे विषयों को समावेशित किया जाता था। बौद्ध शिक्षा की मुख्य विशेषता थी कि उसमें सभी के लिए समान अवसर, निःशुल्क शिक्षा, अनुशासन व सादगी वह जीवन उपयोगी शिक्षा का प्रावधान था। बौद्ध धर्म के प्रमुख सिद्धांत कर्मप्रधान सिद्धांत, अहिंसा, सत्य्य, अस्त्तेय, अपरिग्रह, ब्रहम्चर्य, मादक द्रव्यों का असेवन थे। इन सिद्धांतो के आधार पर बौद्ध शिक्षा के उद्देश्य्य निर्देशित थे। बौद्ध धर्म का प्रमुख उद्देश्य्य निर्वाण है, अतः शिक्षा का उद्देश्य्य भी इस निर्वाण प्राप्ति में मानव का सहयोग करना था। बौद्ध धर्म में शिक्षा प्राप्ष्त करने व जीवन निर्वाह के लिए अष्ष्टांगिक मार्ग बताए हैं 'अष्ष्टांगिक मार्ग में निम्प्न भागों का समावेश किया है–

1. सम्यक दृष्टि - इस मार्ग में वास्तविकता व चार आर्य सत्यों का वर्णन किया गया है।

2. सम्यक संकल्प - इस प्रकार के मार्ग में करुणा और अहिंसा का विचार रखना महत्वपूर्ण माना गया है।

3. सम्यक वाक - सत्य बोलने व हानिकारक तत्वों से बचाना।

4. सम्यक कर्म - दयालुता के साथ अपने कार्य को करना।

5. सम्यक व्यवसाय - नकारात्मक प्रवृत्ति पर रोक लगाना।

6. सम्यक स्मृति - वर्तमान क्षण के लिए जागरूक रहना।

7. सम्यक व्यायाम - नियमित व्यायाम करना।

8. सम्यक समाधि - ज्ञान के माध्यम से मन को वशीभूत करना।

उपर्युक्त अष्टांगिक मार्ग का पालन करना एक विद्यार्थी के लिए बौद्ध धर्म में आवश्यक माना जाता था। महात्मा बुद्ध के उपदेशों से प्रभावित होकर जन साधारण लोगों ने बौद्ध धर्म को अपना लिया। अतः लोगों ने बौद्ध धर्म के सिद्धांतो तथा बौद्ध धर्म से सम्ब्बन्धित शिक्षाओं को ग्रहण करने का निश्चय किया। यह शिक्षा विभिन्न प्रकार के विहार तथा मठों में प्रदान की जाती थी। बौद्ध धर्म के उदारवादी उपदेशों को तत्कालीन शासकों ने बौद्ध धर्म के प्रचार व प्रसार के लिए प्रयोग किया। शिक्षा के क्षेत्र में अत्यधिक योगदान दिए। उन्होंने बौद्ध विहारों के लिए दान दिए तथा यथासंभव सहायता करने का प्रयास किया। जिससे बौद्ध विहार शिक्षा के प्रमुख केंद्रों के रूप में स्थापित हुए। प्राचीन बौद्ध शिक्षा केंद्र परंपरागत प्रणालियों के समान थे, जहाँ गुरु और शिष्य एक स्थान पर शिक्षा प्राप्त करते थे। परंतु वैदिक काल के गुरु व शिष्य के समान संबंधों का आधार अलग था, उसका कारण बौद्ध विहार में छात्रों की संख्या का अधिक होना था। बौद्ध विहारो में शिक्षा का माध्यम पाली भाषा थी। बौद्ध संघ भी शिक्षा का प्रमुख केंद्र थे। पब्बज्जा संस्कार के द्वारा शिक्षा का आरंभ माना जाता था, जो कि 8 वर्ष की आयु पूर्ण करने के पश्चात ही प्रारंभ होती थी। और इस संस्कार के पश्चात विद्यार्थी 'उपासक' कहलाता था। शिक्षा की समाप्ति उपसंपदा संस्कार के साथ होती थी। विद्यार्थियों को सभी तथा ब्रह्मचर्य का पालन करना होता था। उपसंपदा संस्कार के समय विद्यार्थी की आयु लगभग 30 वर्ष होती थी।

बौद्ध शिक्षा के प्रमुख केंद्र

1. नालंदा विश्वविद्यालय - नालंदा विश्वविद्यालय प्राचीन बौद्ध शिक्षा केंद्र के रूप में विख्यात है। कुछ लेखकों के अनुसार नालंदा विश्वविद्यालय ब्राह्मण शिक्षा का प्रमुख केंद्र था तथा कुछ का मानना है कि नालंदा विश्वविद्यालय की ख्याति बुद्ध के समय में हुयी थी। महात्मा बुद्ध के परम शिष्य सारिपुत्र की जन्मस्थली के रूप में यह नगर विख्यात था। कुछ महात्मा बुद्ध के शिष्यों ने दान देकर नालंदा विश्वविद्यालय के क्षेत्र का क्रय किया था। कहा जाता है कि बाद में मौर्य सम्राट अशोक ने नालंदा विश्वविद्यालय के विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। अशोक ने नालंदा विश्वविद्यालय से संबंधित बौद्ध विहारों की स्थापना की। विश्व के विभिन्न देशों से विद्यार्थी यहाँ शिक्षा ग्रहण करने आते थे। नालंदा के बारे में चीनी यात्री इत्सिंग तथा ह्वेनसांग ने भी वर्णन किया है। इत्सिंग सातवीं शताब्दी में भारत आया तथा ह्वेनसांग आठवीं शताब्दी में भारत आया, उन्होंने नालंदा के बौद्ध विहारों का वर्णन किया है। बताया जाता है कि यहाँ का सबसे बड़ा शिखर 203 फीट लंबा तथा 164 फीट चौड़ा था। कक्षाएँ 9 फीट से लेकर 12 फीट चौड़ी थीं। विश्वविद्यालय में सात विशाल कक्ष थे तथा 300 अन्य कक्ष थे। नालंदा विश्वविद्यालय में प्रवेश पाने वाले इच्छुक विद्यार्थियों को प्रवेश के लिए कठिन प्रवेश परीक्षा उत्तीर्ण करनी पड़ती थी। यह परीक्षा द्वार पंडित द्वारा ली जाती थी। द्वार पंडित को पराजित करके ही नालंदा विश्वविद्यालय में प्रवेश मिलता था। चीनी यात्री इत्सिंग भी भारत शिक्षा प्राप्त करने के उद्देश्य से आया था और वह धर्म की प्रभावी पुस्तकों को एकत्रित करके चीन ले जाना चाहता था। उसने यहाँ रहकर 400 ग्रंथों का अध्ययन किया जिसमें श्लोकों की संख्या 5 लाख थी। महाविहार में प्रवेश पाने के लिए व्याकरण, न्याय, धर्मकोष का ज्ञान होना आवश्यक था। इसके पश्चात शब्दविद्या, चिकित्साविद्या, सांख्यशास्त्र, तंत्र, वेद आदि के अध्ययन की व्यवस्था थी। इन विहारों में शिक्षकों की संख्या लगभग 1510 थी। ह्वेनसांग के समय नालंदा विश्वविद्यालय के कुलपति शीलभद्र थे। चीन, तिब्बत, कोरिया आदि के विद्यार्थी यहाँ तर्कशास्त्र की शिक्षा प्राप्त करने आते थे। तिब्बत के विभिन्न राजाओं ने विश्वविद्यालय के शिक्षकों को आमंत्रित किया तथा इन आचार्यो ने तिब्बत में बौद्ध शिक्षा केंद्रों की स्थापना की।

2. विक्रमशिला विश्वविद्यालय - नालंदा विश्वविद्यालय की प्रसिद्धि से आकर्षित होकर अन्य देशों के विद्यार्थी भी भारत आने लगे। विद्यार्थियों की संख्या अधिक होने के कारण आठवीं शताब्दी के पाल वंश के राजा धर्मपाल ने बिहार में विक्रमशिला विहार के लिए 100 गाँव दान किए। राजा धर्मपाल बौद्ध धर्म का अनुयायी था और उसने बौद्ध धर्म की शिक्षा के प्रसार के लिए बौद्ध विहारों की स्थापना की और उन बौद्ध विहारों में बौद्ध शिक्षकों की नियुक्ति भी की। यह विश्वविद्यालय बौद्ध शिक्षा का प्रमुख केंद्र था। इस विश्वविद्यालय में बौद्ध धर्म, दर्शन, न्याय, व्याकरण, वैदिक साहित्य, तंत्र विषयों की शिक्षा प्रदान की जाती थी। विक्रमशिला विश्वविद्यालय बौद्ध धर्म के वज्रयान संप्रदाय की शिक्षा का प्रमुख केंद्र था। यह विश्वविद्यालय तंत्र शिक्षा का प्रमुख केंद्र भी था। नालंदा विश्वविद्यालय की भांति विक्रमशिला विश्वविद्यालय में भी "दीपंकर श्रीज्ञान" जैसे विद्वान थे, जिन्होंने 200 ग्रंथों की रचना की। तंत्र विद्या के साथ-साथ शैव धर्म, वैष्णव धर्म, जैन धर्म के पौराणिक धर्म की शिक्षा भी प्रदान की जाती थी। विक्रमशिला विश्वविद्यालय में 6 कुलपतियों का एक मंडल था जो सारी व्यवस्था को आयोजित करता था। यहाँ भी द्वार पंडितों का महत्वपूर्ण योगदान था, इन्हीं के द्वारा विद्यार्थियों का प्रवेश लिया जाता था तथा इनकी संख्या 6 थी। विक्रमशिला विश्वविद्यालय में अनेक कर्मचारियों, शिक्षकों व विद्यार्थियों के आवास व भोजन की व्यवस्था भी विश्वविद्यालय के द्वारा ही की जाती थी। संपूर्ण विश्वविद्यालय 6 महाविद्यालयों में विभक्त था, जहाँ प्रत्येक महाविद्यालय में 108 शिक्षक होते थे। कुल शिक्षकों की संख्या 648 थी। मुख्य सभा भवन में 8000 व्यक्ति एक साथ बैठ सकते थे। विदेशी विद्यार्थियों में तिब्बत के विद्यार्थियों की संख्या अधिक थी।

3. वल्लभी विश्वविद्यालय - गुजरात के वल्लभी नगर में वल्लभी विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। यह विश्वविद्यालय पश्चिमी भारत में शिक्षा का प्रमुख केंद्र था। यह विश्वविद्यालय प्रशासन व न्याय व्यवस्था के लिए विख्यात था। यहाँ अर्थशास्त्र, राजनीति विज्ञान का अध्ययन कराया जाता था। ह्वेनसांग ने लिखा है कि वल्लभी में 100 विहार थे जिनमें 6000 बौद्ध विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करते थे। वल्लभी विश्वविद्यालय भी बौद्ध शिक्षण संस्थाओं का प्रमुख केंद्र था। इस विश्वविद्यालय में पहला बौद्ध विहार की स्थ्थापना राजकुमारी टुड्डा ने कराया, दूसरे बौद्ध विहारों की स्थापना में राजा धर्मसेन ने योगदान दिया। इसमें कई बौद्ध विहार थे।

4. तक्षशिला विश्वविद्यालय - तक्षशिला विश्वविद्यालय भी बौद्ध शिक्षा का प्रमुख केंद्र रहा है। ऐसी मान्यता है कि यह विश्वविद्यालय महाभारत के काल में भी अपने अस्तित्व में था। यह एक प्राचीनतम विश्वविद्यालय है जो आज पाकिस्तान में स्थित है। यह विश्वविद्यालय छठी शताब्दी ईसा पूर्व से पाँचवीं शताब्दी ईस्वी तक शिक्षा का प्रमुख केंद्र था। इसे औपचारिक रूप से (आधुनिक अर्थों में) विश्वविद्यालय नहीं माना जाता था क्योंकि अन्य विश्वविद्यालयों की तरह यहाँ एक केंद्रीय प्रशासनिक व्यवस्था नहीं थी। अलग-अलग शिक्षक स्वतंत्र रूप से अलग-अलग विषय पढ़ाते थे। इसमें विभिन्न विषय जैसे चिकित्सा, सैन्य विज्ञान, व्याकरण, खगोलशास्त्र, गणित, विज्ञान, दर्शनशास्त्र प्रमुख विषय थे। तक्षशिला बौद्ध धर्म के प्रारंभिक समय में महायान मत के विकास व प्रचार-प्रसार से जुड़ा रहा। यहाँ के कई बौद्ध स्थल, बौद्ध स्तूप और विहार भी प्रसिद्ध हैं।

बौद्ध कालीन शिक्षा की आधुनिक युग में प्रासंगिकता

नारी शिक्षा : छठी शताब्दी ईस्वी पूर्व में बौद्ध शिक्षा में नारी शिक्षा भी प्रचलन में थी। महात्मा बुद्ध पहले तो नारी शिक्षा के विरुद्ध थे, परंतु अपनी धाय माँ गौतमी व प्रिय शिष्य आनंद से प्रेरित होकर स्त्री शिक्षा के पक्ष में अपने विचारों में सकारात्मकता लाने का प्रयास किया और स्त्रियों को बौद्ध मठों व विहारों में स्थान दिया। स्त्रियों को भी पुरुषों की भांति शिक्षा प्राप्त करने के अवसर प्रदान किए गए। उन्हें भी पुरुषों की भांति ही ब्रह्मचर्य का पालन करना होता था। स्त्री शिक्षा की तत्कालीन प्रासंगिकता आज भी आधुनिक शिक्षा में विद्यमान है। स्त्रियाँ आज पुरुषों की भांति प्रत्येक विषय का अध्ययन कर देश के विकास में अपना योगदान दे रही हैं।

समान अवसर : आधुनिक समय में शिक्षा धार्मिक शिक्षा तक ही सीमित नहीं है, बल्कि प्रत्येक धर्म, संप्रदाय, जाति

के व्यक्तियों को शिक्षा का समान अवसर व अधिकार प्रदान किया गया है। उसी प्रकार बौद्ध कालीन शिक्षा प्रणाली में भी सभी के लिए शिक्षा समान थी।

सर्वांगीण विकास : जिस प्रकार बौद्ध कालीन शिक्षा प्रणाली में शरीर और मन की स्वच्छता मेडिटेशन (ध्यान) और योग के द्वारा होती थी, उसी प्रकार आधुनिक शिक्षा में भी हम उन विषयों को सम्मिलित कर रहे हैं जो हमारे विद्यार्थियों के आचार-विचार, मानसिकता और नैतिकता का संवर्धन करें। शारीरिक विज्ञान, योग विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान, मेडिटेशन, नीतिशास्त्र आदि विषयों को शामिल करके हम विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास पर बल देने का प्रयास कर रहे हैं।

समावेशी शिक्षा : बौद्ध कालीन शिक्षा में हम समावेशी शिक्षा को बढ़ावा देने का प्रयास किया गया। स्त्री-पुरुष, धर्म-जाति, देश-विदेश, सभी जाति के और सभी धर्म के लोगों या विद्यार्थियों को शिक्षा प्राप्ति के अवसर समान रूप से प्रदान किए गए थे। उसी प्रकार आज भी हमारे देश में विभिन्न शिक्षा नीतियाँ विद्यार्थियों को समान अवसर प्रदान कर रही हैं।

शिक्षा का विकेंद्रीकरण : बौद्ध कालीन शिक्षा आध्यात्मिक ही नहीं बल्कि समाज में समग्र विकास का एक महत्वपूर्ण साधन थी। उसी प्रकार आधुनिक शिक्षा में शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, पर्यावरणीय, नैतिक समग्र विकास करने वाले विषयों को शामिल किया गया है। बौद्ध कालीन शिक्षा में शैक्षिक नियोजन संघों में विभाजित था, आज उसी से प्रेरित होकर हम शिक्षा के विकेंद्रीकरण पर बल देते हैं।

शिक्षा के स्तर और भाषा : बौद्ध कालीन शिक्षा को विभिन्न स्तरों में भी व्यक्त किया गया था जैसे प्राथमिक शिक्षा, उच्च शिक्षा तथा भिक्षु शिक्षा, जो कि आधुनिक शिक्षा को विभिन्न स्तरों पर बाँटने की आधारशिला है। आधुनिक शिक्षा में हम सर्वसुलभ भाषा का प्रयोग करते हैं, जो कि शिक्षा के एक माध्यम के रूप में है, यह बौद्ध कालीन शिक्षा की ही देन है। बौद्ध कालीन शिक्षा में सर्वसुलभ भाषा पाली व प्राकृत भाषा थी, जो कि शिक्षा का माध्यम थी।

कौशल और व्यावहारिक ज्ञान : बौद्ध कालीन समय में कागज़ का आविष्कार हो गया था जो कि ज्ञान संरक्षण व प्रसार का एक प्रमुख माध्यम था। तत्कालीन शिक्षा व्यावहारिक ज्ञान पर अधिक बल देने में तथा कौशल विकास पर बल देती थी, जो कि आधुनिक शिक्षा के लिए एक प्रमुख देन है। बौद्ध कालीन शिक्षा में स्व-अनुशासन पर बल दिया गया। बौद्ध काल में विभिन्न शिक्षण पद्धतियों का आविष्कार हुआ जैसे वाद-विवाद, व्याख्यान, सूत्र विधि, स्वाध्याय विधि, जिसने विद्यार्थियों में तर्क शक्ति, चिंतन शक्ति और रचनात्मक शोध प्रवृत्ति पर बल दिया।

निष्कर्ष

बौद्ध काल के मठों ने शिक्षा के केंद्रों के रूप में वैश्विक दृष्टिकोण को एक नया आयाम दिया। यह शिक्षा प्रणाली आधुनिक शिक्षा प्रणाली की मागर्दर्शक साबित हुयी है। जो कि बौद्ध कालीन शिक्षा में नैतिकता, तर्क शक्ति, परीक्षा केंद्रित विधियों पर आधारित होने के साथ-साथ शिक्षा को औपचारिक शिक्षा का एक प्रमुख आयाम देने के लिए एक मील का पत्थर साबित हुई। नवीन शिक्षण विधियाँ, मूल्य, आदर्श, अनुशासन, समावेशी शिक्षा, समाज सेवा और व्यक्तिगत विकास पर केंद्रित थीं और आधुनिक शिक्षा के सफल संतुलित समाज के निर्माण पर बल देती हैं। बौद्ध शिक्षा में अहिंसा मार्ग विश्ध्व को शान्ति का मार्ग दिखा रहा है। अतः आज आवश्ध्यकता है कि हम बौद्ध कालीन मूल्ध्यों को पुनः स्थ्धापित करो।

संदर्भ सूची

1. अग्रवाल जे. सी., पी. भोला, 'शिक्षा दर्शन' शिक्षा पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
2. पाठक पी. डी., (2018), "भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएँ'', विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
3. ओड एल. के., (1986), "शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि', हिंदी ग्रंथ अकादमी, राजस्थान।
4. मीणा राजेंद्र, शर्मा चंद्रशेखर, 'जर्नल ऑफ़ एडवांस इन डेवलपमेंटल रिसर्च', वॉल्यूम 16, जनवरी-जून।

5. पाल मनीषा, “बौद्ध कालीन शिक्षा प्रणाली में स्त्री शिक्षा की स्थिति”, द रिसर्च डायलॉग, वॉल्यूम 2, जुलाई।
6. त्रिपाठी एम. (2020), “भारतीय शिक्षा प्रणाली में बौद्ध शिक्षा का योगदान”, प्रयागराज राष्ट्रीय पुस्तकालय।
7. तिवारी आर. (2018), “प्राचीन भारत में शिक्षा प्रणाली - नालंदा और तक्षशिला का योगदान”, दिल्ली ज्ञान भारती पब्लिकेशन।

नीतू गौतम (सहायक आचार्य)
शिक्षक, शिक्षा विभाग
बैकुण्ठी देवी कन्या महाविद्यालय आगरा (282001),
मोबाइल – 9720597879

दीपक गौतम (सहायक आचार्य)
शिक्षा संकाय
आर0बी0एस कॉलेज, आगरा (282002),
मोबाइल – 8929894685

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

बौद्ध धर्म और सामाजिक मूल्य : दया, अहिंसा एवं सद्भाव–एक मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण

डॉ. सुजाता चौधरी

सारांश- बौद्ध धर्म विश्व की प्रमुख दार्शनिक और नैतिक परंपराओं में से एक है। इसका उद्देश्य केवल आध्यात्मिक मुक्ति या निर्वाण की प्राप्ति तक सीमित नहीं है, बल्कि व्यक्ति के मानसिक, नैतिक और सामाजिक जीवन को बेहतर बनाना भी है। गौतम बुद्ध की शिक्षाओं में मानव दुःख, करुणा, मैत्री, अहिंसा, समानता और सामाजिक सद्भाव को विशेष महत्व दिया गया है (Rahula, 1974; Harvey, 2000)। आज के समय में जब समाज हिंसा, असहिष्णुता, मानसिक तनाव, पारिवारिक संघर्ष, आक्रामकता और सामाजिक विभाजन जैसी अनेक समस्याओं का सामना कर रहा है, तब बौद्ध मूल्यों की प्रासंगिकता और अधिक बढ़ जाती है।

इस शोध-पत्र का उद्देश्य बौद्ध धर्म में निहित दया, करुणा, अहिंसा और सद्भाव जैसे सामाजिक मूल्यों का मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से अध्ययन करना है। मनोविज्ञान के अनुसार करुणा व्यक्ति में सहानुभूति, परोपकारिता और दूसरों के साथ भावनात्मक जुड़ाव को बढ़ा सकती है (Neff, 2011)। इसी प्रकार अहिंसा आत्म-नियंत्रण, क्रोध पर नियंत्रण, भावनात्मक संतुलन और आक्रामक व्यवहार के नियमन से जुड़ी हुई है (Baron - Byrne, 2004)। सद्भाव सामाजिक विश्वास, सहयोग और विभिन्न समूहों के बीच सकारात्मक संबंधों को मजबूत करने में सहायक हो सकता है (Myers, 2013)। बौद्ध धर्म की मैत्री, ब्रह्मविहार, पंचशील, आर्य अष्टांगिक मार्ग और सम्यक स्मृति जैसी अवधारणाओं का आधुनिक सकारात्मक मनोविज्ञान, सामाजिक मनोविज्ञान और माइंडफुलनेस के अध्ययन से भी महत्वपूर्ण संबंध दिखाई देता है (Seligman - Csikszentmihalyi, 2000; Kabat-Zinn, 1994)। यह अध्ययन वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक प्रकृति का है। उपलब्ध बौद्ध साहित्य तथा मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि दया, अहिंसा और सद्भाव व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य, नैतिक विकास और सामाजिक समरसता में महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं। हालांकि जटिल सामाजिक समस्याओं का समाधान केवल व्यक्तिगत नैतिकता से संभव नहीं है, फिर भी बौद्ध मूल्य अधिक संवेदनशील, शांतिपूर्ण और न्यायपूर्ण समाज के निर्माण के लिए एक मजबूत मनोवैज्ञानिक और नैतिक आधार प्रदान करते हैं।

मुख्य शब्द : बौद्ध धर्म, सामाजिक मूल्य, दया, करुणा, अहिंसा, सद्भाव, मैत्री, मनोविज्ञान, माइंडफुलनेस।

प्रस्तावना- मानव सभ्यता का विकास केवल विज्ञान, तकनीक और आर्थिक प्रगति के आधार पर नहीं हुआ है। किसी भी समाज की वास्तविक उन्नति इस बात पर भी निर्भर करती है कि उसके लोग एक-दूसरे के साथ कैसा व्यवहार करते हैं। दया, करुणा, सहयोग, समानता, न्याय, अहिंसा और सद्भाव जैसे मूल्य समाज को मानवीय और व्यवस्थित बनाते हैं। यदि किसी समाज में आर्थिक विकास तो हो, लेकिन लोगों के बीच घृणा, हिंसा और असहिष्णुता बढ़ती जाए, तो उस विकास को पूर्ण नहीं कहा जा सकता। सामाजिक मनोविज्ञान भी इस बात को स्वीकार करता है कि व्यक्ति का व्यवहार केवल उसकी व्यक्तिगत विशेषताओं से निर्धारित नहीं होता। उसके व्यवहार पर सामाजिक संबंधों, समूहों, सामाजिक मान्यताओं और परिस्थितियों का भी प्रभाव पड़ता है (Baron & Byrne, 2004; Myers, 2013)। इसलिए समाज में शांति और सद्भाव

स्थापित करने के लिए व्यक्ति के विचारों और भावनाओं के साथ-साथ सामाजिक मूल्यों पर भी ध्यान देना आवश्यक है।

वर्तमान में तकनीकी विकास ने जीवन को सुविधाजनक बनाया है, लेकिन इसके साथ मानसिक तनाव, सामाजिक अकेलापन, आक्रामकता, पारिवारिक संघर्ष और असहिष्णुता जैसी समस्याएँ भी बढ़ी हैं। डिजिटल माध्यमों के विस्तार ने संवाद के नए अवसर दिए हैं, लेकिन घृणापूर्ण भाषा, ट्रोलिंग और साइबर बुलिंग जैसी चुनौतियाँ भी सामने आई हैं। ऐसे समय में उन विचारों और मूल्यों की आवश्यकता महसूस होती है जो व्यक्ति के भीतर शांति, आत्म-जागरूकता और दूसरों के प्रति संवेदनशीलता विकसित कर सकें। बौद्ध धर्म इस संदर्भ में विशेष महत्व रखता है। गौतम बुद्ध ने लगभग ढाई हजार वर्ष पहले मानव जीवन में दुःख की समस्या का विश्लेषण किया और उसके कारणों तथा समाधान का मार्ग बताया। बुद्ध का चिंतन केवल धार्मिक विश्वास पर आधारित नहीं था; इसमें अनुभव, आत्मनिरीक्षण, नैतिक आचरण और मानसिक अनुशासन को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है (Rahula, 1974; Bodhi, 2005)। उन्होंने लोभ, द्वेष और मोह जैसी मानसिक प्रवृत्तियों को मानव दुःख के प्रमुख कारणों में माना और इनके स्थान पर करुणा, मैत्री, प्रज्ञा और सम्यक आचरण के विकास पर बल दिया (Harvey, 2000)। बौद्ध दृष्टिकोण में व्यक्ति और समाज को अलग-अलग नहीं देखा जा सकता। व्यक्ति के भीतर उत्पन्न क्रोध, घृणा, ईर्ष्या और हिंसा का प्रभाव उसके परिवार और समाज पर पड़ता है। उसी प्रकार, जब व्यक्ति के भीतर करुणा, संवेदनशीलता और मैत्री विकसित होती है, तो उसके व्यवहार में भी सकारात्मक परिवर्तन आने की संभावना बढ़ती है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से बौद्ध शिक्षाएँ मानव व्यवहार, विचार, भावना और व्यक्तित्व विकास के कई पक्षों से जुड़ी हुई हैं। करुणा सहानुभूति और परोपकारिता को बढ़ावा देती है, अहिंसा आत्म-नियंत्रण और भावनात्मक संतुलन से जुड़ती है, जबकि सद्भाव विश्वास, सहयोग और सकारात्मक सामाजिक संबंधों को मजबूत करता है (Neff, 2011; Myers, 2013)। इसलिए बौद्ध धर्म के सामाजिक मूल्यों का अध्ययन केवल धार्मिक या दार्शनिक दृष्टि से ही नहीं, बल्कि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है।

अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व- आज भारतीय तथा वैश्विक समाज जाति, धर्म, भाषा और संस्कृति के आधार पर विभाजन, लैंगिक असमानता, हिंसा और बढ़ते मानसिक तनाव जैसी समस्याओं का सामना कर रहा है। इन समस्याओं का समाधान केवल कानून और संस्थागत व्यवस्थाओं के माध्यम से संभव नहीं है। समाज में मानवीय, नैतिक और सामाजिक मूल्यों का विकास भी आवश्यक है। शांति, सहअस्तित्व और सामाजिक उत्तरदायित्व के निर्माण में मूल्य-आधारित शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका मानी गई है (UNESCO, 2015)। बौद्ध धर्म का योगदान इस दृष्टि से विशेष है क्योंकि यह सामाजिक परिवर्तन की शुरुआत व्यक्ति के मानसिक और नैतिक परिवर्तन से करता है। बुद्ध ने किसी व्यक्ति की श्रेष्ठता को उसके जन्म या जाति से नहीं, बल्कि उसके कर्म और आचरण से जोड़कर देखा (Ambedkar, 1957; Rahula, 1974)। यह विचार समानता और मानव गरिमा की भावना को मजबूत करता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी करुणा और मैत्री जैसी भावनाएँ सकारात्मक सामाजिक संबंधों को बढ़ा सकती हैं। इसके विपरीत, लगातार क्रोध, घृणा और आक्रामकता व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य और सामाजिक संबंधों दोनों को नुकसान पहुँचा सकती हैं (Myers, 2013; Neff, 2011)। इसलिए बौद्ध शिक्षाओं का अध्ययन मानसिक स्वास्थ्य, व्यक्तित्व विकास, सामाजिक व्यवहार और शांति शिक्षा के क्षेत्र में उपयोगी हो सकता है।

अध्ययन के उद्देश्य- इस शोध-पत्र के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

1. बौद्ध धर्म में सामाजिक मूल्यों की अवधारणा को समझना।
2. दया और करुणा के बौद्ध सिद्धांतों का अध्ययन करना।
3. अहिंसा की सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत करना।
4. सद्भाव और मैत्री की भूमिका को सामाजिक समरसता के संदर्भ में समझना।
5. बौद्ध सिद्धांतों और आधुनिक मनोवैज्ञानिक अवधारणाओं के संबंध का विश्लेषण करना।
6. आधुनिक समाज में बौद्ध सामाजिक मूल्यों की प्रासंगिकता पर विचार करना।
7. मानसिक स्वास्थ्य और सामाजिक शांति के निर्माण में बौद्ध चिंतन की भूमिका को स्पष्ट करना।

शोध-पद्धति- प्रस्तुत शोध-पत्र वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक शोध-पद्धति पर आधारित है। यह एक वैचारिक और साहित्य-आधारित अध्ययन है। इसमें बौद्ध दर्शन, पालि साहित्य, धम्मपद, सुत्त परंपरा और बौद्ध नैतिक दर्शन से संबंधित सामग्री का अध्ययन किया गया है। इसके साथ ही सामाजिक मनोविज्ञान, सकारात्मक मनोविज्ञान, करुणा, आत्म-करुणा और माइंडफुलनेस से संबंधित प्रमुख मनोवैज्ञानिक साहित्य का भी अध्ययन किया गया है (Bodhi, 2005, Harvey, 2000, Seligman & Csikszentmihalyi, 2000)। इन स्रोतों के आधार पर बौद्ध धर्म के प्रमुख सामाजिक मूल्यों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

परिणाम और चर्चा

बौद्ध धर्म का दार्शनिक आधार

गौतम बुद्ध ने मानव जीवन में दुःख की वास्तविकता को स्वीकार किया, लेकिन उनका उद्देश्य जीवन के प्रति निराशावादी दृष्टिकोण प्रस्तुत करना नहीं था। उन्होंने दुःख के उसके कारण और उससे मुक्ति के मार्ग की भी व्याख्या की (Rahula, 1974)। बौद्ध दर्शन का आधार चार आर्य सत्य हैं–

1. दुःख
2. दुःख समुदय
3. दुःख निरोध
4. दुःख निरोधगामिनी प्रतिपदा

बुद्ध ने बताया कि दुःख की उत्पत्ति तृष्णा, आसक्ति और अज्ञान जैसी स्थितियों से जुड़ी है। जब व्यक्ति इन मानसिक प्रवृत्तियों को समझता है और उन पर नियंत्रण विकसित करता है, तब दुःख से मुक्ति की दिशा में आगे बढ़ सकता है (Bodhi, 2005; Rahula, 1974)। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से व्यक्ति की पीड़ा केवल बाहरी परिस्थितियों से नहीं, बल्कि उन परिस्थितियों की उसकी व्याख्या और प्रतिक्रिया से भी प्रभावित होती है। बौद्ध चिंतन व्यक्ति को अपने विचारों और भावनाओं के प्रति सजग बनने की प्रेरणा देता है। इस संदर्भ में सम्यक स्मृति और आत्म-जागरूकता का संबंध आधुनिक माइंडफुलनेस से दिखाई देता है (Kabat-Zinn, 1994)।

1. सामाजिक मूल्य की अवधारणा- सामाजिक मूल्य वे आदर्श और सिद्धांत हैं जो व्यक्ति को यह समझने में सहायता करते हैं कि समाज में किस प्रकार का व्यवहार उचित और वांछनीय है। ये मूल्य व्यक्ति के चरित्र, निर्णय और सामाजिक संबंधों को प्रभावित करते हैं (Myers, 2013)। दया, करुणा, सहयोग, सहिष्णुता, समानता, न्याय, अहिंसा, सत्य, सद्भाव और परोपकार प्रमुख सामाजिक मूल्य हैं। ये केवल व्यक्तिगत गुण नहीं हैं, बल्कि स्वस्थ समाज के निर्माण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। बौद्ध धर्म में नैतिक चिंतन में विचार, चेतना और कर्म के संबंध को महत्वपूर्ण माना गया है (Harvey, 2000)। इसलिए नैतिक जीवन के लिए केवल व्यवहार में परिवर्तन पर्याप्त नहीं है; व्यक्ति के भीतर भी सकारात्मक परिवर्तन आवश्यक है।

2. दया एवं करुणा- सामाजिक और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण- दया और करुणा मानवीय संवेदनशीलता के महत्वपूर्ण रूप हैं। करुणा केवल दूसरे के दुःख को देखने या समझने तक सीमित नहीं है, बल्कि उस दुःख को कम करने की प्रेरणा भी देती है। बौद्ध धर्म में करुणा को नैतिक और सामाजिक जीवन का महत्वपूर्ण आधार माना गया है (Harvey, 2000; Keown, 2005)। बौद्ध दृष्टिकोण के अनुसार सभी प्राणी सुख चाहते हैं और दुःख से बचना चाहते हैं। इसलिए दूसरों के दुःख के प्रति संवेदनशील होना नैतिक जीवन का एक आवश्यक आधार है।

ब्रह्मविहार और करुणा

बौद्ध धर्म में चार ब्रह्मविहारों का उल्लेख मिलता है–

मैत्री (Metta) : सभी प्राणियों के प्रति प्रेमपूर्ण शुभेच्छा।

करुणा (Karuna) : दूसरों के दुःख को कम करने की इच्छा।

मुदिता (Mudita) : दूसरों की खुशी और सफलता में प्रसन्न होना।

उपेक्षा (Upekkha) : सुख-दुःख की परिस्थितियों में मानसिक संतुलन और समभाव बनाए रखना।

ये चारों गुण व्यक्ति के भावनात्मक और सामाजिक विकास के लिए महत्वपूर्ण हैं (Bodhi, 2005; Harvey, 2000)। मैत्री व्यक्ति को दूसरों के प्रति सकारात्मक बनाती है, करुणा पीड़ा के प्रति संवेदनशीलता पैदा करती है, मुदिता ईर्ष्या को कम करने में सहायक हो सकती है और उपेक्षा मानसिक संतुलन बनाए रखने में मदद करती है। आधुनिक मनोविज्ञान में करुणा को सहानुभूति, परोपकारिता और सामाजिक हितकारी व्यवहार से संबंधित माना जाता है। जब व्यक्ति दूसरे की पीड़ा को समझता है, तो उसके भीतर सहायता और सहयोग की प्रेरणा उत्पन्न हो सकती है (Neff, 2011)। करुणाशील व्यक्ति केवल अपने हित पर ध्यान केंद्रित नहीं करता, बल्कि दूसरों की आवश्यकताओं और भावनाओं को भी समझने का प्रयास करता है। इससे सहयोग और सामाजिक समर्थन की संभावना बढ़ सकती है। सकारात्मक संबंधों को मनोवैज्ञानिक कल्याण का महत्वपूर्ण पक्ष माना जाता है (Seligman - Csikszentmihalyi, 2000) करुणा का अर्थ केवल दूसरों के प्रति दयालु होना नहीं है। व्यक्ति को अपने प्रति भी संतुलित और मानवीय दृष्टिकोण रखना आवश्यक है। आधुनिक मनोविज्ञान में इसे आत्म-करुणा (Self-compassion) कहा जाता है।

आत्म-करुणा का अर्थ है कि व्यक्ति अपनी असफलताओं और कमियों के कारण स्वयं से घृणा न करे, बल्कि अपनी सीमाओं को स्वीकार करते हुए सुधार का प्रयास करे (Neff, 2011)। इसमें शामिल है–

अपनी सीमाओं को स्वीकार करना।

असफलता पर अत्यधिक आत्म-दोष से बचना।

स्वयं के प्रति कठोर होने के बजाय समझदारीपूर्ण दृष्टिकोण रखना।

कठिन परिस्थितियों में भावनात्मक संतुलन बनाए रखना।

बौद्ध करुणा और आधुनिक आत्म-करुणा में पीड़ा के प्रति संवेदनशीलता और स्वीकारात्मक दृष्टिकोण जैसी महत्वपूर्ण समानताएँ दिखाई देती हैं।

3. अहिंसा : व्यवहार और मन की शांति- अहिंसा बौद्ध नैतिकता का एक प्रमुख मूल्य है। पंचशील का पहला सिद्धांत प्राणियों को हानि न पहुँचाने पर बल देता है। पंचशील का पहला सिद्धांत प्राणियों की हत्या से विरत रहने पर बल देता है (Harvey, 2000)। किसी व्यक्ति या प्राणी को जानबूझकर हानि पहुँचाना हिंसा का प्रत्यक्ष रूप है। बौद्ध धर्म जीवन के प्रति सम्मान और दूसरों को अनावश्यक पीड़ा न देने पर बल देता है (Keown, 2005)। बौद्ध दृष्टिकोण में अहिंसा केवल शारीरिक हिंसा से बचना नहीं है, बल्कि विचार, वाणी और कर्म में अहानिकरता विकसित करना भी है। आर्य अष्टांगिक मार्ग में सम्यक वाणी का सिद्धांत सत्यनिष्ठ, जिम्मेदार और अहानिकर संवाद पर बल देता है (Rahula, 1974)। शारीरिक हिंसा के अतिरिक्त कटु भाषा, अपमान, झूठ और दूसरों को मानसिक पीड़ा पहुँचाने वाले व्यवहार भी सामाजिक संबंधों को नुकसान पहुँचाते हैं। आर्य अष्टांगिक मार्ग का सम्यक वाणी सिद्धांत जिम्मेदार, सत्यनिष्ठ और अहिंसक संवाद पर बल देता है।

अहिंसा और आक्रामकता का मनोवैज्ञानिक संबंध, आक्रामकता का विकास केवल एक कारण से नहीं होता। इसमें जैविक, पारिवारिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और संज्ञानात्मक कारकों की भूमिका हो सकती है (Baron - Byrne, 2004)। बौद्ध चिंतन क्रोध और द्वेष जैसी मानसिक अवस्थाओं को समझने और नियंत्रित करने पर बल देता है। इस प्रकार अहिंसा केवल बाहरी व्यवहार का नियम नहीं, बल्कि व्यक्ति के आंतरिक मानसिक विकास की प्रक्रिया भी है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अहिंसा आत्म-नियंत्रण, धैर्य, क्षमा और भावनात्मक नियमन से संबंधित है। क्रोध और द्वेष की अवस्था में व्यक्ति बिना सोचे-समझे आक्रामक प्रतिक्रिया दे सकता है। जब व्यक्ति उत्तेजक परिस्थितियों में तुरंत प्रतिक्रिया देने के बजाय अपनी भावनाओं को पहचानकर सोच-समझकर प्रतिक्रिया करता है, तो आक्रामक व्यवहार की संभावना कम हो सकती है। सम्यक स्मृति को आत्म-जागरूकता और भावनात्मक नियमन से जोड़कर समझा जा सकता है (Kabat-Zinn, 1994)।

4. सद्भाव और मैत्री- सद्भाव का अर्थ केवल संघर्ष का न होना नहीं है। वास्तविक सद्भाव में विश्वास, सम्मान, सहयोग, सहिष्णुता और पारस्परिक समझ शामिल होती है। किसी समाज में लोगों के बीच केवल संघर्ष न होना पर्याप्त नहीं है; उनके बीच सकारात्मक संबंध और सहयोग की भावना भी होनी चाहिए।

सामाजिक मनोविज्ञान में विश्वास और सहयोग को स्वस्थ सामाजिक संबंधों और समूहों के प्रभावी कार्यकरण के लिए महत्वपूर्ण माना गया है (Myers, 2013)। बौद्ध धर्म में मैत्री का अर्थ सभी प्राणियों के प्रति शुभेच्छा रखना है। यह व्यक्ति को संकीर्ण स्वार्थ और शत्रुता से ऊपर उठकर व्यापक मानवीय दृष्टिकोण अपनाने की प्रेरणा देती है (Bodhi, 2005)। मैत्री व्यक्ति को संकीर्ण स्वार्थ, शत्रुता और घृणा से ऊपर उठकर व्यापक मानवीय दृष्टिकोण अपनाने की प्रेरणा देती है।

सामाजिक मनोविज्ञान और सद्भाव- सामाजिक मनोविज्ञान बताता है कि पूर्वाग्रह, रूढ़िवादिता और भेदभाव समूहों के बीच दूरी और संघर्ष पैदा कर सकते हैं (Myers, 2013)। बौद्ध मैत्री सामाजिक विश्वास, सहयोग, सहिष्णुता और सामुदायिक जुड़ाव को प्रोत्साहन मिल सकता है।मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इस प्रकार की भावना दूसरों के प्रति अधिक स्वीकारात्मक दृष्टिकोण और सामाजिक जुड़ाव से संबंधित हो सकती है (Neff, 2011)। हालांकि यह मानना उचित नहीं होगा कि केवल व्यक्तिगत सद्भावना से संरचनात्मक भेदभाव समाप्त हो जाएगा। सामाजिक असमानता के समाधान के लिए शिक्षा, कानून और संस्थागत सुधार भी आवश्यक हैं। फिर भी व्यक्ति के दृष्टिकोण में परिवर्तन सामाजिक संबंधों को बेहतर बनाने की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

5. बौद्ध सिद्धांतों और आधुनिक मनोवैज्ञानिक अवधारणाओं के संबंध

पंचशील और व्यक्तित्व विकास

पंचशील बौद्ध नैतिक जीवन के महत्वपूर्ण सिद्धांत हैं–

1. प्राणियों की हत्या से बचना।
2. जो दिया न गया हो उसे न लेना।
3. अनुचित आचरण से बचना।
4. असत्य भाषण से बचना।
5. सजगता को प्रभावित करने वाले मादक पदार्थों से बचना।

इन सिद्धांतों का उद्देश्य व्यक्ति में नैतिक अनुशासन और जिम्मेदार व्यवहार का विकास करना है (Harvey, 2000; Keown, 2005)। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से पंचशील को आत्म-नियंत्रण और व्यवहारिक उत्तरदायित्व से जोड़ा जा सकता है। सत्यनिष्ठा सामाजिक विश्वास को मजबूत करती है। चोरी से बचना सुरक्षा और पारस्परिक विश्वास बढ़ाता है। जिम्मेदार संबंध सम्मान और उत्तरदायित्व को प्रोत्साहित करते हैं, जबकि नशीले पदार्थों से बचना सजगता और निर्णय क्षमता को सुरक्षित रखने में सहायक हो सकता है। इस प्रकार पंचशील को केवल धार्मिक नियम नहीं, बल्कि जिम्मेदार सामाजिक व्यवहार के मार्गदर्शक सिद्धांतों के रूप में भी समझा जा सकता है।

आर्य अष्टांगिक मार्ग और मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य- आर्य अष्टांगिक मार्ग बुद्ध द्वारा प्रस्तुत एक व्यापक जीवन-पद्धति है। इसके आठ अंग हैं– सम्यक दृष्टि, सम्यक संकल्प, सम्यक वाणी, सम्यक कर्म, सम्यक आजीविका, सम्यक प्रयास, सम्यक स्मृति और सम्यक समाधि। (तैंनसं, 1974; ठवकीप, 2005)। यह मार्ग व्यक्ति के विचार, भावना और व्यवहार के संतुलित विकास का व्यापक ढाँचा प्रस्तुत करता है। सम्यक दृष्टि परिस्थितियों की वास्तविक समझ से जुड़ी है। सम्यक संकल्प सकारात्मक और नैतिक उद्देश्यों पर बल देता है। सम्यक वाणी जिम्मेदार संवाद को प्रोत्साहित करती है, जबकि सम्यक कर्म नैतिक उत्तरदायित्व से संबंधित है। सम्यक प्रयास नकारात्मक मानसिक प्रवृत्तियों को कम करने और सकारात्मक गुणों को विकसित करने का प्रयास है। सम्यक स्मृति आत्म-जागरूकता तथा वर्तमान अनुभव के प्रति सजगता से जुड़ी है। सम्यक समाधि ध्यान और मानसिक एकाग्रता के विकास पर बल देती है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह मार्ग आत्म-नियंत्रण, भावनात्मक

संतुलन, सजगता और जिम्मेदार व्यवहार के विकास में उपयोगी वैचारिक आधार प्रदान करता है।

सम्यक स्मृति और माइंडफुलनेस- सम्यक स्मृति बौद्ध धर्म की महत्वपूर्ण अवधारणाओं में से एक है। इसका संबंध अपने वर्तमान अनुभवों, विचारों, भावनाओं और शारीरिक अनुभूतियों के प्रति सजग रहने से है (Bodhi, 2005)।

आधुनिक मनोविज्ञान में माइंडफुलनेस का उपयोग सजगता, ध्यान और भावनात्मक प्रक्रियाओं को समझने तथा विकसित करने के लिए किया जाता है। आधुनिक माइंडफुलनेस-आधारित कार्यक्रमों को बौद्ध ध्यान परंपराओं से प्रेरणा मिली है, हालांकि वर्तमान मनोवैज्ञानिक और चिकित्सीय संदर्भों में इन्हें वैज्ञानिक और गैर-सांप्रदायिक ढाँचों में भी विकसित किया गया है (Kabat-Zinn, 1994)।

बौद्ध धर्म और सकारात्मक मनोविज्ञान- सकारात्मक मनोविज्ञान मानव की शक्तियों, सद्गुणों, सकारात्मक अनुभवों और जीवन में उत्कर्ष का अध्ययन करता है। इसका उद्देश्य केवल मानसिक समस्याओं और विकारों का अध्ययन करना नहीं है, बल्कि यह समझना भी है कि व्यक्ति बेहतर और सार्थक जीवन कैसे जी सकता है (Seligman - Csikszentmihalyi, 2000)। बौद्ध धर्म में भी करुणा, मैत्री, प्रज्ञा, आत्म-अनुशासन और मानसिक संतुलन जैसे गुणों के विकास को महत्व दिया गया है। दोनों के बीच कुछ वैचारिक समानताएँ निम्न प्रकार से देखी जा सकती हैं—

बौद्ध अवधारणा	**मनोवैज्ञानिक समकक्ष**
करुणा	Compassion
मैत्री	Positive social connectedness
मुदिता	दूसरों के सुख में सकारात्मक सहभागिता
उपेक्षा	Emotional balance / Equanimity
सम्यक स्मृति	Mindfulness
सम्यक प्रयास	Self-regulation

यह तुलना यह नहीं दर्शाती कि दोनों की पद्धतियाँ और उद्देश्य अलग हैं। फिर भी दोनों के बीच कई ऐसे बिंदु हैं जहाँ सार्थक संवाद संभव है (Seligman - Csikszentmihalyi, 2000, Kabat-Zinn, 1994)।

सामाजिक पहचान, पूर्वाग्रह और बौद्ध दृष्टिकोण- व्यक्ति अपनी पहचान अनेक सामाजिक समूहों के माध्यम से बनाता है। धर्म, जाति, भाषा, संस्कृति और अन्य समूह व्यक्ति की सामाजिक पहचान का हिस्सा बन सकते हैं। कई बार यही समूह पहचान 'हम' और 'वे' जैसी मानसिकता को जन्म देती है, जिससे पूर्वाग्रह और भेदभाव विकसित हो सकते हैं (Myers, 2013)। बौद्ध धर्म सभी प्राणियों के प्रति करुणा और मैत्री की भावना विकसित करने पर बल देता है। यह व्यक्ति को संकीर्ण स्वार्थ और सीमित पहचान से ऊपर उठकर व्यापक मानवीय दृष्टिकोण अपनाने की प्रेरणा देता है (Harvey, 2000)। फिर भी असमानता, अन्याय जैसी समस्याओं को केवल व्यक्तिगत सद्भाव से हल नहीं किया जा सकता। इनके लिए सामाजिक न्याय, शिक्षा, कानूनी संरक्षण और संस्थागत सुधारों की आवश्यकता होती है। इसके बावजूद बौद्ध मैत्री व्यक्ति के भीतर दूसरों के प्रति अधिक मानवीय दृष्टिकोण विकसित करने में उपयोगी नैतिक आधार प्रदान कर सकती है।

6. आधुनिक समाज में बौद्ध सामाजिक मूल्यों की प्रासंगिकता- परिवार, व्यक्ति के भावनात्मक और सामाजिक विकास की पहली महत्वपूर्ण संस्था है। यदि परिवार में करुणा, सम्मान और अहिंसक संवाद का वातावरण हो, तो स्वस्थ संबंध विकसित होने की संभावना बढ़ती है। बच्चों के प्रति संवेदनशील और सम्मानजनक व्यवहार उनके भीतर सहानुभूति, सहयोग और सामाजिक जिम्मेदारी के विकास में सहायक हो सकता है (Myers, 2013)। शिक्षा, विद्यालयों में सहानुभूति, अहिंसा, सम्मान और सहयोग पर आधारित मूल्य शिक्षा विद्यार्थियों में सकारात्मक सामाजिक व्यवहार को प्रोत्साहित कर सकती है। विद्यालयी बुलिंग और हिंसा जैसी समस्याओं के संदर्भ में संवेदनशील संवाद और दूसरों के प्रति सम्मान का विशेष महत्व है।

शांति और मूल्य-आधारित शिक्षा विद्यार्थियों में सहअस्तित्व, पारस्परिक सम्मान और जिम्मेदार नागरिकता की भावना विकसित करने में सहायक हो सकती है (UNESCO, 2015)। समुदाय, स्तर पर मैत्री, सहयोग और धार्मिक सहिष्णुता सामाजिक सद्भाव को मजबूत कर सकते हैं। विभिन्न समूहों के बीच संवाद और पारस्परिक सम्मान सामाजिक विश्वास को बढ़ाने और संघर्ष की संभावना को कम करने में सहायक हो सकते हैं (Myers, 2013)। डिजिटल समाज में सम्यक वाणी का सिद्धांत अत्यंत प्रासंगिक है। सोशल मीडिया पर ट्रोलिंग, अपमानजनक भाषा और साइबर बुलिंग के बढ़ते संदर्भ में जिम्मेदार, सत्यनिष्ठ और अहिंसक संवाद आवश्यक है। विविधतापूर्ण समाज में मैत्री, सहिष्णुता और पारस्परिक सम्मान सामाजिक समरसता के महत्वपूर्ण आधार हैं। विविध धार्मिक, भाषाई और सांस्कृतिक समूहों के बीच संवाद और सहयोग सामाजिक शांति को मजबूत कर सकते हैं।

7. आधुनिक समाज में प्रासंगिकता- आज के समाज में बौद्ध मूल्यों की उपयोगिता कई क्षेत्रों में देखी जा सकती है। मानव दुखों को समझने और समाधान के लिए तर्कसंगत और अनुभव-आधारित ढांचा प्रदान करता है। यह शोध पत्र आधुनिक चुनौतियों जैसे मानसिक स्वास्थ्य संकट, पर्यावरणीय क्षरण और सामाजिक असमानता में बौद्ध दर्शन की प्रासंगिकता का विश्लेषण करता है। चार आर्य सत्य दुख की प्रकृति और उसके निरोध को समझाते हैं, जबकि अष्टांगिक मार्ग नैतिक मार्गदर्शन प्रदान करता है। अनित्यता और प्रतीत्यसमुत्पाद पर्यावरणीय स्थिरता से जुड़ते हैं, और माइंडफुलनेस मानसिक स्वास्थ्य के लिए प्रभावी है। करुणा और अहिंसा सामाजिक सौहार्द को बढ़ावा देते हैं, जिससे बौद्ध दर्शन आधुनिक विश्व में व्यक्तिगत और सामाजिक कल्याण के लिए प्रासंगिक है Poonam, - Kumar, P. (2025)।

मानसिक स्वास्थ्य; करुणा, आत्म-करुणा और सजगता व्यक्ति को कठिन परिस्थितियों के प्रति अधिक संतुलित और स्वीकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करने में सहायता कर सकती हैं (Neff, 2011, Kabat-Zinn, 1994)।

विद्यालयी हिंसा; अहिंसा, सहानुभूति और सम्मान पर आधारित शिक्षा विद्यालयों में सकारात्मक व्यवहार और सहयोग को प्रोत्साहित कर सकती है। मूल्य एवं शांति शिक्षा जिम्मेदार सामाजिक व्यवहार के विकास में महत्वपूर्ण हो सकती है (UNESCO, 2015)।

कार्यस्थल; सम्मानजनक संवाद, सम्यक वाणी और दूसरों के प्रति संवेदनशील नेतृत्व कार्यस्थल पर विश्वास और सहयोग को बढ़ा सकते हैं।

डिजिटल समाज; डिजिटल युग में जिम्मेदार संवाद, सत्यनिष्ठा और अहिंसक भाषा की आवश्यकता बहुत अधिक है। बौद्ध सम्यक वाणी का सिद्धांत सोशल मीडिया और डिजिटल संचार के लिए एक उपयोगी नैतिक दृष्टिकोण प्रदान कर सकता है।

सामाजिक समरसता; भारत जैसे विविधतापूर्ण समाज में मैत्री, सहिष्णुता और सद्भाव लोकतांत्रिक सहअस्तित्व के महत्वपूर्ण आधार हैं। जाति, धर्म, भाषा और संस्कृति की विविधता के बीच पारस्परिक सम्मान सामाजिक शांति को मजबूत कर सकता है।

आलोचनात्मक विमर्श- बौद्ध धर्म दया, अहिंसा और सद्भाव का प्रभावशाली संदेश देता है, लेकिन आधुनिक सामाजिक समस्याओं की जटिलता को ध्यान में रखना आवश्यक है। गरीबी, आर्थिक असमानता, लैंगिक हिंसा, जातीय भेदभाव और राजनीतिक संघर्ष जैसी समस्याएँ केवल व्यक्तिगत नैतिक परिवर्तन से समाप्त नहीं हो सकतीं। इनके समाधान के लिए सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्तर पर भी व्यापक प्रयास आवश्यक हैं। इसलिए बौद्ध मूल्यों को सामाजिक न्याय, मानवाधिकार, शिक्षा, सार्वजनिक नीति और संस्थागत सुधारों से जोड़कर देखना अधिक उचित होगा। जहाँ सामाजिक विकास और सांस्कृतिक संकट साथ-साथ चल रहे हैं, बुद्ध का संदेश केवल आध्यात्मिक नहीं, बल्कि सामाजिक समाधान का भी मार्ग है। उनका जीवन इस बात का प्रमाण है कि भीतर की शुद्धता और बाहरी न्याय, दोनों साथ मिलकर ही एक संतुलित समाज की रचना कर सकते हैं। Monoj Kumar (2025)। करुणा का अर्थ निष्क्रिय रहना नहीं है। वास्तविक करुणा व्यक्ति को पीड़ित की सहायता करने और सामाजिक समस्याओं के प्रति संवेदनशील बनने की प्रेरणा दे सकती है। इसी प्रकार अहिंसा

का अर्थ अन्याय को स्वीकार कर लेना नहीं है। इसका अर्थ हिंसक प्रतिशोध के स्थान पर नैतिक और रचनात्मक उपायों के माध्यम से समस्या का समाधान खोजने का प्रयास करना है। इस दृष्टि से बौद्ध नैतिकता व्यक्तिगत शांति के साथ-साथ सक्रिय सामाजिक उत्तरदायित्व का भी आधार बन सकती है।

निष्कर्ष- इस अध्ययन से स्पष्ट होता है कि बौद्ध धर्म केवल आध्यात्मिक साधना की परंपरा नहीं है, बल्कि यह मानवीय और सामाजिक मूल्यों की एक समृद्ध दार्शनिक व्यवस्था भी प्रस्तुत करता है। दया, करुणा, अहिंसा और सद्भाव जैसे मूल्य व्यक्ति के मानसिक विकास और समाज की नैतिक उन्नति—दोनों के लिए महत्वपूर्ण हैं (Rahula, 1974, Harvey, 2000)। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से करुणा सहानुभूति, परोपकारिता और सकारात्मक सामाजिक व्यवहार को बढ़ावा देती है। अहिंसा आत्म-नियंत्रण और भावनात्मक नियमन के लिए एक महत्वपूर्ण नैतिक आधार प्रदान करती है। सद्भाव विश्वास, सहयोग और सकारात्मक अंतर्वैयक्तिक संबंधों को मजबूत कर सकता है। सम्यक स्मृति व्यक्ति में आत्म-जागरूकता और भावनात्मक संतुलन विकसित करने से जुड़ी हुई है (Neff, 2011; Kabat&Zinn, 1994)। पंचशील व्यक्ति में नैतिक अनुशासन और जिम्मेदारी को प्रोत्साहित करता है, जबकि आर्य अष्टांगिक मार्ग विचार, भावना और व्यवहार के संतुलित विकास का मार्ग प्रस्तुत करता है। ब्रह्मविहार मैत्री, करुणा, दूसरों के सुख में प्रसन्नता और मानसिक समभाव जैसे गुणों के विकास पर बल देते हैं (Bodhi, 2005, Harvey, 2000)।

आज जब समाज हिंसा, असहिष्णुता, सामाजिक विभाजन, साइबर आक्रामकता और मानसिक तनाव जैसी चुनौतियों से जूझ रहा है, तब बौद्ध सामाजिक मूल्यों की उपयोगिता और अधिक स्पष्ट हो जाती है। परिवार, शिक्षा, समुदाय और कार्यस्थल में इन मूल्यों को व्यवहारिक रूप से अपनाने से अधिक संवेदनशील और सहयोगात्मक वातावरण विकसित किया जा सकता है।

अंततः कहा जा सकता है कि करुणा, अहिंसा और सद्भाव केवल आदर्शवादी नैतिक विचार नहीं हैं। इनमें स्वस्थ व्यक्तित्व, सकारात्मक सामाजिक संबंध और शांतिपूर्ण समाज के निर्माण की महत्वपूर्ण संभावनाएँ निहित हैं। बौद्ध चिंतन और आधुनिक मनोविज्ञान के बीच संवाद हमें यह समझने में सहायता करता है कि व्यक्ति के भीतर विकसित होने वाले विचार और भावनाएँ व्यापक सामाजिक जीवन को भी प्रभावित करती हैं। इसलिए एक अधिक मानवीय और शांतिपूर्ण समाज के निर्माण के लिए आंतरिक मानसिक विकास और बाहरी सामाजिक परिवर्तन—दोनों की आवश्यकता है।

संदर्भ सूची

Ambedkar, B. R. (1957). The Buddha and His Dhamma. Posthumous Publications.

Baron, R. A., - Byrne, D. (2004). Social Psychology. Pearson Education.

Bodhi, B. (2005). In the Buddha's Words: An Anthology of Discourses from the Pali Canon. Wisdom Publications.

Harvey, P. (2000). An Introduction to Buddhist Ethics: Foundations, Values and Issues. Cambridge University Press.

Kabat-Zinn, J. (1994). Wherever You Go, There You Are: Mindfulness Meditation in Everyday Life. Hyperion.

Keown, D. (2005). Buddhist Ethics: A Very Short Introduction. Oxford University Press.

Myers, D. G. (2013). Social Psychology. McGraw-Hill.

Neff, K. D. (2011). Self-Compassion: The Proven Power of Being Kind to Yourself. William Morrow.

Neff, K. D. (2011). Self-Compassion, Self Esteem `and Well- Being. Social and Personality Psychology Compass, 5(1), 1-12

Poonam, - Kumar, P. (2025). Buddhist Philosophy and Its Relevance in the Present Times: cq) n'kZu vkSj orZeku esa mldh izklafxdrk. RESEARCH HUB International Multidisciplinary Research Journal , 12(5), 102-105.

https://doi.org/10.53573/rhimrj.2025.v12n5.012
Rahula, W. (1974). What the Buddha Taught. Grove Press.
Sah, M.K. (2025) : बुद्ध और समाज सुधार : तत्कालीन भारतीय समाज पर प्रभाव, Siddant's International Journal of Advanced Research Arts & Humanities, 2(5), 93-105, ISSN: 2584-2692, 2025-
Seligman, M. E. P., - Csikszentmihalyi, M. (2000). Positive psychology: An introduction. American Psychologist, 55(1), 5–13.
Thapar, R. (1997). Asoka and the Decline of the Mauryas. Oxford University Press.
UNESCO. (2015). Global Citizenship Education: Topics and Learning Objectives. UNESCO.

Assistant Professor and Head of Psychology Department
HRIT University Ghaziabad (201003)

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

कंब रामायण में युद्ध, प्रकृति और भावनाओं का चित्रण

डॉ. निधि शर्मा

सारांश- भारतीय साहित्य-परंपरा में रामकथा का अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है। संस्कृत में वाल्मीकि द्वारा रचित रामायण ने जिस व्यापक रामकथा-परंपरा को जन्म दिया, वह भारत की विभिन्न भाषाओं और संस्कृतियों में अलग-अलग रूपों में विकसित हुई। तमिल साहित्य में इस परंपरा का सर्वाधिक प्रभावशाली रूप कवि कंबन के कंब रामायणम् में दिखाई देता है। कंबन ने रामकथा को केवल पुनःकथित नहीं किया, बल्कि तमिल काव्य-परंपरा, स्थानीय सांस्कृतिक संवेदना, प्रकृति-बोध और मानवीय भावनाओं से समृद्ध करते हुए उसे स्वतंत्र काव्यात्मक स्वरूप प्रदान किया। कंब रामायणम् में युद्ध केवल दो सेनाओं के मध्य होने वाला संघर्ष नहीं है, बल्कि धर्म-अधर्म, नीति-अनीति, मर्यादा-अमर्यादा और मानवीय मूल्यों के संघर्ष का प्रतीक है। युद्ध-वर्णनों में वीरता, साहस, क्रोध, भय, करुणा और उत्साह का अद्भुत समन्वय दिखाई देता है। इसी प्रकार कंबन की प्रकृति केवल पृष्ठभूमि नहीं है; वह पात्रों के भाव-जगत की सहभागी है। वन, पर्वत, समुद्र, वर्षा, नदी, पुष्प, पक्षी और ऋतुएँ कथा के वातावरण तथा पात्रों की मनःस्थितियों को व्यक्त करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। राम, सीता, लक्ष्मण, भरत, हनुमान, रावण आदि पात्रों के माध्यम से कवि ने प्रेम, विरह, करुणा, वात्सल्य, भ्रातृभाव, भक्ति, क्रोध, अहंकार और पश्चात्ताप जैसी विविध भावनाओं का प्रभावशाली चित्रण किया है।

प्रस्तुत शोध-पत्र में कंब रामायण में युद्ध, प्रकृति और भावनाओं के परस्पर संबंध का अध्ययन करते हुए यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि कंबन की काव्य-दृष्टि में प्रकृति और युद्ध दोनों मानवीय संवेदना के विस्तार हैं।

बीज शब्द : कंब रामायण, कंबन, रामकथा, युद्ध-वर्णन, प्रकृति-चित्रण, भावनाएँ, वीर रस, करुण रस, तमिल साहित्य।

प्रस्तावना- भारतीय साहित्य में रामकथा केवल एक धार्मिक आख्यान नहीं है, बल्कि भारतीय संस्कृति, नैतिकता, लोकविश्वास और मानवीय मूल्यों की व्यापक अभिव्यक्ति है। रामकथा ने भारतीय भाषाओं के साहित्य को गहराई से प्रभावित किया है। संस्कृत के वाल्मीकि रामायण से आरंभ हुई यह परंपरा विभिन्न भारतीय भाषाओं में नए रूप और नई संवेदनाओं के साथ विकसित हुई। तमिल साहित्य में रामकथा को महाकाव्यात्मक गरिमा प्रदान करने वाले महान कवि कंबन हैं। कंबन द्वारा रचित रामावतारम्, जिसे सामान्यतः कंब रामायणम् कहा जाता है, तमिल साहित्य की महानतम कृतियों में गिना जाता है। कंबन ने रामकथा को तमिल समाज की सांस्कृतिक चेतना, भक्ति-भावना, काव्य-सौंदर्य और प्रकृति-बोध के साथ जोड़ दिया। कंबन का राम केवल एक आदर्श राजा या धार्मिक नायक नहीं है। वह संवेदनशील मनुष्य, आदर्श पुत्र, आदर्श पति, आदर्श भाई और धर्मनिष्ठ पुरुष के रूप में सामने आता है। इसी कारण उनके काव्य में बाह्य घटनाओं के साथ पात्रों का आंतरिक संसार भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण हो जाता है। कंब रामायण में युद्ध का स्वरूप अत्यंत विराट है। रावण और राम के मध्य संघर्ष केवल लंका की सत्ता के लिए नहीं है, बल्कि यह धर्म और अधर्म के बीच संघर्ष का प्रतीक बन जाता है। दूसरी ओर, प्रकृति का चित्रण कंबन की काव्य-प्रतिभा का विशेष पक्ष है। वनवास के प्रसंगों से लेकर समुद्र-सेतु निर्माण और लंका के युद्ध तक प्रकृति निरंतर कथा के साथ चलती है। इस प्रकार कंब रामायण में युद्ध बाहरी संघर्ष है, प्रकृति उसका वातावरण है और भावनाएँ उसकी आत्मा हैं।

कंबन और कंब रामायण- कंबन मध्यकालीन तमिल साहित्य के महान कवि माने जाते हैं। उनकी प्रमुख कृति रामावतारम् रामकथा पर आधारित एक विराट महाकाव्य है। यह कृति तमिल भक्ति, काव्य-परंपरा और रामकथा के अद्भुत समन्वय का उदाहरण है। कंबन ने वाल्मीकि की कथा को आधार बनाते हुए उसमें अपनी स्वतंत्र काव्य-दृष्टि का समावेश किया। उनकी दृष्टि में राम केवल ऐतिहासिक अथवा पौराणिक चरित्र नहीं, बल्कि धर्म, करुणा, मर्यादा और आदर्श के प्रतीक हैं। साथ ही, कंबन ने अपने पात्रों को अत्यंत मानवीय बनाया है। कंब रामायण की एक प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें दृश्य और भावना का गहरा संबंध है। किसी पात्र के भीतर यदि विरह है तो प्रकृति भी विरहपूर्ण दिखाई देती है; यदि युद्ध का उत्साह है तो वातावरण भी उग्र और गतिशील हो उठता है; यदि करुणा है तो प्रकृति भी शांत और विषादमयी प्रतीत होती है।

कंब रामायण में युद्ध का चित्रण

युद्ध का नैतिक और सांस्कृतिक स्वरूप -

कंब रामायण में युद्ध केवल शस्त्रों की भिड़ंत नहीं है। युद्ध के पीछे नैतिक प्रश्न उपस्थित हैं। राम और रावण का संघर्ष मूलतः धर्म और अधर्म के बीच संघर्ष बन जाता है।राम का युद्ध व्यक्तिगत प्रतिशोध की भावना से प्रेरित नहीं है। सीता की मुक्ति के साथ-साथ वह अन्याय और अत्याचार के अंत का प्रतीक है। इसके विपरीत रावण का चरित्र शक्ति, अहंकार, कामना और सत्ता के दुरुपयोग का प्रतिनिधित्व करता है।

इस प्रकार कंबन युद्ध को केवल सैन्य घटना के रूप में नहीं देखते, बल्कि उसके नैतिक परिणामों को भी रेखांकित करते हैं।

युद्ध की विराटता - कंबन के युद्ध-वर्णन में व्यापक दृश्यात्मकता दिखाई देती है। सेनाओं का एकत्र होना, हाथियों और घोड़ों की गति, रथों की गर्जना, धनुष की टंकार, अस्त्र-शस्त्रों का प्रहार और योद्धाओं का उत्साह—इन सभी का वर्णन अत्यंत प्रभावशाली है। युद्धभूमि में धूल का उठना, आकाश में अस्त्रों का चमकना और चारों ओर से आती युद्ध-ध्वनियाँ युद्ध के वातावरण को अत्यंत गतिशील बना देती हैं। कंबन की भाषा में युद्ध एक जीवंत दृश्य बनकर सामने आता है।उनके युद्ध-वर्णन में ध्वनि और गति का विशेष महत्त्व है। ऐसा प्रतीत होता है कि पाठक केवल युद्ध को पढ़ नहीं रहा, बल्कि उसे देख और सुन भी रहा है।

वीर रस की अभिव्यक्ति - कंब रामायण के युद्ध प्रसंगों में वीर रस की प्रधानता है। राम, लक्ष्मण, हनुमान, सुग्रीव, अंगद और अन्य वानर योद्धाओं के माध्यम से उत्साह, साहस और पराक्रम का चित्रण किया गया है।विशेष रूप से हनुमान का चरित्र वीरता और ऊर्जा का अद्भुत उदाहरण है। उनके व्यक्तित्व में शक्ति के साथ-साथ बुद्धि, भक्ति और समर्पण भी जुड़ा हुआ है। वे केवल योद्धा नहीं, बल्कि राम के प्रति पूर्णतः समर्पित भक्त हैं।अंगद का लंका में जाना और रावण के सामने निभीकता से खड़ा होना भी वीरता का महत्त्वपूर्ण उदाहरण है। इस प्रकार कंबन युद्धभूमि में शारीरिक शक्ति के साथ मानसिक दृढ़ता को भी वीरता का आधार मानते हैं।

रावण के युद्ध-चरित्र का चित्रण - कंबन का रावण एकांगी खलनायक नहीं है। उसमें असाधारण शक्ति, विद्वत्ता, वीरता और राजसत्ता के साथ अहंकार और अनैतिकता भी मौजूद है। युद्ध के प्रसंगों में रावण की शक्ति और पराक्रम का प्रभावशाली चित्रण मिलता है। वह एक महान योद्धा है और उसके भीतर युद्ध करने का अद्भुत सामर्थ्य है। किंतु उसकी सबसे बड़ी कमजोरी उसका अहंकार है।

यही अहंकार उसे उचित सलाह स्वीकार करने से रोकता है। विभीषण की सलाह को अस्वीकार करना, सीता को वापस न करना और अपने निर्णय पर अड़े रहना अंततः उसके विनाश का कारण बनता है।इस प्रकार कंबन का रावण यह संदेश देता है कि शक्ति यदि विवेक से नियंत्रित न हो तो वही शक्ति विनाश का कारण बन जाती है।

युद्ध में करुणा और मानवीय संवेदना - कंबन युद्ध को केवल वीरता के उत्सव में परिवर्तित नहीं करते। वे युद्ध

की त्रासदी को भी सामने लाते हैं।युद्धभूमि में घायल और मृत योद्धाओं का दृश्य, प्रियजनों से बिछुड़ना, परिवारों का उजड़ना और नायकों की मृत्यु—इन सबके माध्यम से करुण रस की सृष्टि होती है। विशेष रूप से रावण के पुत्रों और प्रमुख योद्धाओं की मृत्यु के प्रसंगों में युद्ध की मानवीय कीमत सामने आती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि युद्ध चाहे धर्म की स्थापना के लिए क्यों न हो, उसमें पीड़ा और विनाश का तत्व अनिवार्य रूप से उपस्थित रहता है।कंबन की दृष्टि में वीरता और करुणा एक-दूसरे के विरोधी नहीं हैं। एक ही युद्धभूमि में वीरता का उत्कर्ष और करुणा की चरम अनुभूति साथ-साथ उपस्थित हो सकती है।

कंब रामायण में प्रकृति का चित्रण

प्रकृति केवल पृष्ठभूमि नहीं- कंब रामायण की सबसे उल्लेखनीय विशेषताओं में प्रकृति-चित्रण का विशेष स्थान है। कंबन के यहाँ प्रकृति कथा की निष्क्रिय पृष्ठभूमि नहीं है, बल्कि वह सक्रिय और संवेदनशील सत्ता के रूप में उपस्थित होती है।

वन, नदी, पर्वत, समुद्र, वृक्ष, पुष्प, पक्षी, बादल, वर्षा और ऋतुएँ पात्रों के जीवन से जुड़ी हुई हैं।राम का वनवास प्रकृति के बीच घटित होता है। इसलिए वन केवल निवास का स्थान नहीं, बल्कि राम, सीता और लक्ष्मण के जीवन का एक महत्त्वपूर्ण पात्र बन जाता है।

वन का सौंदर्य - वनवास के प्रसंगों में कंबन ने प्रकृति के अत्यंत सुंदर और विविध रूपों का चित्रण किया है। वृक्षों, लताओं, पुष्पों, पक्षियों और पशुओं से भरा वन एक जीवंत संसार की तरह दिखाई देता है।वन का सौंदर्य एक ओर मन को आकर्षित करता है, तो दूसरी ओर वनवास की कठिनाइयों और अनिश्चितताओं को भी सामने रखता है। इस प्रकार प्रकृति का सौंदर्य और जीवन का संघर्ष एक साथ दिखाई देते हैं।कंबन प्रकृति के सूक्ष्म विवरणों के माध्यम से वातावरण का निर्माण करते हैं। उनके प्रकृति-वर्णन में रंग, गंध, ध्वनि और गति सभी का समन्वय मिलता है।

प्रकृति और मानवीय भावनाओं का संबंध - कंबन की काव्य-दृष्टि में प्रकृति और मानव-मन का गहरा संबंध है।जब पात्र प्रसन्न होते हैं, तब प्रकृति का सौंदर्य अधिक उज्ज्वल प्रतीत होता है। जब पात्र दुखी या विरहग्रस्त होते हैं, तब वही प्रकृति विषादपूर्ण दिखाई देती है। राम के सीता-वियोग के प्रसंगों में प्रकृति उनके विरह की अनुभूति को और तीव्र करती है। वृक्ष, लताएँ, पक्षी और वन का वातावरण राम की मानसिक स्थिति के साथ जुड़ जाते हैं।इस प्रकार प्रकृति यहाँ मानवीय भावनाओं का प्रतिबिंब बन जाती है।

समुद्र का चित्रण - कंब रामायण में समुद्र का विशेष महत्त्व है। राम की सेना को लंका तक पहुँचने के लिए समुद्र पार करना है। समुद्र यहाँ केवल भौगोलिक बाधा नहीं, बल्कि एक चुनौती का प्रतीक है। समुद्र की विशालता राम के सामने उपस्थित कठिनाई की विराटता को दर्शाती है। समुद्र के सामने खड़ी राम की सेना मानव-संकल्प और प्राकृतिक शक्ति के संघर्ष को भी व्यक्त करती है। सेतु-निर्माण का प्रसंग इस बात का प्रतीक बन जाता है कि संगठित प्रयास और दृढ़ संकल्प से असंभव प्रतीत होने वाली बाधाओं को भी पार किया जा सकता है।वानर सेना द्वारा सेतु निर्माण में प्रकृति और मानव-प्रयास का अद्‌भुत समन्वय दिखाई देता है।

पर्वत और वन्य प्रकृति - कंब रामायण में पर्वतों का चित्रण शक्ति, स्थायित्व और विराटता का बोध कराता है। पर्वत केवल भौगोलिक संरचना नहीं, बल्कि कथा के महत्वपूर्ण पड़ाव भी हैं।वानर सेना और प्रकृति का संबंध भी अत्यंत स्वाभाविक है। वे वृक्षों, पर्वतों और वन्य परिवेश के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़े हैं। इससे कंबन की काव्य-दृष्टि में मनुष्य और प्रकृति के बीच एक सहज संबंध का संकेत मिलता है।

भावनाओं का चित्रण - कंब रामायण की सबसे बड़ी शक्ति उसके भावात्मक पक्ष में निहित है। कंबन ने पात्रों को केवल कथा को आगे बढ़ाने वाले साधन के रूप में नहीं देखा, बल्कि उनके भीतर के भाव-संसार को गहराई से व्यक्त किया है।

राम की भावनाएँ - कंबन के राम आदर्श पुरुष हैं, लेकिन वे भावनाहीन नहीं हैं। पिता के वचन के कारण वनवास स्वीकार करते समय उनमें पुत्रधर्म और कर्तव्यबोध दिखाई देता है। सीता-वियोग के समय राम का दुःख अत्यंत मानवीय रूप ग्रहण करता है। वे सीता की खोज में व्याकुल होते हैं। यह प्रसंग राम के भीतर छिपी संवेदनशीलता को सामने लाता है। राम में प्रेम, करुणा, क्रोध, कर्तव्य और धैर्य का अद्‌भुत संतुलन दिखाई देता है।

सीता की भावनाएँ - सीता कंब रामायण की अत्यंत संवेदनशील और दृढ़ चरित्र वाली नायिका हैं। उनके व्यक्तित्व में प्रेम और त्याग के साथ आत्मसम्मान और मानसिक दृढ़ता भी दिखाई देती है।वनवास में पति के साथ जाने का निर्णय उनके दाम्पत्य प्रेम और समर्पण को व्यक्त करता है। लंका में बंदी जीवन के दौरान उनका दुःख, राम के प्रति विश्वास और अपने सम्मान की रक्षा का संकल्प उनके व्यक्तित्व को गरिमा प्रदान करता है।

लक्ष्मण में भ्रातृप्रेम और क्रोध - लक्ष्मण का चरित्र कंब रामायण में समर्पण और भ्रातृप्रेम का प्रतीक है। वे राम के साथ वन जाते हैं और उनके सुख-दुःख में सहभागी बनते हैं।उनके भीतर राम के प्रति अत्यंत गहरा प्रेम है। साथ ही उनमें तीव्र क्रोध और अन्याय के प्रति असहिष्णुता भी दिखाई देती है। लक्ष्मण का व्यक्तित्व यह दिखाता है कि सच्चा प्रेम केवल भावुकता नहीं, बल्कि त्याग, सेवा और संघर्ष के लिए तैयार रहने की भावना भी है।

भरत का त्याग और करुणा - भरत कंब रामायण के अत्यंत महत्त्वपूर्ण भावनात्मक पात्र हैं। वे सत्ता को स्वीकार करने के बजाय राम के अधिकार को सर्वोच्च मानते हैं।

भरत का चरित्र भ्रातृप्रेम, त्याग और नैतिकता का उदाहरण है। राम के वनवास की स्थिति उन्हें गहरे दुःख से भर देती है।उनका चरित्र यह संदेश देता है कि वास्तविक सत्ता-चेतना अधिकार प्राप्त करने में नहीं, बल्कि उचित अधिकार का सम्मान करने में है।

हनुमान में भक्ति और वीरता - कंबन के हनुमान बहुआयामी चरित्र हैं। उनमें अद्‌भुत शारीरिक शक्ति के साथ बुद्धि, विनम्रता और भक्ति का समन्वय है।राम के प्रति उनकी भक्ति उनके समस्त कर्मो की प्रेरक शक्ति है। सीता की खोज, समुद्र लाँघना, लंका में प्रवेश करना और युद्ध में पराक्रम दिखाना उनके चरित्र के विभिन्न पक्षों को सामने लाता है।हनुमान के माध्यम से कंबन ने यह सिद्ध किया है कि भक्ति और वीरता एक-दूसरे की विरोधी नहीं, बल्कि पूरक शक्तियाँ हैं।

रावण में अहंकार और आंतरिक संघर्ष - रावण के भीतर भी भावनाओं की जटिलता है। वह शक्तिशाली, विद्वान और पराक्रमी है, लेकिन उसके व्यक्तित्व में अहंकार और वासना का प्रभाव अधिक है।उसका सीता के प्रति आकर्षण और राम के प्रति विरोध अंततः उसे विनाश की ओर ले जाता है। युद्ध में अपने प्रियजनों की मृत्यु से उसे दुःख होता है, लेकिन उसका अहंकार उसे अपनी भूल स्वीकार करने नहीं देता। इस प्रकार कंबन रावण के माध्यम से यह दिखाते हैं कि मनुष्य का बाहरी वैभव उसके आंतरिक दोषों को समाप्त नहीं कर सकता।

युद्ध, प्रकृति और भावना का अंतर्संबंध - कंब रामायण की विशेषता यह है कि युद्ध, प्रकृति और भावनाएँ अलग-अलग तत्व नहीं हैं। तीनों एक-दूसरे से गहराई से जुड़े हुए हैं।युद्ध के समय प्रकृति का वातावरण भी उग्र और गतिशील हो जाता है। समुद्र, पर्वत, आकाश और वायु युद्ध की विराटता को व्यक्त करने वाले प्रतीक बनते हैं।दूसरी ओर, विरह और करुणा के प्रसंगों में प्रकृति पात्रों के मनोभावों की अभिव्यक्ति करती है। इस प्रकार कंबन की काव्य-रचना में :

युद्ध - बाह्य संघर्ष

प्रकृति - वातावरण और भावों की अभिव्यक्ति

भावना - कथा की आंतरिक शक्ति

इन तीनों का समन्वय महाकाव्य को व्यापक मानवीय अर्थ प्रदान करता है।

अंततः कहा जा सकता है कि कंब रामायण की शक्ति उसकी कथा में ही नहीं, बल्कि उसके काव्यात्मक पुनर्सृजन में है। कंबन ने रामकथा को तमिल साहित्य की आत्मा से जोड़कर उसे सार्वभौमिक मानवीय अनुभव का महाकाव्य बना दिया। युद्ध उसकी गतिशीलता है, प्रकृति उसका सौंदर्य है और मानवीय भावनाएँ उसकी आत्मा हैं।

संदर्भ ग्रंथ

1. कंबन – कंब रामायणम् / रामावतारम्।
2. वाल्मीकि – वाल्मीकि रामायण।
3. कामिल ज्वेलेबिल – The Smile of Murugan: On Tamil Literature of South India
4. ए. के. रामानुजन – Three Hundred Ramayanas: Five EÛamples and Three Thoughts on Translation
5. सी. राजगोपालाचारी – रामायण।
6. हजारी प्रसाद द्विवेदी – हिन्दी साहित्य की भूमिका।
7. रामचन्द्र शुक्ल – हिन्दी साहित्य का इतिहास।
8. बलदेव उपाध्याय – भारतीय साहित्यशास्त्र।
9. भारतीय रामकथा एवं दक्षिण भारतीय साहित्य से संबंधित विभिन्न शोध-अध्ययन।
10. तमिल साहित्य और कंबन के काव्य पर उपलब्ध आलोचनात्मक अध्ययन।

डॉ. निधि शर्मा

एसोसिएट प्रोफ़ेसर हिन्दी विभाग

किशोरी रमण महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय

मथुरा (281001)

मो- 8881100035

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

भारत-श्रीलंका संबंधों में पर्यटन एवं सॉफ्ट पावर कूटनीति का विश्लेषण

मनीष कुमार चौरसिया, प्रो. नीलिमा सिंह

सारांश- भारत श्रीलंका का विश्वसनीय, सहयोगी और सबसे करीबी पड़ोसी देश है। दोनों देशों के बीच संस्कृति धार्मिक और व्यापारिक संबंधों का एक लंबा इतिहास रहा है जो लगभग 2500 साल से भी ज्यादा समय से चला आ रहा है। आज दोनों देशों के मध्य द्विपक्षीय संबंध को बेहतर करने में पर्यटन एक महत्वपूर्ण कारक के रूप में भर रहा है। इसी संदर्भ में यह शोध पत्र भारत श्रीलंका संबंधों में पर्यटन एवं सॉफ्ट और कूटनीति की भूमिका का विश्लेषण प्रस्तुत करता है जो बौद्ध पर्यटन, रामायण सर्किट, सांस्कृतिक धरोहर और धार्मिक यात्राओं के तहत मजबूत हो रहे हैं। इसमें यह भी तर्क दिया गया है कि पर्यटन दोनों देशों के बीच केवल आर्थिक शोध नहीं है बल्कि सांस्कृतिक निकटता और विश्वास निर्माण का एक महत्वपूर्ण साधन भी है। साथ ही पर्यटन भारत और श्रीलंका के बीच साझा सभ्यतागत संबंधों को सॉफ्ट पावर में बदलने की एक बेहतर संभावनाएं भी प्रदान करती है।

मुख्य शब्द– पर्यटन, कूटनीति, सॉफ्ट पावर, रामायण सर्किट, बौद्ध पर्यटन, रामसेतु, तमिल संस्कृति

प्रस्तावना- आज बदलते हुए परिवेश में वैश्विक राजनीति के प्रकृति में व्यापक बदलाव आया है, जहां पारंपरिक अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में सैनिक क्षमता, आर्थिक क्षमता और राजनीतिक प्रभाव के अध्ययन को ही विशेष महत्व दिया जाता था, वहीं आज किसी भी राष्ट्र के द्विपक्षीय संबंधों में केवल सैनिक क्षमता और आर्थिक क्षमता प्रभाव नहीं डाल रहें है बल्कि उस राष्ट्र के मूल्य, संस्कृति, जीवन शैली और पर्यटन भी द्विपक्षीय संबंधों को बेहतर बनाने में व्यापक भूमिका निभा रहे हैंध इसी संदर्भ में जोसेफ नाई द्वारा प्रतिपादित सॉफ्ट पावर की अवधारणा समकालीन कूटनीति को समझने में काफी मददगार साबित हो रही है। जोसेफ नाई के अनुसार सॉफ्ट पावर आकर्षण के माध्यम से इच्छित परिणाम प्राप्त करने की शक्ति है, अर्थात सॉफ्ट पावर से तात्पर्य किसी भी राष्ट्र की उस क्षमता से है जिसके द्वारा वह राष्ट्र सैनिक शक्ति या आर्थिक क्षमता के बजाय वह अपने संस्कृति और मूल्यों के माध्यम अंतर्राष्ट्रीय राजनीति को प्रभावित करने की कोशिश करता है।

भारत श्रीलंका द्विपक्षीय संबंधों में भी सॉफ्ट पावर का महत्वपूर्ण स्थान है। हम जानते हैं कि दोनों देशों के बीच राजनीतिक, सैन्य और आर्थिक संबंध बहुत अच्छे हैं। साथ ही उनके बीच संस्कृति, धार्मिक और भाषाई संबंध भी काफी प्राचीन है। क्योंकि भारतीय-श्रीलंका संबंध की जड़ें बहुत ही गहरी है। रामायण से जुड़ी हुई संस्कृति और प्रथा दोनों देशों के संबंधों को हमेशा से प्रगाढ़ करती रही है, वहीं बौद्ध धर्म से संबंधित ऐतिहासिक पवित्र स्थल भी दोनों देशों के बीच पर्यटन के माध्यम से सामाजिक सांस्कृतिक और आर्थिक स्थिति को मजबूत कर रही है। समकालीन दौर में पर्यटन इन संबंधों के पुनर्जीवित करने के एक प्रभावी माध्यम बन कर उभर रहा है। श्रीलंका टूरिज्म डेवलपमेंट अथॉरिटी (SLTDA) के अनुसार इस साल श्रीलंका में आने वाले टूरिस्ट का सबसे बड़ा स्रोत भारत रहा है। हर चार अंतरराष्ट्रीय विजिटर में से लगभग एक विजिटर भारत से आया हुआ है। 13 अगस्त 2026 तक श्रीलंका में कुल 14.37 लाख टूरिस्ट आए है जिनमें से 3.58 लाख भारतीय नागरिक है। श्रीलंका पर्यटन प्राधिकरण ने पिछले साल के आंकड़ें प्रस्तुत करते हुए बताया है कि 2025 में 23 लाख पर्यटक

श्रीलंका आए थे, जिसमें से 5.3 लाख भारतीय पर्यटक थे। जो अन्य देशों के आने वाले पर्यटकों की सूची में सर्वाधिक थे। इस तरह से भारत श्रीलंका के बीच बढ़ता पर्यटन संपर्क इस संभावित सॉफ्ट पावर की व्यावहारिक अभिव्यक्ति है।

उपर्युक्त आधार पर हम कर सकते हैं कि दोनों देशों के बीच पर्यटन केवल विदेशी मुद्रा अर्जित करने साधन नहीं है बल्कि पर्यटन दोनों देशों के नागरिकों को एक दूसरे की सांस्कृतिक और सामाजिक संरचना को प्रत्यक्ष अनुभव करने का अवसर प्रदान करता है।

अध्ययन के उद्देश्य

- भारत-श्रीलंका संबंधों में पर्यटन की भूमिका का विश्लेषण करना।
- सॉफ्ट पावर की अवधारणा के संदर्भ में पर्यटन-कूटनीति को समझना।
- बौद्ध पर्यटन एवं रामायण सर्किट की कूटनीतिक भूमिका का अध्ययन करना।
- पर्यटन के माध्यम से जन-से-जन संपर्क की संभावनाओं का विश्लेषण करना।
- पर्यटन कूटनीति के समक्ष उपस्थित चुनौतियों की पहचान करना।
- भारत-श्रीलंका संबंधों को मजबूत करने के लिए पर्यटन आधारित सॉफ्ट पावर की संभावनाओं का मूल्यांकन करना।

शोध पद्धति : यह अध्ययन मुख्यतः गुणात्मक एवं विश्लेषणात्मक प्रकृति का है। इसमें द्वितीयक स्रोतों का प्रयोग किया गया है। भारत सरकार के विदेश मंत्रालय एवं पर्यटन मंत्रालय, श्रीलंका के विदेश मंत्रालय तथा श्रीलंका टूरिज्म डेवलपमेंट अथॉरिटी के आधिकारिक आँकड़ों को प्राथमिक आधिकारिक स्रोत के रूप में इस्तेमाल किया गया है। इसके अतिरिक्त सॉफ्ट पावर, सार्वजनिक कूटनीति एवं पर्यटन-कूटनीति से संबंधित अकादमिक साहित्य का अध्ययन किया गया है।

रामायण सर्किट- भारत सरकार ने अपने देश में पर्यटन को बढ़ावा देने के उद्देश्य से 2014-15 में स्वदेश दर्शन योजना शुरू किया था। रामायण सर्किट स्वदेश दर्शन योजना का ही एक हिस्सा है। इस योजना का मुख्य उद्देश्य श्री राम के जीवन से संबंधित 15 प्राचीन स्थलों को पर्यटन के रूप से विकास करना है। रामायण सर्किट योजना भारत की सॉफ्ट पावर को सशक्त करने के एक मुख्य साधन बन गया है। क्योंकि यह योजना पड़ोसी देशों और दक्षिण पूर्व एशिया के साथ ऐतिहासिक और सांस्कृतिक संबंधों को जोड़ती है। रामायण सर्किट भारत-श्रीलंका के संबंधों को मजबूत करने में बेहतर भूमिका निभा सकता है। रामायण भारतीय उपमहाद्वीप की प्रमुख सांस्कृतिक परंपराओं में से एक है। रामायण से जुड़े अनेक पवित्र स्थल श्रीलंका में भी स्थिति है। इन स्थलों में सबसे प्रमुख सीता एलिया, अशोक वाटिका, रावण गुफा, सीता कोतुवा और दिबुरूमपोला आदि स्थल है। यदि इन स्थलों को हम रामायण सर्किट योजना के तहत शामिल करते हैं तो दोनों देशों के बीच व्यापक पर्यटन नेटवर्क विकसित होने की संभावना है। इससे पर्यटकों को केवल धार्मिक स्थलों की यात्रा नहीं बल्कि दोनों देशों की साझा संस्कृति विरासत को समझने का अवसर मिलेगा।

राम सेतु- राम सेतु भारत और श्रीलंका के बीच एकमात्र ब्रिज है जो भारत के पंबन द्वीप को श्रीलंका के मन्नार द्वीप से जोड़ता है। राम सेतु का भी संबंध पौराणिक कथाओं के अनुसार रामायण से माना जाता है। रामायण के अनुसार राम को जब लंका जाना था तब इस सेतु का निर्माण वानर सेना द्वारा तैरती हुई पत्थर से किया गया था। भारत-श्रीलंका संबंधों में पर्यटन और सॉफ्ट पावर के संदर्भ में रामसेतु काफी महत्वपूर्ण स्थान रखता है। राम सेतु दोनों देशों के बीच संवाद का प्रमुख सांस्कृतिक प्रतीक बन सकता है। इसके माध्यम से धार्मिक पर्यटन, सांस्कृतिक कार्यक्रम, पुरातात्विक एवं समुद्री विरासत अध्ययन और अकादमी सहयोग को प्रोत्साहित किया जा सकता है। इस तरह से भारत-श्रीलंका संबंध में राम सेतु को धार्मिक आस्था, साझा सांस्कृतिक स्मृति, पर्यटन और सॉफ्ट पावर के संगम के रूप में देखा जा सकता है।

बौद्ध पर्यटन- भारत-श्रीलंका के संबंध केवल राजनीतिक मुद्दे एवं समझौते पर नहीं टिका है बल्कि साझा बौद्ध विरासत, भाषा, संस्कृति और सभ्यता भी दोनों के बीच संबंधों को मजबूत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। बौद्ध धर्म प्राचीन समय से ही दोनों देशों के बीच सांस्कृतिक संपर्क का साधन रहा है। मौर्य वंश के समय में जब विश्व स्तर पर बौद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार हो रहा था तब महाराज अशोक ने अपने पुत्र महेंद्र और पुत्री संघमित्रा को बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए

श्रीलंका भेजा था। उसके बाद से श्रीलंका में बौद्ध धर्म का व्यापक स्तर पर विस्तार हुआ। परिणामतः आज बौद्ध धर्म एक शाखा थेरवाद मुख्य रूप से दक्षिण-पूर्व एशिया और श्रीलंका देशों में सबसे अधिक संख्या में पाया जाता है। इस तरह से बौद्ध धर्म दोनों देशों के बीच एक सांस्कृतिक सेतु का कार्य करता है।

राजगीर, बोधगया, सारनाथ और कुशीनगर जैसे भारतीय बौद्ध स्थल श्रीलंकाई पर्यटकों के लिए विशेष महत्व रखतें है। बोधगया में भगवान बुद्ध को ज्ञान की प्राप्ति हुई थी, सारनाथ में उन्होंने अपना पहला उपदेश दिया था और कुशीनगर में उनका महापरिनिर्वाण हुआ। यह स्थल श्रीलंका बौद्ध भिक्षुओं को विशेष रूप से आकर्षित करता है वें दर्शन के उद्देश्य से इन सभी बौद्ध स्थल का भ्रमण करते हैं। इसी तरह से अनुराधापुर, कैंडी, पोलन्नरूवा और दांबुला जैसे श्रीलंकाई बौद्ध स्थल भी भारतीय पर्यटकों के लिए एक आकर्षण का केंद्र बना हुआ है। अतः यह कहा जा सकता है कि यह बौद्ध स्थल भारत-श्रीलंका के साझा विरासत को प्रत्यक्ष रूप से जोड़ती है। हालांकि बौद्ध पर्यटन को केवल धार्मिक और सांस्कृतिक कूटनीति तक सीमित रखना इसके विस्तृत संभावनाओं को कम करता है। क्योंकि बौद्ध धर्म के बाद कनेक्टिविटी होटल हस थे सेल तथा अन्य पर्यटन गतिविधियों को भी बढ़ावा देता है इस तरह से बहुत पर्यटक भारत की सॉफ्टबॉल कुंडली को विशेष मजबूती प्रदान करता है यह दोनों देशों के बीच ऐतिहासिक संबंधों को वर्तमान कूटनीति सहयोग से जोड़ते हुए भविष्य में अधिक गहरी और अस्थाई विपक्षीय संबंधों को आधार बन सकता है।

तमिल संस्कृति- भारत के तमिलनाडु और श्रीलंका के उत्तरी एवं पूवी क्षेत्रों के बीच प्राचीन काल से ही समुद्री संपर्क, व्यापार, धार्मिक यात्राओं तथा सांस्कृतिक आदान-प्रदान के माध्यम से संबंध रहे हैं। इसलिए तमिल संस्कृति दोनों देशों के बीच केवल एक क्षेत्रीय सांस्कृतिक पहचान नहीं, बल्कि जन-से-जन संपर्क और सांस्कृतिक कूटनीति का महत्वपूर्ण सेतु है। तमिल संस्कृति का सबसे प्रमुख आधार तमिल भाषा है। भारत में तमिलनाडु तमिल भाषा एवं साहित्य का प्रमुख केंद्र है जबकि श्रीलंका में तमिल को आधिकारिक भाषा का दर्जा प्राप्त है। दोनों देशों के तमिल भाषी समुदायों के बीच साहित्य, शिक्षा, धार्मिक परंपराओं और पारिवारिक संबंधों के माध्यम से निरंतर संपर्क बना हुआ है। तमिल भाषा की यह समानता लोगों के बीच संवाद को सहज बनाती है और सांस्कृतिक निकटता को मजबूत करती है।

धर्म और मंदिर परंपरा तमिल सांस्कृतिक संबंधों का एक अन्य महत्वपूर्ण पक्ष है। श्रीलंका में नल्लूर कंदस्वामी मंदिर, कोनेश्वरम मंदिर और मुन्नेश्वरम मंदिर जैसे प्रसिद्ध हिंदू धार्मिक स्थल तमिल धार्मिक एवं सांस्कृतिक परंपरा से जुड़े हैं। भारत से श्रद्धालु इन स्थलों की यात्रा करते हैं। इसी प्रकार श्रीलंका के तमिल समुदाय के लोगों के लिए तमिलनाडु के रामेश्वरम, मदुरै और अन्य धार्मिक केंद्रों का विशेष महत्व है। धार्मिक पर्यटन इस सांस्कृतिक संपर्क को और व्यापक बनाता है। तमिल संस्कृति का प्रभाव साहित्य, संगीत, नृत्य और सिनेमा के क्षेत्र में भी दिखाई देता है। तमिल साहित्य की समृद्ध परंपरा तथा भारत के तमिल फिल्म उद्योग की लोकप्रियता ने श्रीलंका में तमिल भाषी समाज के साथ सांस्कृतिक संबंधों को मजबूत किया है। फिल्मों, संगीत और डिजिटल माध्यमों के द्वारा दोनों देशों के लोगों के बीच निरंतर सांस्कृतिक संवाद बना रहता है। इस प्रकार लोकप्रिय संस्कृति भी एक प्रकार की अनौपचारिक सांस्कृतिक कूटनीति का कार्य करती है। सॉफ्ट पावर के संदर्भ में तमिल संस्कृति भारत के लिए एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक संसाधन है। तमिल भाषा, साहित्य, संगीत, नृत्य, भोजन, सिनेमा और धार्मिक परंपराएं भारत के सांस्कृतिक आकर्षण को श्रीलंका तक पहुंचाती हैं। यदि इन्हें राजनीतिक प्रभाव के बजाय साझी विरासत, पारस्परिक सम्मान और सांस्कृतिक संवाद के रूप में प्रस्तुत किया जाए, तो तमिल संस्कृति दोनों देशों के बीच विश्वास और सद्‌भाव को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

जन-से-जन संपर्क और पर्यटन- भारत-श्रीलंका संबंधों में पर्यटन का सबसे महत्वपूर्ण योगदान जन-से-जन संपर्क के क्षेत्र में है। पारंपरिक कूटनीति सरकारों के बीच संवाद स्थापित करती है, लेकिन पर्यटन समाजों के बीच संबंध बनाता है। जब भारतीय पर्यटक श्रीलंका जाते हैं, तो वे स्थानीय लोगों, होटल कर्मचारियों, दुकानदारों, धार्मिक संस्थाओं, टैक्सी चालकों और स्थानीय उद्यमियों से संपर्क करते हैं। इसी प्रकार श्रीलंकाई पर्यटक भारत में स्थानीय संस्कृति का अनुभव करते हैं।इस प्रकार पर्यटन अंतरराष्ट्रीय संबंधों को 'राज्य-केंद्रित' दृष्टिकोण से 'समाज-केंद्रित' दृष्टिकोण की ओर ले जाता है। टूरिज्म

डिप्लोमेसी पर हालिया शोध भी इस बात पर बल देता है कि पर्यटक और मेजबान समुदाय के बीच संबंध दोनों पक्षों की धारणाओं को पुनर्गठित कर सकते हैं और इससे आपसी समझ को बढ़ावा मिल सकता है। भारत-श्रीलंका जैसे पड़ोसी देशों के लिए यह विशेष रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि दोनों देशों के बीच कुछ राजनीतिक एवं सामाजिक विवाद भी रहे हैं। ऐसे में पर्यटन सकारात्मक संपर्क का एक वैकल्पिक मंच उपलब्ध कराता है।

पर्यटन कूटनीति की प्रमुख चुनौतियाँ- भारत-श्रीलंका पर्यटन सहयोग की व्यापक संभावनाओं के बावजूद अनेक चुनौतियां मौजूद हैं। इसमें से सबसे प्रमुख राजनीतिक मुद्दे है जैसे मछुआरों का विवाद, तमिल समस्यां और हिंद महासागर से संबधित विवाद आदि। इसके साथ ही बौद्ध धर्म या रामायण जैसे सांस्कृतिक प्रतीकों का अत्यधिक राजनीतिक उपयोग कभी-कभी सकारात्मक सॉफ्ट पावर के बजाय अविश्वास उत्पन्न कर सकता है। कनेक्टिविटी की सीमाएँ भी दानों देशों के बीच पर्यटन के लिए एक समस्या बना हुआ है। हालांकि कनेक्टिविटी के लिए फेरी सेवा शुरू किया गया और हवाई संपर्क को बढ़ाया गया है। इसके अतिरिक्त अत्यधिक पर्यटन प्राकृतिक एवं धार्मिक स्थलों पर पर्यावरणीय दबाव बढ़ा सकता है। इसलिए भारत और श्रीलंका को सतत् पर्यटन पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

भारत-श्रीलंका पर्यटन कूटनीति को मजबूत करने के उपाय- भारत-श्रीलंका के बीच पर्यटन को केवल आर्थिक गतिविधि के रूप में नहीं, बल्कि सॉफ्ट पावर, सांस्कृतिक कूटनीति और जन-से-जन संपर्क के प्रभावी माध्यम के रूप में विकसित किया जा सकता है। दोनों देशों की साझा सभ्यतागत विरासत और भौगोलिक निकटता को देखते हुए पर्यटन कूटनीति को निम्नलिखित तारीकें से मजबूत किया जा सकता है—

दोनों देशों के बीच एक संयुक्त पर्यटन सर्किट का विकस करना चाहिए। जिसमें सभी महत्वपूर्ण स्थलों को शामिल करना चाहिए।

हवाई एवं समुद्री संपर्क को और विस्तार किया जाना चाहिए। साथ ही नई फेरी सेवाओं, क्रूज पर्यटन तथा छोटे शहरों के बीच सीधी उड़ानों को बढ़ावा देकर कनेक्टिविटी को मजबूत करना चाहिए।

दोनों देशों के बीच सांस्कृतिक महोत्सव, साहित्यिक कार्यक्रम, कला प्रदर्शनियां, संगीत एवं नृत्य कार्यक्रम और फिल्म समारोह आयोजित किए जाने चाहिए।

पर्यटकों के लिए वीजा प्रक्रिया को अधिक सरल, तेज और डिजिटल बनाया जाना चाहिए। साथ ही धार्मिक एवं सांस्कृतिक यात्रियों के लिए विशेष सुविधाएं विकसित करने से पर्यटन प्रवाह बढ़ सकता है।

धार्मिक और प्राकृतिक स्थलों पर अत्यधिक पर्यटन से होने वाले पर्यावरणीय दबाव को कम करने के लिए सतत् पर्यटन मॉडल अपनाना आवश्यक है।

भारत और श्रीलंका को पर्यटन सहयोग की नियमित समीक्षा के लिए संस्थागत तंत्र को मजबूत करना चाहिए।

पर्यटन कूटनीति के भविष्य और संभावनाएँ- भविष्य में भारत-श्रीलंका पर्यटन-कूटनीति के विस्तार की व्यापक संभावनाएँ दिखाई देती हैं। दोनों देशों के बीच ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और सामाजिक समानताएँ पर्यटन को एक प्रभावी सॉफ्ट पावर साधन बनाती हैं। 2025 में भारत से श्रीलंका आने वाले पर्यटकों की संख्या 5.31 लाख से अधिक रही तथा 2026 के शुरुआती महीनों में भी भारत प्रमुख स्रोत बाजार बना रहा। यह प्रवृत्ति दर्शाती है कि दोनों देशों के पर्यटन संबंध केवल महामारी के बाद की पुनर्बहाली नहीं, बल्कि दीर्घकालिक संबंध का रूप ले रहे हैं। भविष्य में बौद्ध तीर्थयात्रा कूटनीति, रामायण सांस्कृतिक कूटनीति, आयुर्वेद एवं वेलनेस पर्यटन, योग पर्यटन, चिकित्सा पर्यटन और शैक्षिक पर्यटन महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। इसके अतिरिक्त क्रूज़ पर्यटन, फिल्म पर्यटन, विरासत संरक्षण पर्यटन, इको-टूरिज्म तथा युवा विनिमय पर्यटन को भी बढ़ावा दिया जा सकता है। विशेष रूप से भारत और श्रीलंका के प्रमुख बौद्ध एवं सांस्कृतिक स्थलों को पर्यटन परिपथों से जोड़ना जन-से-जन संपर्क को मजबूत करेगा। यदि पर्यटन को विदेश नीति, सांस्कृतिक कूटनीति और आर्थिक सहयोग के व्यापक ढाँचे से जोड़ा जाए तो यह दोनों देशों के बीच पारस्परिक विश्वास, सहयोग और रणनीतिक साझेदारी को और अधिक सुदृढ़ करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

निष्कर्ष- भारत-श्रीलंका संबंधों में पर्यटन का महत्व पिछले कुछ वर्षों में उल्लेखनीय रूप से बढ़ा है। यह अब केवल आर्थिक गतिविधि अथवा विदेशी मुद्रा अर्जित करने का माध्यम नहीं है, बल्कि सांस्कृतिक कूटनीति, सार्वजनिक कूटनीति और सॉफ्ट पावर का महत्वपूर्ण उपकरण बन चुका है। भारत और श्रीलंका के बीच मौजूद प्राचीन बौद्ध संबंध, रामायण की साझा सांस्कृतिक स्मृति, तमिल एवं समुद्री संपर्क, धार्मिक यात्राएं और जन-से-जन संबंध पर्यटन-कूटनीति के लिए मजबूत आधार उपलब्ध कराते हैं। विशेष रूप से बौद्ध पर्यटन भारत की विशिष्ट सॉफ्ट पावर क्षमता को दर्शाता है। बोधगया, सारनाथ, कुशीनगर जैसे स्थलों का श्रीलंकाई बौद्ध समुदाय के साथ संबंध भारत को एक विशिष्ट सांस्कृतिक आकर्षण प्रदान करता है। 2025 में श्रीलंका के कुल पर्यटक आगमन में भारत की लगभग 22.5 प्रतिशत हिस्सेदारी इस बात का ठोस प्रमाण है कि पर्यटन दोनों देशों के संबंधों का प्रमुख आयाम बन चुका है। हालांकि पर्यटन को सॉफ्ट पावर के प्रभावी साधन में बदलने के लिए केवल पर्यटकों की संख्या बढ़ाना पर्याप्त नहीं है। इसके लिए सांस्कृतिक संवेदनशीलता, पारस्परिक सम्मान, स्थानीय समुदायों की भागीदारी, सतत पर्यटन, बेहतर कनेक्टिविटी और डिजिटल कूटनीति को साथ लेकर चलना होगा।

अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि पर्यटन भारत-श्रीलंका संबंधों में सॉफ्ट पावर का एक बहुआयामी साधन है जो संस्कृति, अर्थव्यवस्था, कनेक्टिविटी और जन-से-जन संपर्क को एक साथ जोड़ता है। यदि दोनों देश इसे रणनीतिक रूप से विदेश नीति से जोड़ते हैं तो पर्यटन भविष्य में भारत-श्रीलंका संबंधों को अधिक स्थायी, जन-केंद्रित और बहुआयामी बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

संदर्भ सूची

1. Nye, J. S. (2004). Soft Power: The Means to Success in World Politics. PublicAffairs.
2. Government of India. India–Sri Lanka Joint Statement: Fostering Partnerships for a Shared Future. Prime Minister's Office.
3. Government of India, Ministry of EÛternal Affairs. Memorandum of Understanding on Cooperation in the Field of Tourism between India and Sri Lanka.
4. High Commission of India, Colombo. India–Sri Lanka Cultural Relation
5. High Commission of India, Colombo. Speech at the Launch of the Ramayana Trail – The Sacred Mission Project.
6. Sri Lanka Tourism Development Authority (SLTDA). Tourist Arrivals from All Countries.
7. Ministry of Foreign Affairs, Foreign Employment - Tourism, Sri Lanka. Economic Affairs Division.
8. Ministry of Foreign Affairs, Foreign Employment - Tourism, Sri Lanka. Sri Lanka's Destination Readiness Reaffirmed in Mumbai.
9. Sri Lanka Tourism Development Authority. Monthly Tourist Arrivals Report, August 2025.
10. Government of India, Ministry of Tourism. India Tourism Data Compendium 2024.
11. https://www.google.com/amp/s/navbharattimes.indiatimes.com/travel/destinations/unknown-facts-about-ram-setu-unsolved-mystery-behind-ram-setu-pul/amp-articleshow/94746283.cms
12. https://www.jagran.com/world/other-the-largest-number-of-tourists-in-sri-lanka-were-from-india-in-2025-40112721.html
13. https://adaderana.lk/news/cmsvjiukd000g356qe7q5bpw8

मनीष कुमार चौरसिया
शोधार्थी राजनीति विज्ञान विभाग,
राजर्षि टंडन महिला महाविद्यालय,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय प्रयागराज
मो. 8887561990

प्रोफेसर नीलिमा सिंह
राजनीति विज्ञान विभाग
राजर्षि टंडन महिला महाविद्यालय
इलाहाबाद विश्वविद्यालय प्रयागराज

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

बौद्ध धर्म का उद्भव, विकास एवं सिद्धांत

प्रो. शम्पा चौधरी, प्रो. जया शर्मा

प्रस्तावना- बौद्ध संस्कृति, विशाल संस्कृति है, जिसका केन्द्र बिन्दु मनुष्य है तथा उसका व्यापक उद्देश्य मनुष्यता की स्थापना है। इसीलिये मानसिक, बौद्धिक, सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक, राजनीतिक आदि जीवन के सभी क्षेत्रों को विकसित कर परम शान्ति प्राप्त कराना बौद्ध धर्म का लक्ष्य है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये जहाँ अन्य धर्म, मनुष्य को ईश्वर, परमात्मा, देवी-देवता, यज्ञ, नदी, वृक्ष आदि की शरण ग्रहण करने का उपदेश करते हैं, वहीं बौद्ध धर्म मनुष्य के अन्दर की ज्ञान प्रज्ञा शक्ति को जगाकर उसे स्वयं अपनी स्वामी बनने का उपदेश करता है। यही बौद्ध धर्म की अन्य धर्मों से भिन्नता और श्रेष्ठता है। स्वतंत्रता, समानता, न्याय, करुणा और बन्धुता के सिद्धान्तों को आधार मानकर चलने वाला बौद्ध धर्म दुनियाँ के लगभग सभी देशों में पहुँचा और फूला-फला। लेकिन कहीं भी एक बूँद तक रक्तपात नहीं हुआ। संसार की कराहती हुई मानवता और विनाश के कगार पर खड़े हुए देशों के लिये बौद्ध धर्म ही शरणस्थली बना। इसीलिये पाश्चात्य देशों के युवक और स्वतंत्र चिन्तक, बौद्ध धर्म की ओर दौड़ रहे हैं जिसका उदाहरण पाश्चात्य देशों में बौद्ध धर्म का बढ़ता हुआ प्रभाव है।

बौद्ध धर्म का परिचय- मानव समाज में प्राचीन समय से लेकर अब तक धर्म का महत्वपूर्ण स्थान रहा है, क्योंकि मानव समाज द्वारा नैतिक नियमों का सकुशल पालन करने से ही मानव का कल्याण होना सम्भव हो सकता है। धर्म, वर्ण व जाति, संस्कारों की व्यवस्था एवं आश्रम व्यवस्था पर ही उस समय समाज एवं मनुष्य दोनों ही आश्रित थे। भारत के सम्बन्ध में लिखने वाले सबसे प्राचीन लेखक यूनानी थे, जिनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण विवरण मेगस्थनीज का है। मानव समाज के पतन व उत्थान एवं विकास में, धर्मों का अत्यन्त महत्वपूर्ण सहयोग रहा है। प्राचीन काल में धर्म सम्बन्धी अवधारणा बहुत विस्तृत थी तथा उन्हीं के माध्यम से सम्पूर्ण मानव जगत नियंत्रित था।

प्राचीन समय से ही भारतीयों का जीवन धर्मगत उत्कण्ठा से प्रभावित रहा है, जिनमें मानवों के आचरण युक्त अभिव्यक्तियों, जगत नियन्ता के प्रति समर्पण की प्रबल भावना तथा नैतिक मूल्यों का समावेश था। उस समय में पूरा राष्ट्र व मानव समाज धर्म के व्यापक आयाम में क्रियाशील रहा है। समाज के लोगों द्वारा धर्म के व्यावहारिक महत्व को समझा एवं कर्तव्यों का उचित पालन किया जाता था, जिसके सहयोग से मानव लौकिक उत्कर्ष के साथ-साथ आध्यात्मिक उत्कर्ष के साथ जीवन व्यतीत करता है। मानव के सम्पूर्ण कर्तव्य एवं कर्म ज्ञान से परिपूर्ण व श्रद्धा से पूर्ण होकर धर्म से ही प्रेरित और गतिमान होते थे, जो उसके पूरे परिवार एवं समाज को संगठित करने में महत्वपूर्ण योगदान देते थे। ऐसी दशा में ज्ञान से ओत प्रोत नैतिक आचार विचार से प्रभावित और सतकर्म से प्रेरित मान्यतायें व स्थापनायें मानव की धर्म परायणता को उद्भासित करती रही है। वास्तव में सुनिश्चित स्वरूप में मानव की ऐसी अभिव्यक्ति उसकी धर्म में आस्था रही है। इस धर्म परायणता से मानव के जिन मूल्यों, आयामों, स्थापनाओं एवं मान्यताओं का बोध होता है, उन्हीं के सदृश्य मानव कर्म करने की ओर प्रवृत्त करता है। बौद्ध धर्म का संबंध बुद्ध तथा उनकी शिक्षाओं से है। बुद्ध का अर्थ होता है - जाग्रत होना। जो जग गया, वही बुद्ध है। बुद्ध व्यक्ति नहीं, मन की अवस्था है। जिस किसी का भी मन पूर्ण रूप से जाग गया वही बुद्ध है। व्यक्ति दो प्रकार से जगता है–

1) स्वयं जगता है,

2) दूसरे के प्रयास से जगता है।

जो स्वयं जगता है, वह बुद्ध है। उसका कोई गुरु नहीं होता है। जगने का मार्ग वह स्वयं खोजता है। ऐसे जगे हुए को हम भगवान भी कहते हैं, क्योंकि उन्होंने राग, द्वेष तथा मोह को भगाने का मार्ग खोज निकाला है। ये तीनों विकार (बुराइयाँ) ही हमें जगने नहीं देते हैं। जिसने इन विकारों को भग्न (नष्ट) कर स्वयं को जगा लिया वही भगवान बुद्ध है। बुद्ध भी दो प्रकार के होते हैं–

क) प्रत्येक बुद्ध

ख) सम्यक् सम्बुद्ध

उपरोक्त दोनों ही बुद्ध स्वयं अपने प्रयास से मार्ग की खोज करते हैं। दोनों के कोई गुरु नहीं होते हैं। दोनों प्रकाशमान, स्थितप्रज्ञ तथा विकारशून्य हैं। दोनों विमुक्त हैं–दुःखों से मुक्त तथा भवचक्र से मुक्त। तब प्रश्न उठता है कि दोनों में अंतर क्या है?

प्रत्येक बुद्ध स्वयं अपने प्रयास से ज्ञान के मार्ग का अन्वेषण करते हैं। वे स्वयं उस मार्ग पर चलकर मुक्त हो जाते हैं और परम सुख का आजीवन अनुभव भी करते रहते हैं लेकिन उस ज्ञान का लाभ अन्य लोगों तक नहीं पहुँच पाता है, क्योंकि उपदेश नहीं करते हैं। सुत्तनिपातपालि (1.3.35, पृष्ठ 92, वि.वि.वि. भाग 48) में कहा गया है–

'एको चे खग्गविसाणकप्पों'

अर्थात् गैंडे के सींग की भांति अकेले विचरण करते हो, इनके द्वारा खोजे गए मार्ग का पता आम जनता को नहीं चल पाता है। प्रत्येक बुद्ध से लोककल्याण नहीं हो पाता है। वे स्वयं तो जग गए होते हैं, लेकिन अन्य जन नहीं जग पाते हैं। दुःखों में जनता पड़ी रहती है। दुःख संतृप्त प्राणी को दुःखों से बाहर निकालने के लिए जो मार्ग दिखाता है वे सम्यक् सम्बुद्ध हैं। वे स्वयं के प्रयास से केवल ज्ञान ही नहीं प्राप्त करते हैं, बल्कि लोक कल्याण के लिए उस ज्ञान का प्रसार भी करते हैं। प्रत्येक बुद्ध में करुणा है तो सम्यक् सम्बुद्ध महाकरुणा के सागर हैं। उस सागर में कोई भी गोते लगा सकता है। सम्यक् सम्बुद्ध द्वारा अन्वेषित मार्ग पर चलकर कोई भी व्यक्ति अपने दुःखों से बाहर जा सकता है और परम सुख का अनुभव कर सकता है। दूसरे प्रकार के व्यक्ति, जिसकी चर्चा आरंभ में की गई है, वह है–ऐसा व्यक्ति जो स्वयं से नहीं जगता है, बल्कि दूसरे के प्रयास से जगता है। ऐसा व्यक्ति अर्हत् होता है। सम्यक् सम्बुद्ध द्वारा अन्वेषित मार्ग पर चलकर स्वयं को वह विकारों से मुक्त कर लेता है। वह मार्ग उसकी स्वयं की खोजी हुई नहीं होती है। कुछ अर्हत् लोक कल्याण के लिए उपदेश करते भी हैं, यथा-सारिपुत्त, मोग्गल्लान, महाकस्सप आदि।

बौद्ध धर्म क्या है?

बुद्ध द्वारा प्रतिपादित धर्म बौद्ध धर्म है। सुत्तपिटक के अन्तर्गत आने वाले खुद्दकनिकाय का चौदहवां ग्रंथ बुद्धवंस में 25 बुद्धों का उल्लेख मिलता है। वे पच्चीस बुद्ध हैं–दीपंकर बुद्ध, कोण्डञ्ञ बुद्ध, मंगल बुद्ध, सुमन बुद्ध, रेवत बुद्ध, सोभित बुद्ध, अनोमदस्सी बुद्ध, पदुम बुद्ध, नारद बुद्ध, पदुमुत्तर बुद्ध, सुमेध बुद्ध, सुजात बुद्ध, पियदस्सी बुद्ध, अत्थदस्सी बुद्ध, धम्मदस्सी बुद्ध, सिद्धत्थ बुद्ध, तिस्स बुद्ध, फुस्स बुद्ध, विपस्सी बुद्ध, सिखी बुद्ध, वेस्सभू बुद्ध, ककुसन्ध बुद्ध, कोणागमन बुद्ध, कस्सप बुद्ध तथा गौतम बुद्ध। परवर्ती पालि ग्रंथों में इन 25 बुद्धों के अलावा तीन और बुद्ध-तण्हंकर, मेधंकर, सरणकर के भी उल्लेख मिलते हैं। गौतम बुद्ध के पूर्ववर्ती अन्य 27 बुद्धों की शिक्षाएँ सम्प्रति अनुपलब्ध हैं। संभवतः वे सभी प्रत्येक बुद्ध रहे होंगे। वर्तमान में जिन बुद्ध की शिक्षाएँ हमें उपलब्ध हैं वे शाक्यमुनि गौतम बुद्ध के हैं। बुद्ध की शिक्षाएँ ही बुद्ध के धर्म हैं। वही बौद्धधर्म है।

बौद्ध धर्म का उद्भव और विकास- बौद्ध धर्म का उद्भव कहाँ से हुआ? गौतम सिद्धार्थ को उरुवेला में पीपल वृक्ष के नीचे जो परम ज्ञान प्राप्त हुआ था, वहीं से बौद्ध धर्म का उद्भव होता है। उस परम ज्ञान को प्रज्ञा कहते हैं। प्रज्ञा प्राप्ति के

पश्चात् गौतम सिद्धार्थ हो जाते हैं 'गौतम बुद्ध', वह पीपल वृक्ष अब 'बोधि वृक्ष' हो जाता है और उरूवेला 'बोध गया' के नाम से प्रसिद्ध हो जाता है। धर्म का आत्मबोध (अभिसंबोधि) हो जाने पर वे सप्ताह भर बोधि वृक्ष के नीचे विमुक्ति सुख का अनुभव करते रहते हैं। तत्पश्चात् रात्रि के प्रथम प्रहर में प्रतीत्यसमुत्पाद का अनुलोम तथा प्रतिलोम मनन करते हैं।

प्रतीत्यसमुत्पाद भगवान बुद्ध द्वारा प्रतिपादित कार्य-कारण सिद्धांत है। इसके माध्यम से भवचक्र की व्याख्या की गई है। महावग्ग के अनुसार, प्रतीत्यसमुत्पाद के मनन करने के उपरांत भगवान के मुख से यह प्रथम उदान निकलता है–

यदा हवे पातुभवन्ति धम्मा, आतापिनो झायतो ब्राह्मणस्स।
अथस्स कंखा वपयन्ति सब्बा, यतो पजानाति सहेतुधम्मन्ति।।

(महावग्गपालि 1.1.1, पृष्ठ 2, वि.वि.वि.भाग 89)

(अर्थात् जब तपस्वी तथा ध्यानी ब्राह्मण को धर्म का प्रादुर्भाव होता है तब उसकी सारी शंकाएँ नष्ट हो जाती हैं क्योंकि वह धर्म के सहेतुक स्वभाव को जान लेता है।)

यहीं से बौद्ध धर्म का प्रादुर्भाव होता है। लोक में सद्धर्म के आगमन के साथ ही समाज को सुव्यवस्थित करने की धारणा भी जन्म लेती है। अपने प्रथम उदान में भगवान ने ब्राह्मण शब्द का प्रयोग किया और वहाँ यह भी बताया कि ब्राह्मण कौन है? जो तपस्वी तथा ध्यानी है, जो संदेह से रहित है और जो सहेतुक धर्म के ज्ञाता है वही ब्राह्मण है। उन्होंने जन्मजात वर्ण व्यवस्था का खंडन करते हुए कर्म के अनुसार व्यक्ति को समाज में स्थान तथा सम्मान प्रदान किया। भगवान रात्रि के मध्यम प्रहर में पुनः प्रतीत्यसमुत्पाद का अनुलोम तथा प्रतिलोम मनन करते हैं। मनन करने के उपरांत यह उदान कहते हैं–

'जब तपस्वी तथा ध्यानी ब्राह्मण को धर्म का प्रादुर्भाव होता है तब प्रत्ययों के क्षय (नष्ट) को जाने के कारण उसकी समस्त शंकाएँ समाप्त हो जाती हैं। (थेरवाद साहित्य : एक परिचय 1.1.2, पृष्ठ 2, सम्यक् प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013) फिर रात्रि के अंतिम प्रहर में तीसरी बार पुनः प्रतीत्यसमुत्पाद का अनुलोम तथा प्रतिलोम मनन करते हैं। इस बार उनके मुख से यह उदान निकलता है–

'जब तपस्वी तथा ध्यानी ब्राह्मण को धर्म का प्रादुर्भाव होता है तब मार की सेना उसी तरह भाग जाती है जिस तरह सूर्य के प्रकाशित होने पर अंधकार।' (थेरवाद साहित्य : एक परिचय 1.1.3, पृष्ठ 2, सम्यक् प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013)

यहाँ मार सेना से तात्पर्य है–हमारे अंदर के राग, द्वेष, क्रोध, अहंकार आदि अकुशल धर्म। ये वे विकार हैं जो हमें अंदर ही अंदर मारते रहते हैं, परेशान करते रहते हैं और अच्छे कार्यों को करने में विघ्न डालते रहते हैं।

अस्तु! भगवान बुद्ध ने अभी उपदेश देना आरंभ नहीं किया है। वे बोधगया में बोधि वृक्ष के नीचे आसन लगाए बैठे हैं। प्रकृति की गोद में एकांत वातावरण में एक ही आसन पर बैठे उपरोक्त तीन उदानों उनके मुख से निकलते हैं। इन उदानों में भगवान के मूल सिद्धांत छिपे हुए हैं–

(1) सभी धर्म सहेतुक है अर्थात् बिना हेतु (कारण) के किसी कार्य की उत्पत्ति नहीं होती है। सभी धर्म हेतु से युक्त हैं। बिना हेतु के कुछ भी घटित नहीं होता। अगर दुःख है तो उसका कारण है। अकारण दुःख उत्पन्न नहीं होता है। अगर भवचक्र है तो उसका भी कारण है। सभी सहेतुक हैं, केवल निर्वाण (परम सुख) को छोड़कर। इसके माध्यम से बुद्ध ने लोक में सर्वप्रथम कार्य-कारण सिद्धांत को स्थापित किया है।

(2) प्रत्ययों के क्षय (नष्ट) होने से ही हमारी शंकाए समाप्त हो सकती है। दुःख तथा भवचक्र के जो प्रत्यय (कारण) हैं उन्हें नष्ट करके ही हम निर्द्वन्द्व हो सकते हैं, परम सुख को प्राप्त कर सकते हैं। दुःख का कारण तृष्णा तथा भवचक्र का कारण अविद्या है।

(3) वस्तु के सहेतुक स्वभाव को जान लेने तथा प्रत्ययों को नष्ट करके जब प्रज्ञा रूपी धर्म का प्रादुर्भाव होता है तब राग, द्वेष, मोह, क्रोध, अहंकार रूप में विद्यमान मार की सेना छिन्न-भिन्न हो जाती है। मार के मरते ही अमृत पद निर्वाण का अधिगम होता है। भगवान बुद्ध अजपाल बरगद वृक्ष के नीचे सप्ताह भर बिताने के बाद मुचलिन्द वृक्ष के नीचे एक आसन पर बैठकर विमुक्ति सुख का अनुभव करते हैं। वहाँ भी उन्होंने एक उदान कहा उस उदान में परमसुख को बतलाते हुए कहा

गया है—

'संतुष्ट श्रुतधर्म को देखना एकांत सुख है। लोक में प्राणियों के प्रति संयम रखना निर्द्वंद्व सुख है। लोक में इच्छाओं का अतिक्रमण (विनाश) वैराग्य सुख है। 'मैं हूं' ऐसे अभिमान का त्याग ही परम सुख है।' (थेरवाद साहित्य : एक परिचय 1.3.5, पृष्ठ 4, सम्यक् प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013)

मुचलिन्द वृक्ष के नीचे सप्ताह भर व्यतीत करने के बाद भगवान राजायतन वृक्ष के नीचे एक आसन से विमुक्ति सुख का अनुभव करते हुए बैठे रहते हैं। उस समय उत्कल देश के दो बनिये तपुस्स और भल्लिक भगवान के पास आकर दो वचनों से भगवान के प्रथम उपासक होते हैं। वे कहते हैं -

'भन्ते! हम दोनों भगवान तथा धर्म की शरण जाते हैं। आज से भगवान हम दोनों को आजीवन शरणागत उपासक धारण करें।' (थेरवाद साहित्य : एक परिचय 1.4.6, पृष्ठ 5, सम्यक् प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013) लोक में वही दोनों दो वचनों से प्रथम उपासक होते हैं। यहीं से उपासक संघ के रूप में बौद्ध संघ का निर्माण होता है। इसके बाद भगवान बुद्ध ने वाराणसी के ऋषिपतन मृगदाय (सारनाथ) में पंचवर्गीय भिक्षुओं को अपना प्रथम उपदेश देते हैं, जो धर्मचक्रप्रवर्तन के नाम से जाना जाता है। वे पाँच भिक्षु हैं—कोण्डञ्ञ, वप्प, भद्दिय, महानाम तथा अस्सजि। इस धर्मचक्रप्रवर्तन में सुगत बुद्ध ने उन भिक्षुओं को मध्यम मार्ग तथा चार आर्य सत्यों का उपदेश किया। उन पचंवर्गीय भिक्षुओं को भगवान से प्रव्रज्या तथा उपसम्पदा ग्रहण करते ही भिक्षु संघ का निर्माण हो जाता है उसके बाद वाराणसी के श्रेष्ठीपुत्र यस भिक्षु संघ में प्रवर्जित होता है। श्रेष्ठी गृहपति भी भगवान के धर्मोपदेश को सुनकर तीन वचनों (बुद्ध, धम्म, संघ) से प्रथम उपासक होते हैं। उसके बाद यस की माता तथा पत्नी (पूर्व) बौद्ध शासन की प्रथम उपासिकाएँ होती हैं। इन दो उपासिकाओं के साथ ही बौद्ध धर्म में उपासिका संघ का भी निर्माण हो जाता है यहीं से बौद्ध धर्म क्रमबद्ध रूप से अपनी विकास यात्रा आरंभ करती है।

यस को प्रवर्जित देखकर यस के चौवन गृही मित्र भी बौद्ध संघ में सम्मिलित होकर अर्हत्व को प्राप्त करते हैं। इससे पूर्व पंचवर्गीयभिक्षु तथा यस को भी अर्हत्व की प्राप्ति हो चुकी है। इस तरह अत्यंत अल्प समय में ही बुद्ध सहित एकसठ (61) अर्हत् बौद्ध शासन में हो जाते हैं। अब लोककल्याण के लिए सम्यक् सम्बुद्ध अपने सभी साठ भिक्षुओं को चारिका (समाज में घूम-घूम कर उपदेश) करने को कहते हैं।

चरथ, भिक्खवे, चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। (महावग्गपालि 1.8.32, पृष्ठ 25, वि.वि.वि. भाग 89)

(अर्थात् हे भिक्षुओ! बहुत लोगों के हित के लिए, बहुत लोगों के सुख के लिए, लोक पर अनुकम्पा करने के लिए, देवताओं और मनुष्यों के अर्थ, हित तथा सुख के लिए विचरण करो।)

तदनन्तर उरूवेल कश्यप, नदी काश्यप एवं गया कश्यप सहित उनके एक हजार शिष्यों का बौद्ध संघ में सम्मिलित होने से एवं सारिपुत्त, मोग्गल्लान, आनन्द, उपालि, महाकस्सप आदि का बौद्ध शासन में प्रवर्जित होने से बौद्ध धर्म अत्यंत लोकप्रिय हो जाता है फिर महाप्रजापति गौतमी के संघ में प्रवेश होने से भिक्षुणी संघ का निर्माण होता है। बौद्ध शासन में महिलाओं के प्रवेश मिलने पर बौद्ध धर्म और तीव्र गति से विकसित होता है। बुद्ध के जीवन काल में बौद्ध धर्म के विकास में श्रावस्ती के अनाथपिंडक, मगध के बिम्बिसार तथा अजातशत्रु, कौसल के प्रसेनजित आदि का यथेष्ट योगदान हैं। इसके अलावा आम जनता की भाषा 'पालि' की भी बौद्ध धर्म के प्रसार एवं विकास में महत्वपूर्ण भूमिका दिखती है।

लोक कल्याण भगवान बुद्ध का लक्ष्य था। इस लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु वे आजीवन 45 वर्षों तक गांव-गांव, नगर-नगर, जनपद-जनपद चारिका कर उपदेश करते हुए अन्त में कुशीनगर में अंतिम सांस लेते हैं। भगवान की मृत्यु को 'महापरिनिर्वाण' कहा जाता है। शास्ता बुद्ध द्वारा प्रज्ञप्त समस्त उपदेश मौखिक थे जब तक वे जीवित थे। भिक्षुगण अपनी समस्याओं का निवारण उनके समक्ष उपस्थित होकर कर लेते थे परंतु उनकी मृत्यु के पश्चात् बुद्ध वचन को संग्रह करने की एक विकट समस्या उत्पन्न हुई, क्योंकि अपने उपदेश को भगवान ने न तो एक व्यक्ति को, न ही व्यक्तियों के एक समूह को और न ही एक विशेष स्थान पर ही उपदिष्ट किया था। यह भिक्षुओं के सामने एक समस्या थी। इस समस्या के समाधान हेतु भगवान

के महापरिनिर्वाण के तीन माह पश्चात् मगधराज अजातशत्रु के शासनकाल में महाकश्यप स्थविर की अध्यक्षता में राजगृह में वैभारगिरी के सप्तपणी गुहा द्वार पर एक सभा (संगीति) का आयोजन किया गया। इस संगीति को प्रथम बौद्ध संगीति के नाम से जाना जाता है। इस संगीति में बुद्धवचन का संगायन किया गया। सम्पूर्ण बुद्धवचन को विनय तथा धम्म में विभाजित कर संकलित किया गया। कालांतर में तीसरी बौद्ध संगीति में धम्म को सुत्त तथा अभिधम्म में बांट कर सम्पूर्ण बुद्धवचन को तीन भागों में विभाजित कर 'त्रिपिटक' के रूप में संकलित कर लिया गया। त्रिपिटक के ये तीन मुख्य भाग हैं–

विनय पिटक, सुत्त पिटक तथा अभिधम्म पिटक। विनय पिटक में मुख्यतः भिक्षु तथा भिक्षुणियों के आचरण संबंधी नियम हैं। सुत्त पिटक में तथागत के वे लोकोपकारी उपदेश हैं जिसे उन्होंने व्यावहारिक जीवन में व्याप्त उपमा, कथा, दृष्टांत, उदाहरण आदि के माध्यम से देशना की थीं। अभिधम्म पिटक में दर्शन विषयक भगवान के गूढ़ और गम्भीर उपदेश हैं।

प्रथम संगीति में निर्धारित विनय संबंधी नियमों के अनुसार भिक्षुगण सौ (100) वर्षों तक निर्बाध गति से जीवन व्यतीत करते रहे। उसके बाद वैशाली के वज्जिपुत्तक भिक्षु दस विनय के विपरीत आचरण करने लगे, जिन्हें दसवत्थूनि के नाम से जाना जाता है। दसवत्थूनि को लेकर बौद्ध संघ में मतभेद उत्पन्न हो गया। इसके निराकरण के लिए वैशाली में एक सभा का आयोजन किया गया। परिषद् ने दसवत्थूनि को विनय विरुद्ध घोषित कर दिया। वज्जिपुत्तक भिक्षुओं द्वारा परिषद् में लिए गए निर्णय से सहमत नहीं हुए। राजा कालाशोक के शासनकाल में रेवत महास्थविर की अध्यक्षता में वालुकाराम में एक धर्मसभा का आयोजन किया गया, जिसे द्वितीय बौद्ध संगीति के नाम से जाना जाता है। इस संगीति में पुनः बुद्धवचन का संगायन किया गया, जैसा कि प्रथम बौद्ध संगीति में सग्रंहित किया गया था। इस संगीति के फलस्वरूप बौद्ध संघ दो भागों में विभाजित हो गया। वज्जिपुत्तक ने महासंघ नामक एक अलग बौद्ध संघ बनाया जिसके अनुयायी 'महासंघिक' कहलाये। विनय को पूर्ण रूप से अनुपालन करनेवाले भिक्षु 'स्थविरवादी' के नाम से जाने गये। सम्राट अशोक के शासन काल (तीसरी सदी ईसापूर्व) तक बौद्ध संघ अठारह निकायों में विभक्त हो गया था। इनमें बारह निकाय स्थविरवादी परम्परा से तथा शेष छह निकाय महासांघिक परम्परा से सम्बद्ध थे। इन अठारह निकायों में से स्थविरवाद प्राचीनतम निकाय था जिसके अनुयायी भिक्षु बुद्धवाणी को मौखिक परम्परा से सुरक्षित रखे हुए थे। राजा अशोक के निर्देश पर स्थविरवादी भिक्षुओं को छोड़कर अन्य सत्रह निकायों के धर्मावलम्बियों को बौद्ध संघ से निष्कासित किया गया। तत्पश्चात् मोग्गलिपुत्ततिस्स महास्थविर की अध्यक्षता में तथागत के महापरिनिर्वाण के 235वें वर्ष में राजा अशोक के संरक्षण में पाटलिपुत्र के अशोकाराम में बुद्धवचन के संग्रह हेतु एक सभा का आयोजन किया गया, जिसे तृतीय बौद्ध धर्मसंगीति के रूप में स्मरण किया जाता है। इस संगीति में पुनः बुद्धवचन का संगायन किया गया। संगीति के पश्चात् सम्राट अशोक ने नौ प्रदेशों में अलग-अलग धर्मदूतों को भेजकर बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार में अद्भुत योगदान दिया। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि उन्होंने विदेशों में भी इस श्रेष्ठ धर्म की स्थापना हेतु भारत से भिक्षुओं को भेजा। सुवण्णभूमि (वर्तमान म्यांमार) में उन्होंने सोण तथा उत्तर इन दो स्थविरों को भेजा और लंकाद्वीप (वर्तमान श्रीलंका) में अपने पुत्र महामहिन्द स्थविर के साथ इट्ठिय, उत्तिय, सम्बल तथा भद्दसाल इन चार स्थविरों को भी भेजा। इस तरह ईसापूर्व तीसरी सदी में ही बौद्ध धर्म का प्रवेश विदेशों में हो चुका था।

तत्पश्चात् ईसापूर्व प्रथम शताब्दी में राजा मिलिन्द के द्वारा बौद्ध धर्म दर्शन का सम्यक् संपोषण किया गया। प्रथम शताब्दी में कुशानवंश के राजा कनिष्क के शासन काल में भारत में चतुर्थ बौद्ध संगीति हुई। इस संगीति में बौद्ध धर्म महायान तथा हीनयान के रूप में दो शाखाओं में विभाजित हो गया। स्थविरवाद को हीनयान कहा गया और बौद्ध धर्म की नवीन शाखा महायान कहलायी। राजकीय संरक्षण महायान को प्राप्त होने के कारण महायान शाखा फली फूली। गुप्तकाल के शासक कुमारगुप्त ने पाँचवीं शताब्दी में नालंदा विश्वविद्यालय का निर्माण कराया जहाँ मुख्य रूप से बौद्ध धर्म दर्शन का अध्ययन-अध्यापन होता था। सातवीं शताब्दी में राजा हर्षवर्धन ने अपनी राजधानी कन्नौज में एक विशाल बौद्ध सम्मेलन किया तथा अनेकों स्तूप बनवाये। आठवीं शताब्दी में पाल वंश के संस्थापक गोपाल ने ओदन्तपुरी विश्वविद्यालय तथा उनके पुत्र धर्मपाल ने विक्रमशिला विश्वविद्यालय व बंगाल के राजा रामपाल (1084-1130 ई.) ने जगदल नामक बौद्ध विश्वविद्यालय

का निर्माण कर बौद्ध धर्म दर्शन के प्रचार-प्रसार में अविस्मरणीय योगदान दिया।

निष्कर्ष- बौद्ध धर्म एक सद्धर्म है जिसका मूल उद्देश्य मनुष्य को दुःख, अज्ञान, तृष्णा और आसक्ति से मुक्त कर सत्य, करुणा, अहिंसा और नैतिक जीवन की ओर प्रेरित करना है। सद्धर्म का अर्थ है–ऐसा धर्म जो व्यक्ति को सत्य एवं कल्याण के मार्ग पर ले जाए एवं जीवन को श्रेष्ठ बनाए। यहाँ अंधविश्वास, कर्मकांड और आडंबर का कोई स्थान नहीं वरन् स्वतंत्र चिंतन, नैतिक आचरण, आत्मसंयम, करुणा, अहिंसा एवं प्रज्ञा को महत्व दिया गया। बौद्ध संघ की नींव स्वतंत्रता, समानता तथा भ्रातृत्व है। इस धर्म ने लोगों को समानता एवं सह-अस्तित्व का आधार प्रदान कर नैतिक स्तर को ऊँचा उठाने एवं जनजीवन में सदाचार तथा सच्चरित्रता की भावना का विकास किया। बौद्ध धर्म ने भारत में ही नहीं अपितु विश्व संस्कृति के विभिन्न पक्षों को भी प्रभावित किया। युद्ध विजय की नीति को त्याग कर धम्म विजय की नीति को अपनाते हुए लोक कल्याण का आदर्श एवं संदेश विश्व के सम्मुख प्रस्तुत किया। बुद्ध का धम्म पूर्ण रूप से तर्क एवं विज्ञान पर आधारित एक धर्म है जिससे तर्कशास्त्र के विकास के साथ-साथ दर्शन में शून्यवाद तथा विज्ञानवाद की दार्शनिक पद्धतियों का उदय हुआ। संपूर्ण विश्व में इस धर्म के संदेशों का खूब प्रचार-प्रसार हुआ तथा आज भी यह धर्म विश्व का सबसे तेजी से बढ़ने वाला धर्म है। आज यह विश्व का चौथा सबसे बड़ा धर्म बन चुका है। भारत में भी इसका प्रचार-प्रसार प्रचुर मात्रा में हुआ है। ऐसा विश्वास किया जा रहा है कि बुद्ध के ब्रह्मविहार अर्थात् मैत्री, करुणा, मुदिता, प्रज्ञा एवं शील के माध्यम से फिर भारत आप्लावित होगा और विश्व गुरु बनकर संसार को सुख, शान्ति और सद्भाव का मार्ग दिखाएगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

- बेवर, मैक्स, रिलिजन्स अन इण्डिया, 1997, पृष्ठ 53-65
- डॉ. हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा - धर्म दर्शन की रूपरेखा, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, संस्करण 2014, पृष्ठ 2
- के.सी. श्रीवास्तव - प्राचीन भारत का इतिहास, यूनाइटेड बुक डिपो, इलाहाबाद, संस्करण 2001-02, पृष्ठ 292
- मज्झिम निकाय, 1.1.1 5 दीघनिकाय, 3.5
- डॉ. गोविन्द चन्द्र पाण्डेय - बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, पृष्ठ 82, 83
- डॉ. हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा - धर्म दर्शन की रूपरेखा, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, संस्करण 2014, पृष्ठ 2

प्रो. शम्पा चौधरी
विद्यावती मुकन्दलाल गर्ल्स कॉलेज,
दयानन्द नगर, गाजियाबाद-201001
मो0 : 9650592593
प्रो. जया शर्मा
आर्य कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
स्वर्ग आश्रम रोड, हापुड़
मो0 : 9760577339

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

राम और हनुमान की वीरतापूर्ण एवं भक्तिपूर्ण भूमिकाएँ

चित्रांश खरे

हिंदी साहित्य के भक्तिकाल में सगुण भक्ति के अंतर्गत रामभक्ति धारा की जो सशक्त परंपरा प्रवाहित हुई, उसके केंद्र में गोस्वामी तुलसीदास और उनका महान ग्रंथ रामचरितमानस स्वाभाविक रूप से प्रतिष्ठित दिखाई देते हैं। तुलसीदास के साहित्यिक अवदान पर दृष्टि डालने से स्पष्ट होता है कि उनकी भक्ति का प्रमुख स्वरूप दास्य भाव है, किंतु उन्होंने अपने ग्रंथों में किसी एक रस को प्रधानता न देकर विविध रसों का समावेश किया है। उनके काव्य में वीर रस का उद्घाटन भी अत्यंत प्रभावशाली एवं रसात्मक ढंग से हुआ है। जब श्रीराम के भक्तिपूर्ण स्वरूप की चर्चा की जाती है तो बालकाण्ड में उनकी गुरु-भक्ति, वनवास के दौरान संत-मुनियों के प्रति उनका श्रद्धा एवं भक्तिभाव तथा युद्ध के पूर्व भगवान शिव के प्रति उनकी भक्ति का अत्यंत भावपूर्ण वर्णन मिलता है। महाप्राण निराला ने भी अपनी प्रसिद्ध कविता राम की शक्तिपूजा में राम को महाशक्ति के समक्ष एक ऐसे अनन्य भक्त के रूप में चित्रित किया है, जो आवश्यकता पड़ने पर पुष्प के स्थान पर अपना नेत्र अर्पित करने के लिए भी तत्पर हो जाता है।राम क्षत्रिय कुल में जन्मे, कुशल योद्धा और अद्वितीय धनुर्धर हैं। ऐसी स्थिति में उनके वीरतापूर्ण कार्यों का वर्णन रामकथा में सर्वत्र प्राप्त होता है। शिवधनुष भंग करने से लेकर असुरों के विनाश तक की घटनाएँ श्रीराम के अद्भुत शौर्य और पराक्रम की साक्षी हैं।हनुमान स्वयं को सदैव श्रीराम का दास मानते हैं और उनकी भक्ति का स्वरूप भी दास्य भाव से परिपूर्ण है। सुंदरकाण्ड में हनुमान के शौर्य और पराक्रम का अद्भुत वर्णन प्राप्त होता है। वे जहाँ भी अपने व्यक्तित्व का परिचय देते हैं, स्वयं को श्रीराम का सेवक, भक्त अथवा दास ही कहते हैं। गोस्वामी तुलसीदास ने हनुमान को 'महावीर' कहकर उनकी वीरता का अद्वितीय वर्णन किया है। वे एक ओर अद्भुत पराक्रमी हैं तो दूसरी ओर भक्त-शिरोमणि के रूप में भी प्रतिष्ठित हैं।

राम की वीरतापूर्ण भूमिका- वाल्मीकि रामायण के अनुसार भगवान श्रीराम की कद-काठी और शारीरिक बनावट का वर्णन करते हुए उन्हें 'चतुष्किष्कुसमच्छ्रायः' कहा गया है।[1] अर्थात उनका शरीर अत्यंत ऊँचा और प्रभावशाली था तथा उन्हें 'आजानुबाहु' भी कहा गया है। यह वर्णन महर्षि वाल्मीकि उस प्रसंग में प्रस्तुत करते हैं, जब हनुमान अशोक वाटिका में माता सीता के समक्ष श्रीराम की कद-काठी और स्वरूप का वर्णन करते हुए उन्हें यह विश्वास दिलाते हैं कि वे वास्तव में श्रीराम के दूत हैं। श्रीराम का यह प्रभावशाली व्यक्तित्व एक महान योद्धा और वीर पुरुष का परिचायक है। जब महर्षि विश्वामित्र श्रीराम को यज्ञ की रक्षा के लिए अपने साथ ले जाते हैं, तब श्रीराम ताड़का का वध कर ऋषि के यज्ञ की रक्षा करते हैं। गोस्वामी तुलसीदास लिखते हैं–

एकहि बान प्रान हरि लीन्हा।
दीन जानि तेहि निज पद दीन्हा॥[2]

सीता स्वयंवर के समय जब शिवधनुष को कोई राजा हिला तक नहीं सका, तब श्रीराम ने न केवल उसे सहजता से उठाया, बल्कि प्रत्यंचा चढ़ाते समय उसका भंजन भी कर दिया। तुलसीदास इस प्रसंग का वर्णन करते हुए कहते हैं–

तमकि ताकि तकि सिवधनु धरहीं।
उठइ न कोटि भाँति बलु करहीं॥
जिन्ह के कछु बिचारु मन माहीं।
चाप समीप महीप न जाहीं॥[3]

अनेक बलशाली राजा इस प्रतियोगिता में असफल रहे, किंतु श्रीराम ने अत्यंत सहजता से शिवधनुष का भंजन कर दिया–

लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़ें।
काहुँ न लखा देख सबु ठाढ़ें॥
तेहि छन राम मध्य धनु तोरा।
भरे भुवन धुनि घोर कठोरा॥[4]

श्रीराम के बाण अमोघ हैं, अर्थात जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उनका संधान किया जाता है, वह उद्देश्य पूर्ण होकर ही रहता है। राम ने ताड़का का वध किया और बालि का वध भी अपने एक ही बाण से किया। रामचरितमानस में बालि-वध के प्रसंग में कहा गया है–

बहु छल बल सुग्रीव कर हियँ हारा भय मानि।
मारा बालि राम तब हृदय माझ सर तानि॥[5]

श्रीराम ने कभी शब्दों के माध्यम से अपने बल का प्रदर्शन नहीं किया, बल्कि अपने बाहुबल और बाणों के माध्यम से अपनी वीरता को सिद्ध किया। किंतु जब उन्होंने ऋषि-मुनियों की अस्थियों के ढेर देखे, तब उनका हृदय राक्षसों के अत्याचार से व्यथित हो उठा और उन्होंने प्रतिज्ञा की–

निशिचर हीन करौं महि, भुज उठाइ पन कीन्ह।[6]

अर्थात श्रीराम ने अपनी भुजाएँ उठाकर प्रतिज्ञा की कि वे इस पृथ्वी को राक्षसों से विहीन कर देंगे।

जब लंका पर आक्रमण करने के लिए श्रीराम ने तीन दिनों तक समुद्र से विनय की, किंतु समुद्र ने मार्ग प्रदान नहीं किया, तब राम क्रोधित हो उठे और उन्होंने अपने धनुष पर बाण चढ़ाने का आदेश दिया–

लछिमन बान सरासन आनू।
सोषौं बारिधि बिसिख कृसानु॥[7]

श्रीराम के बाण संधान की तैयारी देखकर समुद्र देव शरणागत हो गए और उन्होंने लंका तक पहुँचने का मार्ग बताया।श्रीराम ने अपने संपूर्ण जीवन में एक क्षत्रिय योद्धा के रूप में वीर पुरुष की भूमिका का निर्वहन किया। यद्यपि वे वनवास के समय तपस्वी के वेश में रहे, किंतु उनके कंधे पर धनुष और बाणों से भरा तुणीर सदैव विद्यमान रहा। धर्म की रक्षा के लिए जब भी आवश्यकता पड़ी, उन्होंने अपने धनुष पर बाणों का संधान किया। क्षत्रिय धर्म के नाते जिसने भी उन्हें युद्ध के लिए ललकारा, उसे उन्होंने उसके कर्मों के अनुरूप समुचित परिणाम प्रदान किया।

राम की भक्तिपूर्ण भूमिका- यद्यपि श्रीराम अयोध्या के राजकुमार, महाराज दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र, महान योद्धा तथा अनेक विद्याओं के ज्ञाता थे, फिर भी उनके व्यक्तित्व में विनम्रता, श्रद्धा और भक्ति का अद्भुत समन्वय दिखाई देता है। वे अपने गुरु वशिष्ठ का सदैव सम्मान करते थे। जब उन्हें गुरु विश्वामित्र का सान्निध्य प्राप्त हुआ, तब उन्होंने उनकी आज्ञा का पालन करते हुए उनकी सेवा को भी अपना धर्म माना। जनकपुर में धनुषयज्ञ के अवसर पर जब गुरु विश्वामित्र शयन के लिए गए, तब श्रीराम और लक्ष्मण दोनों उनके चरण दबाने लगे–

मुनिवर शयन कीन्ह तब जाई।
लगे चरन चाँपन दोउ भाई॥

बार बार मुनि आयसु दीन्हा।
रघुबर जाइ शयन तब कीन्हा॥[8]

यह प्रसंग श्रीराम की गुरु-भक्ति, विनम्रता और सेवा-भाव का अत्यंत सुंदर उदाहरण है। राम के वनवास की पूरी कथा भी श्रद्धा और भक्तिभाव से परिपूर्ण है। श्रीराम स्वयं मानव रूप में विभिन्न ऋषियों और मुनियों के आश्रमों में गए, उनका सम्मान किया तथा उनसे आशीर्वाद प्राप्त किया। चित्रकूट में अत्रि ऋषि के आतिथ्य को स्वीकार करते हुए उन्होंने उनका आशीर्वाद प्राप्त किया। इसी प्रसंग में माता सीता को भी सती अनसूया से पतिव्रत धर्म का उपदेश प्राप्त होता है। रावण पर विजय के पूर्व श्रीराम ने भगवान शंकर की आराधना की। समुद्र तट पर शिवलिंग की स्थापना कर उन्होंने विधिपूर्वक भगवान शिव की पूजा की और शिव के प्रति अपनी गहन श्रद्धा का उद्घोष किया—

लिंग थापि विधिवत करि पूजा।
शिव समान प्रिय मोहि न दूजा॥
शिव द्रोही मम भगत कहावा।
सो नर सपनेहुँ मोहि न भावा॥[9]

गोस्वामी तुलसीदास ने राम और शिव के माध्यम से वैष्णव और शैव परंपराओं के बीच अद्भुत समन्वय स्थापित किया है। श्रीराम जहाँ भगवान शिव के अनन्य भक्त के रूप में दिखाई देते हैं, वहीं भगवान शिव भी स्वयं को श्रीराम का भक्त मानते हैं। धनुषयज्ञ के पश्चात जब परशुराम क्रोधित होकर सभा में उपस्थित होते हैं, तब लक्ष्मण और परशुराम के बीच तीखे संवाद होते हैं। इस प्रसंग में श्रीराम अत्यंत विनम्र और भक्तिभाव से परिपूर्ण दिखाई देते हैं। जब परशुराम ने क्रोधपूर्वक पूछा कि शिवधनुष किसने तोड़ा है, तब श्रीराम विनम्रतापूर्वक कहते हैं—

नाथ संभुधनु भंजनिहारा।
होइहि केउ एक दास तुम्हारा॥[10]

अर्थात शिवधनुष को भंग करने वाला कोई आपका ही दास होगा। यदि उसके लिए कोई आज्ञा हो तो मैं उसे पूर्ण करने के लिए उपस्थित हूँ। यह प्रसंग श्रीराम के विनम्र, भक्तिपूर्ण और मर्यादित व्यक्तित्व को उद्घाटित करता है।

हनुमान की वीरतापूर्ण भूमिका- हनुमान को 'महावीर' कहा जाता है। सुंदरकाण्ड के मंगलाचरण में ही गोस्वामी तुलसीदास उनका वर्णन करते हुए लिखते हैं— 'अतुलित बलधामं हेमशैलाभदेहं', अर्थात वे अतुलनीय बल के धाम हैं। इससे स्पष्ट होता है कि हनुमान अद्भुत शक्ति और पराक्रम से संपन्न हैं। यही अतुलित शक्ति उन्हें महावीर के रूप में प्रतिष्ठित करती है। हनुमान को अपने बल को भूल जाने का शाप प्राप्त था। जब जामवंत ने उन्हें उनके सामर्थ्य का स्मरण कराया, तब हनुमान का आत्मविश्वास जागृत हो उठा—

कहइ रीछपति सुनु हनुमाना।
का चुप साधि रहेहु बलवाना॥
पवन तनय बल पवन समाना।
बुधि बिबेक बिग्यान निधाना॥[11]

जामवंत के वचनों से प्रेरित होकर हनुमान ने समुद्र को एक ही छलाँग में पार करने का संकल्प लिया। लंका के द्वार पर पहुँचने पर उन्होंने लंकिनी को एक प्रहार से परास्त कर दिया—

मुष्टिका एक महा कपि हनी।
रुधिर बमत धरनीं ढनमनी॥[12]

सुंदरकाण्ड हनुमान की वीरता और पराक्रम की घटनाओं से परिपूर्ण है। माता जानकी का पता लगाने के पश्चात जब हनुमान अशोक वाटिका में पहुँचते हैं, तब वे वहाँ राक्षसों का संहार करते हैं और रावण के पुत्र अक्षयकुमार का भी वध कर देते हैं—

पुनि पठयउ तेहिं अच्छकुमारा।
चला संग लै सुभट अपारा॥
आवत देखि बिटप गहि तर्जा।
ताहि निपाति महाधुनि गर्जा॥[13]

अक्षयकुमार के वध के पश्चात हनुमान का युद्ध मेघनाद से भी होता है। इस भीषण युद्ध में हनुमान अपने प्रहार से मेघनाद को मूर्छित कर देते हैं–

मुष्टिका मारि चढ़ा तरु जाई।
ताहि एक छन मुरुछा आई॥[14]

जब हनुमान रावण के समक्ष उपस्थित होते हैं, तब वे उसके समक्ष निभीक होकर श्रीराम का संदेश प्रस्तुत करते हैं। उनका व्यक्तित्व वीरता से परिपूर्ण है। वे केवल शक्ति और पराक्रम के प्रतीक ही नहीं, बल्कि बुद्धि, विवेक और विनय के भी निधान हैं।

हनुमान की भक्तिपूर्ण भूमिका- रामकथा में हनुमान का पदार्पण किष्किंधाकाण्ड में होता है। जब श्रीराम और लक्ष्मण ऋष्यमूक पर्वत की ओर बढ़ते हैं, उस समय सुग्रीव अपने बड़े भाई बालि के भय से अपने मंत्रियों–हनुमान, जामवंत आदि–के साथ वहाँ निवास कर रहे होते हैं। सुग्रीव श्रीराम और लक्ष्मण को देखकर शंकित हो उठते हैं कि कहीं बालि ने उन्हें मारने के लिए तो किसी को नहीं भेजा है। इस रहस्य को जानने के लिए वे हनुमान को उनके पास भेजते हैं। हनुमान विप्र का रूप धारण कर श्रीराम के पास जाते हैं और उनसे परिचय प्राप्त करते हैं। श्रीराम को पहचानते ही हनुमान उनके चरणों में गिर पड़ते हैं और उनका हृदय भक्ति से भर उठता है–

प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना।
सो सुख उमा कहि नहिं बरना॥[15]

इसके पश्चात हनुमान श्रीराम और सुग्रीव की मित्रता का माध्यम बनते हैं। लंका जाने पर भी माता जानकी के समक्ष उनका स्वरूप पूर्णतः दास्य भाव से परिपूर्ण दिखाई देता है–

राम दूत मैं मातु जानकी।
सत्य सपथ करुनानिधान की॥[16]

हनुमान रामचरितमानस में बड़े से बड़ा कार्य करते हुए भी सदैव श्रीराम का नाम लेते हैं। वे स्वयं राम-भक्ति में लीन रहते हैं और उनसे मिलने वाले प्रत्येक व्यक्ति को भी श्रीराम की शरण में जाने की प्रेरणा मिलती है। लंकिनी हनुमान से कहती है–

प्रबिसि नगर कीजै सब काजा।
हृदयँ राखि कोसलपुर राजा॥[17]

माता सीता भी हनुमान के प्रति स्नेह और आशीर्वाद व्यक्त करते हुए कहती हैं–

रघुपति चरन हृदयँ धरि तात मधुर फल खाहु॥

हनुमान अपने संपूर्ण पौरुष और पराक्रम का श्रेय कभी स्वयं को नहीं देते। वे अपने प्रत्येक कार्य को श्रीराम की कृपा का परिणाम मानते हैं। माता सीता की सुधि लेकर जब वे श्रीराम के पास लौटते हैं और अपने कार्यों का विवरण देते हैं, तब वे अत्यंत विनम्रता से कहते हैं–

नाथ न कछू मोरि प्रभुताई।
सो सब तव प्रताप रघुराई॥[18]

यहाँ हनुमान की दास्य भक्ति अपने चरम रूप में दिखाई देती है। समुद्र लाँघने, लंका में प्रवेश करने, अशोक वाटिका को उजाड़ने तथा राक्षसों का संहार करने जैसे असाधारण कार्यों का श्रेय भी वे स्वयं को नहीं, बल्कि श्रीराम के प्रताप को देते

हैं। यही विनम्रता और पूर्ण समर्पण हनुमान को भक्त-शिरोमणि के पद पर प्रतिष्ठित करता है।

निष्कर्ष- राम और हनुमान भारतीय सांस्कृतिक चेतना के दो ऐसे आदर्श चरित्र हैं, जिनमें वीरता और भक्ति का अद्‌भुत समन्वय दिखाई देता है। श्रीराम एक ओर अद्वितीय योद्धा, धर्मरक्षक और मर्यादा पुरुषोत्तम हैं, तो दूसरी ओर गुरुजनों, ऋषि-मुनियों और भगवान शिव के प्रति गहन श्रद्धा रखने वाले विनम्र भक्त भी हैं। उनका जीवन यह संदेश देता है कि वास्तविक वीरता केवल शारीरिक शक्ति में नहीं, बल्कि धर्म, मर्यादा, विनम्रता और समर्पण में भी निहित होती है।

इसी प्रकार हनुमान अतुलित बल, अद्‌भुत पराक्रम और असाधारण बुद्धि के प्रतीक हैं, किंतु उनके व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता उनका दास्य भाव और श्रीराम के प्रति पूर्ण समर्पण है। वे अपने प्रत्येक महान कार्य का श्रेय प्रभु श्रीराम को देते हैं। हनुमान की वीरता में अहंकार नहीं है और उनकी भक्ति में दुर्बलता नहीं है। इस प्रकार राम और हनुमान दोनों के चरित्र यह सिद्ध करते हैं कि वीरता और भक्ति परस्पर विरोधी नहीं, बल्कि एक-दूसरे की पूरक हैं। जहाँ वीरता धर्म की रक्षा के लिए शक्ति प्रदान करती है, वहीं भक्ति उस शक्ति को विनम्रता, मर्यादा और लोकमंगल की दिशा देती है। रामचरितमानस में राम और हनुमान के चरित्र इसी आदर्श समन्वय के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. वाल्मीकि, वाल्मीकि रामायण, सुंदरकाण्ड, सर्ग 35, श्लोक 18।
2. तुलसीदास, रामचरितमानस, बालकाण्ड, दोहा 208—209 के मध्य।
3. तुलसीदास, रामचरितमानस, बालकाण्ड, दोहा 249—250 के मध्य।
4. तुलसीदास, रामचरितमानस, बालकाण्ड, दोहा 260—261 के मध्य।
5. तुलसीदास, रामचरितमानस, किष्किंधाकाण्ड, दोहा 8।
6. तुलसीदास, रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड, दोहा 7।
7. तुलसीदास, रामचरितमानस, सुंदरकाण्ड, दोहा 57—58 के मध्य।
8. तुलसीदास, रामचरितमानस, बालकाण्ड, दोहा 225—226 के मध्य।
9. तुलसीदास, रामचरितमानस, लंकाकाण्ड, दोहा 6—7 के मध्य।
10. तुलसीदास, रामचरितमानस, बालकाण्ड, दोहा 271—272 के मध्य।
11. तुलसीदास, रामचरितमानस, किष्किंधाकाण्ड, दोहा 29—30 के मध्य।
12. तुलसीदास, रामचरितमानस, सुंदरकाण्ड, दोहा 3—4 के मध्य।
13. तुलसीदास, रामचरितमानस, सुंदरकाण्ड, दोहा 18—19 के मध्य।
14. तुलसीदास, रामचरितमानस, सुंदरकाण्ड, दोहा 18—19 के मध्य।
15. तुलसीदास, रामचरितमानस, किष्किंधाकाण्ड, दोहा 1—2 के मध्य।
16. तुलसीदास, रामचरितमानस, सुंदरकाण्ड, दोहा 12—13 के मध्य।
17. तुलसीदास, रामचरितमानस, सुंदरकाण्ड, दोहा 5—6 के मध्य।
18. तुलसीदास, रामचरितमानस, सुंदरकाण्ड, दोहा 32—33 के मध्य।

सहायक प्राध्यापक

शासकीय कन्या महाविद्यालय, सीहोर (म.प्र.)

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

धर्म की मशाल : महारानी मंदोदरी

ज्योति मित्तल, प्रो. चन्द्र शेखर शर्मा

"हाय! अभागिन मंदोदरी कैसी तेरी करुण कथा
बिलख-बिलख कर करती संकट का निदान
आँचल मे संजोय रख यों योग विवशता का
सतत घुटते रहने का बस तुझे मिला वरदान।"

भारतीय सनातन संस्कृति और रामायण महाकाव्य में भगवान श्रीराम, माता सीता, लक्ष्मण, हनुमान और रावण जैसे प्रमुख पात्रों की चर्चा अक्सर विस्तार से होती है। इन सभी के बीच कुछ ऐसे पात्र भी हैं जो पृष्ठभूमि में रहकर भी कहानी को एक गहरी दार्शनिक और नैतिक आधारशिला प्रदान करते हैं। ऐसा ही एक अत्यंत प्रेरणादायक, गरिमामयी और त्यागपूर्ण चरित्र है—लंकापति रावण की पटरानी, महारानी मंदोदरी। सामान्यतः जनमानस में मंदोदरी को केवल "रावण की पत्नी" के रूप में याद किया जाता है, किंतु यदि हम उनके चरित्र की गहराई, उनके निर्णयों, उनकी कूटनीतिक समझ और उनके आंतरिक संघर्षों का अध्ययन करें, तो वह रामायण की सबसे उपेक्षित किंतु सशक्त नायिकाओं में से एक नजर आती हैं। असुर कुल में जन्म लेने और तीनों लोकों के सबसे शक्तिशाली व विद्वान किंतु अहंकारी राजा की अर्धांगिनी होने के बावजूद, उन्होंने कभी भी अपनी नैतिक बुद्धि और धर्मनिष्ठा को ओझल नहीं होने दिया। सनातन परंपरा में अहिल्या, द्रौपदी, कुंती, तारा और मंदोदरी के रूप में पाँच ऐसी नारियों का स्मरण किया गया है जिनके नाम मात्र से अथवा प्रातःकाल स्मरण करने से पापों का नाश और मानसिक शुद्धि मानी जाती है। इन 'पंचकन्याओं' में मंदोदरी का नाम उनकी उच्च नैतिकता, पवित्रता और अटूट पति-धर्म के कारण अत्यंत आदर के साथ लिया जाता है। "हमारे भारतीय मनीषियों की यही सहृदयता इन स्त्रियों के प्रति उनकी तथ्यपरक संवेदनशील दृष्टि दर्शाती है। उन्होंने परखा कि इन पाँचों स्त्रियों की एकनिष्ठता, छल-बल और उनके पतियों के अविवेकपूर्ण निर्णय से ही भंग हुई। जीवन में इन्हें अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। अपने अंतर्मन से नहीं बाह्य दबाव के वशीभूत कार्य करने पड़े। अनेक अप्रिय स्थितियों को स्वीकारने के लिए बाध्य होना पड़ा। अतः परिस्थितिजन्य, मन विपरीत, पति-पुत्र और कुलहित में स्वीकार्य इनके निर्णयों की त्यागमयी भावना को सराहते, भारतीय मनीषियों ने इनके एक से अधिक पुरुषों से संबंध होते हुए भी इन्हें पवित्र और पतिव्रता धर्म की प्रतीक माना। कभी भी इनका कौमार्य भंग नहीं माना। ये सदैव कुँआरी ही मानी गईं।"[1]

1. जन्म और पौराणिक पृष्ठभूमि : पौराणिक कथाओं के अनुसार, मंदोदरी का जन्म साधारण नहीं था। वह अप्सरा हेमा और असुरों के महान शिल्पकार एवं वास्तुविद मयसुर की पुत्री थीं। मयसुर ने ही देवताओं और असुरों के लिए कई भव्य नगरियों और महलों का निर्माण किया था। अपनी माता की दिव्यता और पिता के बुद्धि कौशल का प्रभाव मंदोदरी के स्वभाव में स्पष्ट रूप से झलकता था। वह बचपन से ही अत्यंत सुंदर, सुशील, गंभीर और शास्त्रों की ज्ञाता थीं। उनके सौंदर्य का उल्लेख अनामिका तिवारी अपनी पुस्तक में कुछ इस तरह करती हैं– "वह सद्यःस्नात केशों से टपकती बूँदों के बीच झिलमिलाते जल में अपना मुखारबिम्ब निरख रही थी। तातश्री कहते हैं अपनी अपूर्व सुन्दरी कन्या को वे किसी परम शूरवीर पुरुष को

ही सौंपेंगे। इस कल्पना से उसका तारुण्य शतदल कमल-सा खिल रहा था।"[2] उनके जन्म और लंका के राजा रावण के साथ उनके विवाह की कथा भी अत्यंत रोचक है। जब रावण मयसुर के नगर में गया, तो उसकी भेंट मंदोदरी से हुई। रावण उनके सौंदर्य और बुद्धि से इतना प्रभावित हुआ कि उसने मयसुर के सामने मंदोदरी से विवाह करने का प्रस्ताव रखा, जिसे मंदोदरी ने पिता का हित सोचकर स्वीकार कर लिया और इस प्रकार मंदोदरी लंका की महारानी बनीं। मंदोदरी और रावण विवाह के प्रसंग के बारे 'कल्पना विजय वाते' लिखती हैं– "मंदोदरी इसी तरह विचार चक्रों में उलझी हुई अपने और दशानन की प्रथम भेंट व विवाह के पश्चात, प्रथम मिलन के दृश्य में खो गई। उसे याद आया दशानन ने सबसे पहले मंदिर में शिवलिंग की पूजा करने जाते समय देखा था। उसी समय उसने मेरे पिता मय के पास जाकर कहा था। "मयासुर मैं तुम्हारी पुत्री से विवाह करना चाहता हूँ।" पिता जी इस विवाह के लिये तैयार नहीं थे। उन्होंने पहले ही मना कर दिया था। पर मंदोदरी को अपनी पिता की विवशता तथा त्रिभुवनविजयी दशानन की शक्ति का अंदाजा था। मंदोदरी ने अपने पिता से कहा था, "तात मुझे संसार का सर्वश्रेष्ठ विद्वान बलशाली, ब्रह्मदेव से वर प्राप्त किया पति ही चाहिए।"[3]

2. लंका के वैभव और अंतर्द्वंद्व के बीच मंदोदरी का व्यक्तित्व- जब मंदोदरी लंका आईं, तो वह स्वर्ण नगरी लंका की चकाचौंध, रावण के अपार ऐश्वर्य और उसकी विजयों की साक्षी बनीं। लेकिन लंका का यह वैभव केवल बाहरी था; जिसको उन्होंने महसूस किया। मंदोदरी के विवाहोपरांत असमंजस की स्थिति पर डॉ. कुमार विमलेन्दु सिंह ने लिखा है– "परिणय संयम का होता है द्योतक,/ सभी लालसाओं की अभिव्यक्ति/पवित्रता पर होती है कुठाराघात/सोच लिया था अब उसने/ पति का हित ही अब निरंतर चाहेगी वह/आमरण रहेगी इसी विचार के साथ।"[4] मंदोदरी के असमंजस की स्थिति को हम ऐसे भी समझ सकते हैं कि स्त्री के लिए उसकी प्राथमिकता उसका परिवार होता है, उसका पति होता है। कभी-कभी वह न चाहते हुए भी अपने घर की ख़ातिर धर्म और अधर्म की जानकारी होते हुए भी चुप्पी साध लेती है। मंदोदरी की इस मानसिक स्थिति का वर्णन कल्पना बाते ज़ी अपनी पुस्तक में करते हुए कहती हैं– इस तरह मंदोदरी की प्रतिछाया उससे बार-बार अनेक प्रश्न करके उसके सम्मुख खड़ी रहती है। तब मंदोदरी स्वतः ही कहती है, "मैं एक पत्नी अपना सौभाग्य, अपने पुत्रों का मातृत्व धारण करने के साथ ही लंकावासियों की स्वामिनी भी हूँ। मेरा मन मानवीय मोह, माया, प्रेम को कैसे त्याग सकता है। अतः मैं उससे चाहकर भी अलग नहीं हो सकती। इन्हीं विचारों के साथ वह अपने महल के भव्य शिवालय में, सब विचार समर्पित करके शिवपूजा में लीन होती है।"[5] लेकिन ऐसा नहीं है कि मंदोदरी अपने दाम्पत्य जीवन को बचाने के लिए रावण का अनुसरण ही करती हैं बल्कि वह कई जगह पर अपने पति रावण की बातों का खुलकर विरोध भी करती हैं। जैसे साहित्यकार मनीषा कुलश्रेष्ठ अपनी पुस्तक पंचकन्या में लिखती हैं– 'अद्भुत रामायण' से हमें कुछ और आंतरिक जानकारियाँ मिलती हैं। यहाँ मन्दोदरी रावण की आज्ञा का उल्लंघन करती है, उस पात्र में से घूँट भरने को मना कर देती है जिसमें रावण ने तपस्या के लिए रक्त एकत्र कर रखा था। इस कृत्य द्वारा वह साबित कर देती है कि वह अपने पति की परछाई मात्र नहीं। यहाँ इस बात का भी वर्णन मिलता है कि कुन्ती की ही भाति मन्दोदरी गर्भवती हुई और उसने अपने नवजात शिशु को त्याग सुदूर क्षेत्र में भिजवा दिया था। यह क्षेत्र राजा जनक का था, जहाँ हल चलाने पर अनाथ सीता पाई गयी थी। इस घटना के प्रकाश में देखा जाए तो यह आश्चर्यजनक नहीं है कि हनुमान ने गलती से मन्दोदरी को रावण के महल में विचरते देख उन्हें सीता समझ लिया था।"[6]

लंका के विलासी वातावरण में रहते हुए भी मंदोदरी का जीवन सादगी, संयम और उच्च्य विचारों से परिपूर्ण था। वह राजमहलों की रानियों की तरह विलासिता में लिप्त नहीं रहीं, बल्कि उन्होंने अपने समय का उपयोग अध्ययन, ध्यान और राज्य की नीतियों को समझने में किया।

3. रावण की मार्गदर्शक और सच्ची हितैषी- रावण तीनों लोकों को जीतने वाला, वेदों का ज्ञाता और शिव का परम भक्त था, किंतु उसका अहंकार उसकी सबसे बड़ी कमजोरी था। मंदोदरी इस बात को भली-भांति समझती थीं। वह जानती थीं कि रावण की ये शक्तियाँ और वरदान तब तक ही सुरक्षित हैं जब तक वह मर्यादा के दायरे में है। एक आदर्श पत्नी का कर्तव्य केवल अपने पति की हर आज्ञा का पालन करना नहीं होता, बल्कि उसे सही और गलत का फर्क समझाना भी होता है। मंदोदरी

ने इस कर्तव्य को जीवनभर पूरी निष्ठा से निभाया। रावण की हर भूल पर उसे टोकने का साहस यदि किसी में था, तो वह केवल मंदोदरी थीं।

क. माता सीता का अपहरण और मंदोदरी की चेतावनी- रामायण का सबसे बड़ा मोड़ तब आया जब रावण ने छलपूर्वक माता सीता का हरण किया और उन्हें लंका की अशोक वाटिका में बंदी बनाकर रखा। जब मंदोदरी को इसका पता चला, तो उनका हृदय काँप उठा। वह तुरंत रावण के पास गईं और अत्यंत विनम्रता किंतु दृढ़ता के साथ उन्हें समझाया पर रावण के न सुनने पर वह रावण को सावधान करते हुए कहती है– "राजन मुझे पता चला है, आपने सीता का अपहरण किया है। गुप्तचरों से सारी सूचनाएँ प्राप्त करके ही कह रही हूँ। सीता का अपहरण कायरता है। लंकेश की प्रतिष्ठा के अनुकूल नहीं है।" सीता को ले तो आए, अब आगे क्या?"-रावण ने कहा तो मंदोदरी का स्वर एकदम बदला। उसने कहा, "दशानन, सीता को रंगमहल में नहीं रखना है ना ही उसे... अन्य स्त्रियों की तरह... याद रखो, वह एक तपस्वी, पतिव्रता स्त्री है। तुम उसे छल पूर्वक, एक भीरू की तरह लाए। राजन सीता को लाने की खबर लंका में हवा की तरह फैल गई है। यदि तुमने सीता को अशोक वन में नहीं रखा तो मैं महारानी मंदोदरी, इन्द्रजीत, विभीषण, माल्यवान एक साथ विद्रोह करेंगे!"[7] किंतु रावण अपने अहंकार और काम-क्रोध के वशीभूत था। उसने अपनी इस ज्ञानी और दूरदर्शी पत्नी की एक बात नहीं मानी। रावण ने अपनी शक्ति के घमंड में मंदोदरी की हर चेतावनी को अनसुना कर दिया। मंदोदरी रानी होने से पूर्व एक स्त्री है और वह स्त्री के मन को अच्छी तरह समझती है। वह माँ सीता की पीड़ा के लिए बेहद दुखी होती है और अपने पति के द्वारा किए गए कार्यों पर शर्मिंदा होकर उनसे क्षमा याचना करती है। वह माँ सीता को अशोक वाटिका में पूरी सुरक्षा में रखने का भी प्रयास करती है।

ख. दूरदर्शी और संवेदनशील- जैसे-जैसे रामायण का युद्ध निकट आया, मंदोदरी ने बार-बार रावण को चेताया। जब लंका में अंगद दूत बनकर आए और उन्होंने रावण की सभा में अपनी शक्ति का प्रदर्शन किया, तब भी मंदोदरी ने गुप्त रूप से रावण को समझाया कि जिस सेना के पास हनुमान और अंगद जैसे योद्धा हैं और जो धर्म के मार्ग पर चल रहे हैं, उन्हें पराजित करना असंभव है। युद्ध के दौरान जब रावण के एक-एक करके सभी योद्धा और पुत्र (जैसे मेघनाद और कुंभकर्ण) मारे गए, तब भी मंदोदरी ने रावण को रोते हुए अंतिम बार समझाया कि अब भी समय है, श्रीराम की शरण में चले जाएं। युद्ध की विभीषिका के उपरांत मंदोदरी के भीतर की माँ का दर्द कुछ इस तरह छलक पड़ता है : "जीतते होंगे शूरवीर युद्ध/माताएँ सदा ही हारती हैं/विजेताओं को साम्राज्य मिलता है/माताएँ अपना, सूना अंक निहारती हैं।"[8]

4. संकट काल में धैर्य, गरिमा और आत्म-सम्मान- जब चारों ओर भगदड़ और शोक का वातावरण था, मंदोदरी ने अपने मानसिक संतुलन को नहीं खोया। उन्होंने एक महारानी की तरह अपनी गरिमा और संयम को बनाए रखा। रावण की मृत्यु के पश्चात जब वह रणक्षेत्र में अपने पति के शव के पास विलाप कर रही थीं, तो उनका वह दृश्य करुणा और मर्यादा का अद्भुत संगम था। उन्होंने अपने विलाप में भी इस बात को स्वीकार किया कि रावण ने धर्म का त्याग किया था, जिसके कारण उसे यह गति प्राप्त हुई। रावण के वध के बाद भगवान श्रीराम ने नीति और धर्म का पालन करते हुए विभीषण को लंका का राजा घोषित किया और महारानी मंदोदरी को नमन करते हुए कहा- "स्वतः पतिव्रता होकर, लंका के मंगल भविष्य की कामना का निर्णय लेने वाली, आप कोई साधारण स्त्री नहीं हैं। आज तक आप जिन बातों को लेकर अपने पति का विरोध करती रही। उसके प्रत्येक गलत कार्य पर टोकती रहीं। अपनी प्रजा के लिए परेशान होती रहीं। उसी की वजह से 'सीता' की सुरक्षा होती रही। उस मंदोदरी को मैं प्रणाम करता हूँ।"[9] "विभीषण और मंदोदरी के बीच का संवाद भी भारतीय संस्कृति की उच्च परंपराओं को दर्शाता है। मंदोदरी ने कहा, "विभीषण, दशानन जब से सीता को लेकर आए...दशानन के चेहरे पर बहन के अपमान का बदला लेने की भावना दिखाई नहीं देती। उल्टे सीता को लंका लाने के बाद... हमेशा की तरह विजय होकर, अनेक सुंदरियों का जो हरण किया वो हम सभी जानते हैं। उसमें कुछ भी झूठ नहीं। वे सभी स्त्रियाँ अपने मन से तो लंकेश को समर्पित करती नहीं हैं। उन्हें साम, दाम, दण्ड के साथ बलपूर्वक... उन स्त्रियों की चीत्कार, रूदन, आक्रोश के स्वर, पूरी लंका में फैल रहे हैं। पर हमारे मंत्रियों और सामंतों को ये दिखता नहीं। लेकिन जिस दिन ये उग्र रूप धारण

करेगा, बहुत बड़ा विनाश होगा। लगता है ये विनाश सीता के रूप में हो।"[10] मंदोदरी ने लंका की नई व्यवस्था और प्रजा के कल्याण में पूरा सहयोग दिया।

उपसंहार- महारानी मंदोदरी का जीवन आज के आधुनिक समाज और विशेषकर महिलाओं के लिए एक बहुत बड़ा मार्गदर्शक हैः

अधर्म का विरोध करने का साहस : मंदोदरी ने यह सिखाया कि यदि आपका प्रिय व्यक्ति या जीवनसाथी भी गलत रास्ते पर है, तो उसका अंध समर्थन करने के बजाय उसे सही रास्ता दिखाना ही सच्चा प्रेम और धर्म है।

संकट में मानसिक संतुलन : जीवन में कितनी भी बड़ी आपदा या विपत्ति आ जाए, धैर्य और आत्म-सम्मान को कभी नहीं छोड़ना चाहिए—यह सीख हमें मंदोदरी के जीवन से मिलती है।

सौंदर्य और बुद्धिमत्ता का संतुलन : वह केवल रूप और श्रृंगार की प्रतीक नहीं थीं, बल्कि उनकी पहचान उनकी तीक्ष्ण बुद्धि, कूटनीति और दूरदर्शिता के कारण थी।

महारानी मंदोदरी रामायण की वह मौन और प्रखर नायिका थीं, जिन्होंने असत्य के विशाल और स्वर्ण जड़ित साम्राज्य में रहकर भी अपने भीतर के सत्य, धर्म और विवेक को जीवित रखा। उनका जीवन इस बात का प्रमाण है कि परिस्थितियाँ चाहे जैसी भी हों, एक व्यक्ति अपने कर्म, विचार और चरित्र से हमेशा महान बन सकता है। रामायण के इतिहास में रावण के अहंकार की गाथा जितनी गूँजती है, उतनी ही शांत और गहरी रोशनी मंदोदरी के त्याग, धैर्य और बुद्धिमत्ता की सदा चमकती रहेगी।

संदर्भ सूची

1. अनामिका तिवारी, पट्टमहिषी महारानी मंदोदरी, सर्व भाषा ट्रस्ट, नई दिल्ली, पेज117
2. अनामिका तिवारी, पट्टमहिषी महारानी मंदोदरी, सर्व भाषा ट्रस्ट, नई दिल्ली, पेज09
3. कल्पना विजय वाते, मंदोदरी, जेन्नेकस्ट पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पेज 19
4. डॉ.कुमार विमलेन्दु सिंह, मंदोदरी एक कथा, प्रलेक प्रकाशन, नई दिल्ली, पेज 59
5. कल्पना विजय वाते, मंदोदरी, जेन्नेकस्ट पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पेज66
6. मनीषा कुलश्रेष्ठ, पंचकन्या, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, पेज 194
7. कल्पना विजय वाते, मंदोदरी, जेन्नेकस्ट पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पेज47
8. डॉ.कुमार विमलेन्दु सिंह, मंदोदरी एक कथा, प्रलेक प्रकाशन, नई दिल्ली, पेज83
9. कल्पना विजय वाते, मंदोदरी, जेन्नेकस्ट पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पेज77
10. कल्पना विजय वाते, मंदोदरी, जेन्नेकस्ट पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पेज51
11. अशोक निशांत, मंदोदरी, शाश्वत पब्लिकेशन, बिलासपुर छत्तीसगढ़, पेज32

ज्योति मित्तल, शोधार्थी

शोध निर्देशक : प्रो.चन्द्र शेखर शर्मा, आगरा कॉलेज, आगरा

27/ए, सीताराम कॉलोनी फेज-2, बल्केश्वर, आगरा (282004)

मो- 9412812902

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

भारत-श्रीलंका संबंधों को सुदृढ़ करने में बिम्सटेक की भूमिका : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

प्रो. नीलिमा सिंह एवं देवेंद्र कुमार जायसवाल

सारांश- यह शोध-पत्र भारत-श्रीलंका संबंधों को सुदृढ़ करने में बंगाल की खाड़ी बहु-क्षेत्रीय तकनीकी एवं आर्थिक सहयोग पहल (बिम्सटेक) की भूमिका का विश्लेषण करता है। भारत और श्रीलंका के संबंध ऐतिहासिक, भौगोलिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और सामरिक आधारों पर विकसित हुए हैं। वर्तमान समय में इन संबंधों का दायरा व्यापार, निवेश, ऊर्जा, परिवहन, समुद्री संपर्क, पर्यटन, डिजिटल संपर्क, विकास सहयोग, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी तथा सुरक्षा तक विस्तृत है। दूसरी ओर, बिम्सटेक दक्षिण एशिया और दक्षिण-पूर्व एशिया के बीच बंगाल की खाड़ी को सहयोग के क्षेत्र के रूप में विकसित करने वाला महत्वपूर्ण मंच है। इस अध्ययन की मुख्य शोध समस्या यह है कि भारत-श्रीलंका संबंधों पर उपलब्ध विमर्श प्रायः द्विपक्षीय संबंधों पर केंद्रित रहता है, जबकि बिम्सटेक की क्षेत्रीय संस्थागत व्यवस्था दोनों देशों के सहयोग को व्यापक क्षेत्रीय नेटवर्क से जोड़ने की क्षमता रखती है। अध्ययन का मुख्य उद्देश्य यह मूल्यांकन करना है कि बिम्सटेक भारत-श्रीलंका संबंधों को व्यापार एवं निवेश, परिवहन और समुद्री संपर्क, सुरक्षा एवं आपदा प्रबंधन, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी तथा जन-से-जन संपर्क के क्षेत्रों में किस प्रकार सुदृढ़ कर सकता है। शोध में गुणात्मक, वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक पद्धति का प्रयोग किया गया है। अध्ययन मुख्यतः बिम्सटेक, भारत सरकार, भारतीय उच्चायोग, एशियाई विकास बैंक तथा चयनित अकादमिक साहित्य के द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है। अध्ययन का निष्कर्ष है कि बिम्सटेक द्विपक्षीय संबंधों का विकल्प नहीं, बल्कि उन्हें क्षेत्रीय आधार देने वाला पूरक मंच है। विशेष रूप से 2025 में अपनाए गए बैंकॉक विजन 2030 तथा समुद्री परिवहन सहयोग समझौते ने क्षेत्रीय संपर्क को नई दिशा दी है। यदि भारत और श्रीलंका इन व्यवस्थाओं को ठोस परियोजनाओं, व्यापार सुगमीकरण, समुद्री लॉजिस्टिक्स, तकनीकी सहयोग और आपदा प्रबंधन से जोड़ते हैं, तो द्विपक्षीय संबंध अधिक संस्थागत, बहुआयामी और टिकाऊ बन सकते हैं।

मुख्य शब्द- भारत-श्रीलंका संबंध, बिम्सटेक, क्षेत्रीय सहयोग, बंगाल की खाड़ी, समुद्री संपर्क, व्यापार, सुरक्षा, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी

1. प्रस्तावना- भारत और श्रीलंका दक्षिण एशिया तथा हिंद महासागर क्षेत्र के दो अत्यंत निकट पड़ोसी हैं। दोनों देशों के संबंधों की आधारभूमि केवल भौगोलिक निकटता नहीं है, बल्कि प्राचीन सभ्यतागत संपर्क, बौद्ध परंपरा, समुद्री व्यापार, सांस्कृतिक आदान-प्रदान और लोगों के बीच लंबे समय से चले आ रहे संपर्क भी हैं। स्वतंत्रता के बाद दोनों देशों के संबंधों में राजनीतिक और आर्थिक उतार-चढ़ाव आए, फिर भी सहयोग और संवाद की प्रक्रिया बनी रही। वर्तमान में भारत-श्रीलंका संबंधों का स्वरूप बहुआयामी है, जिसमें व्यापार, निवेश, ऊर्जा, विकास सहयोग, शिक्षा, स्वास्थ्य, पर्यटन, डिजिटल भुगतान, परिवहन और समुद्री सुरक्षा जैसे क्षेत्र शामिल हैं। 2025—26 में दोनों देशों के बीच वस्तु व्यापार लगभग 7.18 अरब अमेरिकी डॉलर रहा और श्रीलंका में भारतीय संचयी निवेश लगभग 2.94 अरब डॉलर तक पहुँच गया। इससे स्पष्ट होता है कि आर्थिक संबंध अब केवल पारंपरिक व्यापार तक सीमित नहीं हैं, बल्कि निवेश और संपर्क आधारित साझेदारी की ओर बढ़ रहे

हैं।भारत-श्रीलंका संबंधों का एक महत्वपूर्ण आयाम हिंद महासागर की समुद्री स्थिति है। भारत के दक्षिणी तट और श्रीलंका की भौगोलिक स्थिति दोनों देशों को समुद्री परिवहन, ऊर्जा मार्गों, बंदरगाहों और समुद्री सुरक्षा के संदर्भ में स्वाभाविक साझेदार बनाती है। इसी कारण दोनों देशों के संबंधों को केवल द्विपक्षीय ढाँचे में देखने के बजाय व्यापक बंगाल की खाड़ी क्षेत्रीय संदर्भ में देखना उपयोगी है। बिम्सटेक इसी आवश्यकता को पूरा करने वाला मंच है। 1997 में स्थापित बिम्सटेक आज भारत, श्रीलंका, बांग्लादेश, भूटान, नेपाल, म्यांमार और थाईलेंड को जोड़ता है। संगठन का महत्व इसलिए भी बढ़ा है क्योंकि यह दक्षिण एशिया और दक्षिण-पूर्व एशिया के बीच संपर्क का क्षेत्रीय सेतु बन सकता है। 2022 में बिम्सटेक चार्टर अपनाए जाने तथा 2025 में बैंकॉक विजन 2030 और समुद्री परिवहन सहयोग समझौते के बाद संगठन की संस्थागत दिशा अधिक स्पष्ट हुई है।

इस शोध का केंद्रीय तर्क यह है कि बिम्सटेक भारत-श्रीलंका संबंधों को प्रतिस्थापित नहीं करता, बल्कि उनके लिए एक अतिरिक्त क्षेत्रीय मंच उपलब्ध कराता है। द्विपक्षीय स्तर पर जिन क्षेत्रों में दोनों देशों के हित पहले से मौजूद हैं, उन्हें बिम्सटेक के माध्यम से व्यापक क्षेत्रीय नेटवर्क से जोड़ा जा सकता है। उदाहरण के लिए भारत-श्रीलंका समुद्री संपर्क को बंगाल की खाड़ी के अन्य बंदरगाहों से जोड़ना, व्यापार प्रक्रियाओं को क्षेत्रीय मानकों के अनुरूप बनाना, आपदा प्रबंधन में संयुक्त तंत्र विकसित करना तथा विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में बहुपक्षीय परियोजनाएँ शुरू करना दोनों देशों के सहयोग को अधिक व्यापक बना सकता है। इसलिए बिम्सटेक की भूमिका का वास्तविक मूल्यांकन इस बात से होना चाहिए कि वह घोषित उद्देश्यों को कितनी प्रभावी ढंग से ठोस सहयोग में बदल सकता है।

2. शोध समस्या- भारत-श्रीलंका संबंधों पर पर्याप्त साहित्य उपलब्ध है, जिसमें व्यापार, सुरक्षा, समुद्री संबंध, विकास सहयोग और राजनीतिक मुद्दों का विस्तृत अध्ययन किया गया है। इसी प्रकार बिम्सटेक पर भी क्षेत्रीयता, कनेक्टिविटी, भारत की विदेश नीति और बंगाल की खाड़ी सहयोग के संदर्भ में अध्ययन हुए हैं। फिर भी दोनों क्षेत्रों को एक साथ रखकर यह पूछना आवश्यक है कि बिम्सटेक की वर्तमान संस्थागत व्यवस्था भारत-श्रीलंका संबंधों में वास्तविक अतिरिक्त मूल्य किस प्रकार उत्पन्न कर सकती है। मुख्य समस्या यह है कि बिम्सटेक की घोषणाओं और समझौतों को द्विपक्षीय लाभ में बदलने की प्रक्रिया अभी भी पूरी तरह स्पष्ट और प्रभावी नहीं है। इसलिए शोध का प्रश्न केवल यह नहीं है कि बिम्सटेक महत्वपूर्ण है या नहीं, बल्कि यह है कि उसके कौन-से क्षेत्र भारत-श्रीलंका संबंधों को सबसे अधिक सुदृढ़ कर सकते हैं और किन संस्थागत बाधाओं के कारण उनका प्रभाव सीमित रह सकता है।

3. शोध प्रश्न- इस अध्ययन के प्रमुख शोध प्रश्न हैं : (1) भारत-श्रीलंका संबंधों के किन क्षेत्रों को बिम्सटेक के माध्यम से अधिक मजबूत किया जा सकता है? (2) बिम्सटेक की व्यापार, परिवहन और समुद्री संपर्क संबंधी व्यवस्थाएँ दोनों देशों के आर्थिक संबंधों को किस प्रकार प्रभावित कर सकती हैं? (3) सुरक्षा, आपदा प्रबंधन, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी तथा जन-से-जन संपर्क में बिम्सटेक की क्या भूमिका हो सकती है? (4) बिम्सटेक की संस्थागत सीमाएँ भारत-श्रीलंका संबंधों को मजबूत करने की प्रक्रिया को किस प्रकार प्रभावित करती हैं?

4. शोध उद्देश्य- इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य भारत-श्रीलंका संबंधों को सुदृढ़ करने में बिम्सटेक की वास्तविक और संभावित भूमिका का विश्लेषण करना है। इसके अंतर्गत चार विशिष्ट उद्देश्य निर्धारित किए गए हैं। पहला, भारत-श्रीलंका संबंधों के वर्तमान स्वरूप और प्रमुख सहयोग क्षेत्रों का अध्ययन करना। दूसरा, बिम्सटेक की संस्थागत संरचना और उसके प्रमुख सहयोग क्षेत्रों को समझना। तीसरा, व्यापार एवं निवेश, परिवहन एवं समुद्री संपर्क, सुरक्षा एवं आपदा प्रबंधन, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी तथा जन-से-जन संपर्क के संदर्भ में बिम्सटेक की भूमिका का मूल्यांकन करना। चौथा, उपलब्ध अवसरों और सीमाओं के आधार पर ऐसे नीतिगत सुझाव प्रस्तुत करना जिनसे भारत और श्रीलंका बिम्सटेक के मंच का अधिक प्रभावी उपयोग कर सकें।

5. साहित्य समीक्षा एवं शोध-अंतर- बिम्सटेक संबंधी साहित्य में इसे दक्षिण एशिया और दक्षिण-पूर्व एशिया के बीच क्षेत्रीय संपर्क के एक महत्वपूर्ण मंच के रूप में देखा गया है। प्रारंभिक साहित्य में संगठन की स्थापना, उसके सहयोग

क्षेत्रों और बंगाल की खाड़ी में क्षेत्रीय एकीकरण की संभावनाओं पर चर्चा मिलती है। परिवहन संपर्क से संबंधित अध्ययनों में सड़क, रेल, बंदरगाह, समुद्री परिवहन, विमानन, बहु-माध्यमीय परिवहन और व्यापार सुगमीकरण को क्षेत्रीय एकीकरण की बुनियादी आवश्यकताएँ माना गया है। एशियाई विकास बैंक के सहयोग से तैयार बिम्सटेक परिवहन संपर्क महायोजना ने इन क्षेत्रों के लिए एक व्यापक ढाँचा प्रस्तुत किया है। यह साहित्य यह संकेत देता है कि बेहतर संपर्क व्यापार लागत कम करने, निवेश बढ़ाने और लोगों के बीच संपर्क बढ़ाने में सहायक हो सकता है। भारत और बिम्सटेक पर हालिया अकादमिक अध्ययन भारत की क्षेत्रीय नीति, एक्ट ईस्ट नीति, समुद्री हितों और बहुपक्षीय क्षेत्रीयता के संदर्भ में बिम्सटेक की उपयोगिता तथा सीमाओं का विश्लेषण करते हैं। इन अध्ययनों में यह भी सामने आता है कि बिम्सटेक की प्रगति के बावजूद सदस्य देशों की अलग-अलग प्राथमिकताएँ, धीमी संस्थागत प्रक्रिया और कार्यान्वयन की सीमाएँ संगठन की क्षमता को प्रभावित करती हैं। दूसरी ओर भारत-श्रीलंका संबंधों पर उपलब्ध आधिकारिक और अकादमिक सामग्री व्यापार, निवेश, समुद्री संपर्क, पर्यटन, ऊर्जा, विकास सहयोग और सुरक्षा जैसे क्षेत्रों में द्विपक्षीय सहयोग की व्यापकता को दर्शाती है।

इन दोनों साहित्य धाराओं के संयुक्त अध्ययन से स्पष्ट शोध-अंतर सामने आता है। उपलब्ध साहित्य में बिम्सटेक और भारत-श्रीलंका संबंधों पर अलग-अलग पर्याप्त चर्चा है, लेकिन भारत-श्रीलंका संबंधों को बिम्सटेक की वर्तमान संस्थागत प्रगति के साथ जोड़कर देखने वाले समेकित अध्ययन अपेक्षाकृत सीमित हैं। विशेष रूप से 2025 के बैंकॉक विजन 2030, समुद्री परिवहन सहयोग समझौते तथा प्रौद्योगिकी अंतरण जैसी व्यवस्थाओं को भारत-श्रीलंका संबंधों के संदर्भ में व्यवस्थित रूप से मूल्यांकित करना आवश्यक है। प्रस्तुत अध्ययन इसी शोध-अंतर को संबोधित करता है। इसका विशिष्ट योगदान यह है कि यह द्विपक्षीय संबंधों और क्षेत्रीय सहयोग को अलग-अलग नहीं, बल्कि परस्पर जुड़े हुए स्तरों के रूप में देखता है।

6. शोध-पद्धति एवं स्रोत- यह अध्ययन गुणात्मक, वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक शोध-पद्धति पर आधारित है। इसमें प्राथमिक सर्वेक्षण के स्थान पर द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया गया है। बिम्सटेक के चार्टर, परिवहन संपर्क महायोजना, बैंकॉक विजन 2030, समुद्री परिवहन सहयोग समझौते तथा अन्य आधिकारिक दस्तावेजों का अध्ययन किया गया है।

7. भारत-श्रीलंका संबंधों को सुदृढ़ करने में बिम्सटेक की भूमिका- बिम्सटेक की भूमिका का पहला महत्वपूर्ण क्षेत्र आर्थिक सहयोग है। भारत और श्रीलंका के बीच व्यापार लंबे समय से संबंधों का प्रमुख आधार रहा है। वित्तीय वर्ष 2025–26 में दोनों देशों का वस्तु व्यापार 7.18 अरब अमेरिकी डॉलर रहा, जिसमें भारत का निर्यात 5.52 अरब डॉलर और श्रीलंका का निर्यात 1.66 अरब डॉलर था। श्रीलंका में भारत का संचयी निवेश भी लगभग 2.94 अरब डॉलर तक पहुँच चुका है। ये आँकड़े आर्थिक परस्पर निर्भरता की गहराई को दिखाते हैं, लेकिन व्यापार असंतुलन की चुनौती भी सामने रखते हैं। बिम्सटेक इस संबंध को क्षेत्रीय बाजार और आपूर्ति शृंखलाओं से जोड़कर नए अवसर पैदा कर सकता है। व्यापार सुगमीकरण, डिजिटल सीमा-शुल्क व्यवस्था, मानकों में तालमेल और क्षेत्रीय व्यापार प्रक्रियाओं के विकास से व्यापार लागत कम हो सकती है। इससे श्रीलंकाई उत्पादों की भारत और अन्य बिम्सटेक बाजारों तक पहुँच बढ़ सकती है और भारतीय कंपनियों को भी श्रीलंका के माध्यम से क्षेत्रीय बाजारों से जुड़ने का अवसर मिलेगा। दूसरा और अत्यंत महत्वपूर्ण क्षेत्र परिवहन एवं समुद्री संपर्क है। बिम्सटेक परिवहन संपर्क महायोजना 2018–2028 सड़क, रेल, बंदरगाह एवं समुद्री परिवहन, अंतर्देशीय जल परिवहन, विमानन, बहु-माध्यमीय परिवहन, व्यापार सुगमीकरण और मानव संसाधन विकास को एक समेकित ढाँचे में रखती है। 03 अप्रैल 2025 को समुद्री परिवहन सहयोग समझौते पर हस्ताक्षर इस दिशा में महत्वपूर्ण संस्थागत उपलब्धि है। भारत और श्रीलंका दोनों की अर्थव्यवस्थाएँ समुद्री परिवहन से गहराई से जुड़ी हैं। श्रीलंका की भौगोलिक स्थिति और बंदरगाह क्षमता तथा भारत के बड़े बाजार, बंदरगाह नेटवर्क और लॉजिस्टिक्स क्षमता को क्षेत्रीय तंत्र से जोड़ने पर व्यापार और परिवहन की दक्षता बढ़ सकती है। बंदरगाहों के बीच सहयोग, जहाजों की आवाजाही, सीमा-शुल्क प्रक्रियाएँ, लॉजिस्टिक्स और समुद्री कौशल विकास को क्षेत्रीय स्तर पर समन्वित किया जा सकता है। इससे भारत-श्रीलंका संपर्क केवल द्विपक्षीय मार्ग तक सीमित न रहकर बंगाल की खाड़ी के व्यापक नेटवर्क का हिस्सा बन सकता है। तीसरा क्षेत्र समुद्री सुरक्षा और आपदा प्रबंधन है। हिंद महासागर में समुद्री सुरक्षा दोनों देशों के लिए समान महत्व रखती है। अवैध गतिविधियाँ, समुद्री दुर्घटनाएँ, चक्रवात, सुनामी

और अन्य प्राकृतिक आपदाएँ ऐसी चुनौतियाँ हैं जिनका समाधान अकेले किसी एक देश के लिए कठिन हो सकता है। बिम्सटेक के सुरक्षा सहयोग में भारत की प्रमुख भूमिका है और आपदा प्रबंधन भी इसके सहयोगी क्षेत्रों में शामिल है। भारत की आपदा प्रतिक्रिया क्षमता तथा श्रीलंका की समुद्री स्थिति को जोड़कर पूर्व चेतावनी, खोज एवं बचाव, मानवीय सहायता और संयुक्त प्रशिक्षण के क्षेत्र में अधिक व्यवस्थित सहयोग किया जा सकता है। यह सहयोग भारत-श्रीलंका संबंधों में विश्वास बढ़ाने के साथ-साथ पूरे बंगाल की खाड़ी क्षेत्र में साझा सुरक्षा की भावना को मजबूत करेगा। ऊर्जा सहयोग भी इसी व्यापक संदर्भ में महत्वपूर्ण है। क्षेत्रीय बिजली संपर्क, नवीकरणीय ऊर्जा और ऊर्जा अवसंरचना में सहयोग भविष्य में दोनों देशों की परस्पर निर्भरता बढ़ा सकता है।चौथा क्षेत्र विज्ञान, प्रौद्योगिकी और नवाचार है। बिम्सटेक में श्रीलंका विज्ञान, प्रौद्योगिकी एवं नवाचार क्षेत्र का नेतृत्व करता है, जबकि भारत के पास उच्च शिक्षा, अनुसंधान, डिजिटल तकनीक और तकनीकी उद्योग में व्यापक क्षमता है। 2022 में बिम्सटेक प्रौद्योगिकी अंतरण सुविधा की स्थापना से संबंधित समझौता हुआ और 2025 में यह व्यवस्था प्रभावी हुई। इसका उपयोग संयुक्त अनुसंधान, तकनीकी प्रशिक्षण, नवाचार और प्रौद्योगिकी हस्तांतरण के लिए किया जा सकता है। भारत और श्रीलंका स्वास्थ्य तकनीक, कृषि तकनीक, समुद्री विज्ञान, जलवायु परिवर्तन, डिजिटल सेवाओं और कौशल विकास जैसे क्षेत्रों में संयुक्त परियोजनाएँ विकसित कर सकते हैं। इस प्रकार बिम्सटेक दोनों देशों के संबंधों को पारंपरिक व्यापार और सुरक्षा से आगे ले जाकर ज्ञान आधारित साझेदारी का आधार दे सकता है।पाँचवाँ क्षेत्र पर्यटन, संस्कृति और जन-से-जन संपर्क है। भारत और श्रीलंका के बीच बौद्ध विरासत, धार्मिक स्थल, ऐतिहासिक संपर्क और पर्यटन संबंध पहले से मजबूत हैं। बिम्सटेक के जन-से-जन संपर्क क्षेत्र में संस्कृति और पर्यटन का महत्वपूर्ण स्थान है। दोनों देश बौद्ध पर्यटन, सांस्कृतिक विरासत, समुद्री पर्यटन और शैक्षणिक आदान-प्रदान को क्षेत्रीय पर्यटन परिपथों से जोड़ सकते हैं। विश्वविद्यालयों के बीच सहयोग, छात्रवृत्ति, युवा संवाद और संयुक्त शोध से सामाजिक स्तर पर संबंधों को अधिक स्थायी बनाया जा सकता है। भारत श्रीलंका के लिए पर्यटन का प्रमुख स्रोत है; इसलिए बेहतर क्षेत्रीय संपर्क और सरल यात्रा प्रक्रियाएँ दोनों देशों के लोगों के बीच संपर्क को और बढ़ा सकती हैं।

2025 के छठे बिम्सटेक शिखर सम्मेलन के बाद संगठन की भूमिका के लिए नई संभावनाएँ बनी हैं। बैंकॉक विजन 2030 ने बिम्सटेक को समृद्ध, लचीला और खुला क्षेत्र बनाने की व्यापक दिशा दी है। समुद्री परिवहन सहयोग समझौता क्षेत्रीय समुद्री सेवाओं, व्यापार और आर्थिक एकीकरण को बढ़ाने के लिए बनाया गया है। जुलाई 2025 में विशाखापत्तनम में आयोजित दूसरे बिम्सटेक पोर्ट्स कॉन्क्लेव में बंदरगाह सहयोग, सीमा-शुल्क और लॉजिस्टिक्स, समुद्री निवेश, क्रूज पर्यटन तथा समुद्री कौशल विकास जैसे विषयों पर ध्यान दिया गया। इन विकासों से यह स्पष्ट है कि बिम्सटेक की दिशा सामान्य राजनीतिक घोषणाओं से आगे बढ़कर परियोजना आधारित क्षेत्रीय संपर्क की ओर जा रही है। भारत और श्रीलंका के लिए अवसर यह है कि वे अपनी द्विपक्षीय परियोजनाओं को इन क्षेत्रीय तंत्रों से जोड़ें और सफल अनुभवों को अन्य सदस्य देशों तक विस्तारित करें।

8. चुनौतियाँ एवं सीमाएँ- बिम्सटेक की क्षमता के बावजूद उसके सामने कई चुनौतियाँ हैं। सबसे बड़ी चुनौती घोषणाओं और वास्तविक कार्यान्वयन के बीच का अंतर है। बिम्सटेक मुक्त व्यापार क्षेत्र से संबंधित प्रक्रिया लंबे समय से चल रही है, लेकिन उसके सभी घटक अभी तक पूरी तरह लागू नहीं हो पाए हैं। इसी प्रकार बड़ी संपर्क परियोजनाओं के लिए वित्त, तकनीकी क्षमता, प्रशासनिक समन्वय और राजनीतिक प्रतिबद्धता आवश्यक है। सदस्य देशों की आर्थिक क्षमता तथा प्राथमिकताएँ अलग-अलग होने के कारण परियोजनाओं की गति भी अलग हो सकती है। भारत और श्रीलंका के कुछ संवेदनशील मुद्दे, जैसे मत्स्य संसाधनों से संबंधित प्रश्न, सीधे द्विपक्षीय संवाद के माध्यम से अधिक प्रभावी ढंग से संबोधित किए जा सकते हैं। इसलिए बिम्सटेक को द्विपक्षीय तंत्र का विकल्प नहीं माना जाना चाहिए। इसकी उपयोगिता वहाँ अधिक है जहाँ दोनों देशों के साझा हित क्षेत्रीय सार्वजनिक वस्तुओं—जैसे समुद्री सुरक्षा, संपर्क, आपदा प्रतिक्रिया, तकनीकी सहयोग और व्यापार सुगमीकरण—से जुड़े हों।

9. प्रमुख निष्कर्ष एवं नीतिगत सुझाव- अध्ययन से स्पष्ट होता है कि बिम्सटेक भारत-श्रीलंका संबंधों को पाँच

प्रमुख स्तरों पर सुदृढ़ कर सकता है। पहला, यह व्यापार और निवेश को व्यापक क्षेत्रीय बाजार तथा आपूर्ति शृंखलाओं से जोड़ सकता है। दूसरा, परिवहन और समुद्री संपर्क दोनों देशों की भौगोलिक निकटता को अधिक प्रभावी आर्थिक संपर्क में बदल सकता है। तीसरा, सुरक्षा और आपदा प्रबंधन में साझा तंत्र विकसित किया जा सकता है। चौथा, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी में भारत की क्षमता और श्रीलंका की क्षेत्रीय नेतृत्वकारी भूमिका को संयुक्त परियोजनाओं में बदला जा सकता है। पाँचवाँ, पर्यटन और सांस्कृतिक संपर्क संबंधों को सामाजिक आधार दे सकते हैं। इस प्रकार बिम्सटेक की सफलता केवल समझौतों की संख्या से नहीं, बल्कि उनकी ठोस परियोजनाओं में परिणति से मापी जानी चाहिए।

नीतिगत रूप से भारत और श्रीलंका को बिम्सटेक के माध्यम से समुद्री संपर्क की साझा प्राथमिकताएँ तय करनी चाहिए। बंदरगाह सहयोग, माल एवं यात्री परिवहन, सीमा-शुल्क प्रक्रियाएँ और डिजिटल लॉजिस्टिक्स को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। व्यापार के क्षेत्र में कागजरहित प्रक्रियाएँ, तकनीकी मानकों में तालमेल और छोटे तथा मध्यम उद्यमों को क्षेत्रीय बाजार से जोड़ने के तंत्र विकसित किए जा सकते हैं। प्रौद्योगिकी अंतरण सुविधा को विश्वविद्यालयों, अनुसंधान संस्थानों और निजी नवाचार संस्थानों से जोड़ना उपयोगी होगा। आपदा प्रबंधन में संयुक्त प्रशिक्षण और पूर्व चेतावनी व्यवस्था मजबूत की जा सकती है। पर्यटन में बौद्ध और सांस्कृतिक परिपथों को क्षेत्रीय स्तर पर विकसित करना चाहिए। साथ ही प्रत्येक पहल के लिए समय-सीमा, वित्तीय व्यवस्था और मापने योग्य परिणाम तय किए जाने चाहिए।

10. निष्कर्ष- समग्र रूप से यह अध्ययन निष्कर्ष निकालता है कि बिम्सटेक भारत-श्रीलंका संबंधों को सुदृढ़ करने वाला एक महत्वपूर्ण पूरक क्षेत्रीय मंच है। इसकी सबसे बड़ी उपयोगिता यह है कि यह दोनों देशों के द्विपक्षीय हितों को बंगाल की खाड़ी के व्यापक आर्थिक, समुद्री और तकनीकी नेटवर्क से जोड़ सकता है। व्यापार और निवेश में क्षेत्रीय बाजार, परिवहन एवं समुद्री संपर्क में साझा नेटवर्क, सुरक्षा में सहयोगी तंत्र, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी में ज्ञान साझेदारी और पर्यटन में जन-से-जन संपर्क—ये सभी क्षेत्र भारत-श्रीलंका संबंधों को अधिक व्यापक बना सकते हैं। 2025 के बैंकॉक विजन 2030 और समुद्री परिवहन सहयोग समझौते ने इस दिशा में नई संभावनाएँ खोली हैं। फिर भी बिम्सटेक की सफलता कार्यान्वयन की गति, सदस्य देशों की राजनीतिक इच्छाशक्ति, वित्तीय संसाधनों और संस्थागत क्षमता पर निर्भर करेगी। इसलिए भारत और श्रीलंका को बिम्सटेक को अपने द्विपक्षीय संबंधों का विकल्प नहीं, बल्कि उनका क्षेत्रीय विस्तार मानना चाहिए। यदि दोनों देश घोषित पहलों को ठोस, समयबद्ध और परिणामोन्मुख परियोजनाओं से जोड़ते हैं, तो बिम्सटेक भारत-श्रीलंका संबंधों को केवल सुदृढ़ ही नहीं, बल्कि अधिक संस्थागत, संतुलित और दीर्घकालिक बनाने में प्रभावी भूमिका निभा सकता है।

संदर्भ सूची

Asian Development Bank. (2022). BIMSTEC master plan for transport connectivity. https://doi.org/10.22617/TCS210388-2

Asian Development Bank. (2023). Financing transport connectivity in the BIMSTEC region. https://doi.org/10.22617/TCS230387-2

BIMSTEC Secretariat. (2022a). BIMSTEC Charter. https://www.bimstec.org/

BIMSTEC Secretariat. (2022b). Memorandum of Association on the Establishment of BIMSTEC Technology Transfer Facility. https://www.bimstec.org/

BIMSTEC Secretariat. (2025a). BIMSTEC Bangkok Vision 2030. https://www.bimstec.org/

BIMSTEC Secretariat. (2025b). Agreement on Maritime Transport Cooperation. https://www.bimstec.org/

BIMSTEC Secretariat. (2025c). Trade, investment and development: BIMSTEC Free Trade Area framework. https://www.bimstec.org/trade-investment-and-development

BIMSTEC Secretariat. (2025d). Regional maritime cooperation gets a fresh impetus at 2nd BIMSTEC Ports Conclave. https://www.bimstec.org/event/266/regional-maritime-cooperation-gets-a-fresh-impetus-at-

2nd-bimstec-ports-conclave
High Commission of India, Colombo. (2026). India–Sri Lanka bilateral relations. Government of India. https://www.hcicolombo.gov.in/page/india-sri-lanka-bilateral-relations/
Konwer, S., - Hazarika, O. B. (2025). India and the BIMSTEC–regionalism, multilateral frameworks and a changing global order.
Australian Journal of International Affairs, 79(6), 969–987. 10357718.2025.2548934

प्रो. नीलिमा सिंह
विभागाध्यक्ष एवं प्रोफेसर
राजनीति विज्ञान विभाग
राजर्षि टंडन महिला महाविद्यालय
संघटक, इलाहाबाद विश्वविद्यालय
प्रयागराज, उत्तर प्रदेश, भारत

देवेंद्र कुमार जायसवाल
शोधार्थी
राजनीति विज्ञान विभाग
राजर्षि टंडन महिला महाविद्यालय
संघटक, इलाहाबाद विश्वविद्यालय
प्रयागराज, उत्तर प्रदेश, भारत

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

बुद्ध का महाकरुणावाद : विश्वशांति एवं वैश्विक संघर्ष-समाधान की समकालीन प्रासंगिकता

अपर्णा

1. सार-संक्षेप : वर्तमान विश्व अभूतपूर्व संकटों के दौर से गुजर रहा है। रूस-यूक्रेन युद्ध, इज़राइल-फ़िलिस्तीन संघर्ष, आतंकवाद, धार्मिक कट्टरता, परमाणु हथियारों की होड़ तथा आर्थिक व सामरिक प्रतिस्पर्धा ने वैश्विक शांति और मानव अस्तित्व के समक्ष गंभीर चुनौतियाँ उत्पन्न कर दी हैं। ऐसी परिस्थितियों में ऐसे नैतिक दर्शन की आवश्यकता है जो केवल युद्ध-विराम तक सीमित न होकर मानव-हृदय में करुणा, सह-अस्तित्व और परस्पर सम्मान की भावना का विकास करे। भगवान बुद्ध का महाकरुणावाद इसी प्रकार का सार्वभौमिक मानवीय दर्शन प्रस्तुत करता है। बौद्ध परंपरा में करुणा केवल सहानुभूति का भाव नहीं, बल्कि समस्त प्राणियों के दुःख को दूर करने का सक्रिय नैतिक संकल्प है। महायान बौद्ध परंपरा में बोधिसत्त्व आदर्श इसी महाकरुणा का सर्वोच्च रूप है, जहाँ साधक स्वयं के निर्वाण से पहले समस्त प्राणियों के कल्याण का संकल्प लेता है।बुद्ध के महाकरुणावाद का आधार अहिंसा, मैत्री, समता, क्षमा, संवाद तथा परस्पर निर्भरता (प्रतीत्यसमुत्पाद) का सिद्धान्त है। यही कारण है कि यह दर्शन आधुनिक संघर्ष-समाधान, शांति अध्ययन, मानवाधिकार तथा अंतरराष्ट्रीय संबंधों के लिए भी अत्यंत प्रासंगिक बन गया है। प्रस्तुत शोध-पत्र में बुद्ध के महाकरुणावाद की दार्शनिक अवधारणा का विश्लेषण करते हुए यह प्रतिपादित किया गया है कि यदि वैश्विक राजनीति, कूटनीति तथा सामाजिक जीवन में करुणा-आधारित दृष्टिकोण को अपनाया जाए तो स्थायी विश्वशांति की दिशा में सार्थक प्रगति संभव है।

मुख्य शब्द : महाकरुणा, बुद्ध, विश्वशांति, संघर्ष समाधान, अहिंसा, मैत्री, बोधिसत्त्व, बौद्ध नैतिकता।

2. भूमिका : इक्कीसवीं शताब्दी को विज्ञान, तकनीक और वैश्वीकरण का युग कहा जाता है, किंतु यही शताब्दी युद्ध, हिंसा, आतंकवाद और सामरिक प्रतिस्पर्धा की भी शताब्दी बनती जा रही है। संयुक्त राष्ट्र के अनुसार वर्तमान समय में विश्व के अनेक क्षेत्रों में सशस्त्र संघर्ष, गृहयुद्ध तथा मानवीय संकट निरंतर बढ़ रहे हैं। इन संघर्षों के कारण लाखों लोग विस्थापित हुए हैं, असंख्य नागरिकों की मृत्यु हुई है तथा वैश्विक अर्थव्यवस्था और पर्यावरण पर भी गंभीर प्रभाव पडा है।* आधुनिक युद्ध केवल सैनिकों तक सीमित नहीं रह गए हैं। आज युद्धों का सबसे अधिक दुष्प्रभाव सामान्य नागरिकों, महिलाओं, बच्चों और वृद्धों पर पड़ता है। परमाणु, रासायनिक और जैविक हथियारों की उपलब्धता ने मानव सभ्यता के अस्तित्व पर ही प्रश्नचिह्न लगा दिया है। ऐसी परिस्थितियों में केवल राजनीतिक समझौते या सैन्य संतुलन स्थायी शांति स्थापित नहीं कर सकते; इसके लिए मानवीय चेतना में परिवर्तन आवश्यक है। यहीं पर भगवान बुद्ध का दर्शन विशेष रूप से प्रासंगिक हो उठता है। बुद्ध ने लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व यह उद्घोष किया था कि संसार में वैर का अंत वैर से नहीं, बल्कि अवैर (मैत्री और करुणा) से होता है– "न हि वेरेन वेरानि सम्मन्ति इध कुदाचनं। अवेरेन च सम्मन्ति, एस धम्मो सनन्तनो।।" अर्थात् "इस संसार में वैर कभी वैर से समाप्त नहीं होता; वह केवल अवैर (मैत्री और करुणा) से समाप्त होता है। यही सनातन सत्य है।" यह गाथा केवल धार्मिक उपदेश नहीं, बल्कि संघर्ष-समाधान का एक सार्वभौमिक सिद्धान्त है।

बुद्ध ने मनुष्य के दुःख को केवल व्यक्तिगत समस्या नहीं माना, बल्कि उसे सामाजिक और सार्वभौमिक यथार्थ के रूप

में देखा। उन्होंने स्पष्ट किया कि जब तक लोभ, द्वेष और मोह मनुष्य के भीतर विद्यमान रहेंगे, तब तक हिंसा और संघर्ष समाप्त नहीं हो सकते। अतः बाहरी शांति का आधार आंतरिक शांति है। इसी दृष्टिकोण से बौद्ध दर्शन में महाकरुणा का सिद्धान्त विकसित हुआ, जो केवल दुःख का अनुभव करने तक सीमित नहीं है, बल्कि सक्रिय रूप से उसे दूर करने का नैतिक दायित्व स्वीकार करता है। यही महाकरुणा बुद्ध के नैतिक दर्शन की आत्मा है।

3. बुद्ध का महाकरुणावाद : अवधारणा, दार्शनिक आधार एवं नैतिक स्वरूप : बौद्ध दर्शन में करुणा का अर्थ है दूसरों के दुःख को अपने दुःख के समान अनुभव करना तथा उसे दूर करने का सक्रिय प्रयास करना। यह केवल भावनात्मक संवेदना नहीं, बल्कि नैतिक उत्तरदायित्व है। बौद्ध ग्रंथों में करुणा को ब्रह्मविहार (चार दिव्य भावनाओं) में स्थान दिया गया है। ये हैं—

मैत्री - सभी के प्रति प्रेम और सद्भाव।

करुणा - दुःखी प्राणियों के प्रति संवेदना और सहायता।

मुदिता - दूसरों की सफलता में प्रसन्नता।

उपक्षा - समता और निष्पक्षता।

इन चारों का समन्वय ही बौद्ध नैतिक जीवन का आधार है। इनमें करुणा को विशेष महत्त्व प्राप्त है क्योंकि यह मानव को आत्मकेंद्रित जीवन से निकालकर लोककल्याण की ओर प्रेरित करती है। महायान बौद्ध परंपरा में करुणा का विकसित स्वरूप महाकरुणा कहलाता है। 'महा' का अर्थ है—असीम, व्यापक और सार्वभौमिक। अर्थात् ऐसी करुणा जो किसी जाति, धर्म, राष्ट्र, भाषा या प्राणी-विशेष तक सीमित न होकर समस्त सृष्टि के प्रति समान रूप से प्रवाहित हो। बोधिसत्त्व आदर्श इसी महाकरुणा का मूर्त रूप है। बोधिसत्त्व स्वयं के निर्वाण को स्थगित कर पहले समस्त प्राणियों को दुःख से मुक्त करने का संकल्प लेता है। यह दृष्टिकोण व्यक्तिगत मुक्ति से आगे बढ़कर सार्वभौमिक कल्याण की स्थापना करता है। प्रोफेसर वालपोला राहुला के अनुसार, बुद्ध की करुणा निष्क्रिय दया नहीं है; यह सक्रिय नैतिक चेतना है जो व्यक्ति को दूसरों के दुःख के निवारण के लिए प्रेरित करती है।7 पीटर हार्वे भी लिखते हैं कि बौद्ध नैतिकता का अंतिम उद्देश्य करुणा और प्रज्ञा के संतुलन द्वारा ऐसे समाज की स्थापना करना है जिसमें हिंसा, शोषण और घृणा के लिए कोई स्थान न हो।8 महाकरुणा का दार्शनिक आधार प्रतीत्यसमुत्पाद का सिद्धान्त है। बुद्ध के अनुसार संसार की प्रत्येक सत्ता परस्पर निर्भर है; कोई भी वस्तु या व्यक्ति पूर्णतः स्वतंत्र नहीं है।

इसलिए किसी एक व्यक्ति या राष्ट्र का दुःख अंततः सम्पूर्ण मानवता को प्रभावित करता है। इस दृष्टि से युद्ध केवल दो देशों का संघर्ष नहीं, बल्कि समूचे मानव समाज की नैतिक पराजय है। इसी कारण बुद्ध ने प्रतिशोध के स्थान पर संवाद, दण्ड के स्थान पर सुधार, और हिंसा के स्थान पर करुणा को प्राथमिकता दी। उनका मानना था कि यदि व्यक्ति के भीतर करुणा का विकास हो जाए तो संघर्ष का मूल कारण स्वतः समाप्त होने लगता है।६ महाकरुणा केवल नैतिक उपदेश नहीं है; यह मानव व्यवहार का व्यावहारिक विज्ञान भी है। आधुनिक मनोविज्ञान के अनेक अध्ययन बताते हैं कि करुणा, सहानुभूति और संवाद-आधारित व्यवहार हिंसा को कम करने तथा सहयोग की भावना को बढ़ाने में प्रभावी भूमिका निभाते हैं। यही कारण है कि आज Peace Studies, Conflict Resolution तथा Restorative Justice जैसे क्षेत्रों में भी बौद्ध करुणा-दर्शन पर गंभीर शोध हो रहे हैं।

4. वैश्विक संघर्षों की प्रकृति एवं आधुनिक युद्धों की चुनौतियाँ- इक्कीसवीं शताब्दी में विश्व ने विज्ञान, प्रौद्योगिकी और संचार के क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति की है, किन्तु इसके समानांतर युद्ध, आतंकवाद, धार्मिक कट्टरता, परमाणु हथियारों की होड़ तथा आर्थिक वर्चस्व की राजनीति भी तीव्र हुई है। आधुनिक युद्ध अब केवल सीमाओं के विस्तार या राजनीतिक प्रभुत्व तक सीमित नहीं हैं, बल्कि वे आर्थिक हितों, ऊर्जा संसाधनों, सांस्कृतिक वर्चस्व, धार्मिक पहचान तथा भू-राजनीतिक प्रतिस्पर्धा से भी संचालित होते हैं। संयुक्त राष्ट्र के अनुसार वर्तमान समय में विश्व के अनेक क्षेत्रों में सक्रिय संघर्ष मानव जीवन, पर्यावरण और वैश्विक विकास के लिए गंभीर चुनौती बने हुए हैं। बौद्ध दर्शन की दृष्टि से प्रत्येक संघर्ष

का मूल कारण बाह्य परिस्थितियाँ नहीं, बल्कि मनुष्य के अंतःकरण में विद्यमान लोभ, द्वेष और मोह हैं। बुद्ध ने इन्हें 'त्रिविष' कहा है। जब ये व्यक्तिगत स्तर से बढ़कर सामूहिक चेतना और राज्य-नीति का अंग बन जाते हैं, तब युद्ध, हिंसा और विनाश जन्म लेते हैं।[1] आधुनिक युद्धों का सबसे बड़ा संकट यह है कि इनमें विजेता और पराजित दोनों ही अंततः मानवीय दृष्टि से पराजित होते हैं। युद्ध केवल सैनिकों के जीवन का ही ह्रास नहीं करता, बल्कि बच्चों के भविष्य, महिलाओं की सुरक्षा, नागरिकों के जीवनाधिकार, सांस्कृतिक धरोहरों, पर्यावरण, स्वास्थ्य-व्यवस्था तथा वैश्विक अर्थव्यवस्था को भी गम्भीर रूप से प्रभावित करता है। युद्धों के परिणामस्वरूप लाखों लोग अपने घरों से विस्थापित होते हैं, शरणार्थी संकट उत्पन्न होता है, खाद्य एवं ऊर्जा सुरक्षा प्रभावित होती है तथा मानसिक आघात, महामारी, गरीबी और सामाजिक विघटन जैसी समस्याएँ व्यापक रूप धारण कर लेती हैं। संयुक्त राष्ट्र, विश्व स्वास्थ्य संगठन तथा अन्य अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं की रिपोर्ट यह संकेत करती हैं कि युद्ध-प्रभावित क्षेत्रों में मानव विकास के अधिकांश सूचकांकों में उल्लेखनीय गिरावट आती है।[2]

समकालीन विश्व में रूस-यूक्रेन युद्ध, इज़राइल-फिलिस्तीन संघर्ष, सूडान का गृहयुद्ध, म्यांमार का आंतरिक संघर्ष, कांगो लोकतांत्रिक गणराज्य में सशस्त्र हिंसा, यमन में दीर्घकालिक संघर्ष तथा विभिन्न क्षेत्रों में सक्रिय आतंकवादी हिंसा यह स्पष्ट करती है कि युद्ध अब केवल दो राष्ट्रों के मध्य सीमित सैन्य टकराव नहीं रह गए हैं, बल्कि वे बहुआयामी भू-राजनीतिक, आर्थिक, वैचारिक तथा तकनीकी प्रतिस्पर्धाओं का रूप धारण कर चुके हैं। इसके साथ ही दक्षिण चीन सागर, ताइवान जलडमरूमध्य, कोरियाई प्रायद्वीप, आर्कटिक क्षेत्र तथा विभिन्न सीमा-विवादों से जुड़े तनाव भविष्य में भी अंतरराष्ट्रीय अस्थिरता की संभावनाओं को इंगित करते हैं। इसके अतिरिक्त साइबर युद्ध, कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित सैन्य प्रणालियाँ, स्वायत्त हथियार, अंतरिक्ष का सैन्यीकरण तथा जैविक एवं सूचना-आधारित संघर्ष भविष्य की युद्ध-प्रकृति को और अधिक जटिल बना रहे हैं। *ि वर्तमान वैश्विक व्यवस्था निरंतर शक्ति-संतुलन और सत्ता-परिवर्तन की प्रक्रिया से गुजर रही है। विभिन्न क्षेत्रों में राजनीतिक नेतृत्व के परिवर्तन, क्षेत्रीय शक्तियों के उदय, बहुध्रुवीय विश्व-व्यवस्था के विकास, सामरिक गठबंधनों के पुनर्गठन तथा आर्थिक प्रभाव-क्षेत्रों के विस्तार ने अंतरराष्ट्रीय संबंधों को नई दिशा दी है। ऐसी परिस्थितियों में प्रतिस्पर्धा, अविश्वास और सामरिक तनाव बढ़ने की आशंका बनी रहती है। यदि इन परिवर्तनों का संचालन संवाद, न्याय, परस्पर सम्मान और सहयोग की भावना के स्थान पर केवल शक्ति-प्रदर्शन और वर्चस्व की राजनीति से किया जाएगा, तो नए संघर्ष उत्पन्न हो सकते हैं। यही वह ऐतिहासिक और नैतिक संदर्भ है जिसमें भगवान बुद्ध का महाकरुणावाद विशेष रूप से प्रासंगिक सिद्ध होता है। बुद्ध का करुणा-दर्शन यह प्रतिपादित करता है कि स्थायी शांति केवल युद्धविराम या सैन्य संतुलन से स्थापित नहीं होती, बल्कि परस्पर विश्वास, संवाद, न्याय, सह-अस्तित्व तथा मानवीय गरिमा के सम्मान से विकसित होती है। अतः बदलती वैश्विक सत्ता-संरचना और उभरती सुरक्षा चुनौतियों के बीच बुद्ध का महाकरुणावाद विश्वशांति एवं वैश्विक संघर्ष-समाधान के लिए एक दूरदर्शी नैतिक प्रतिमान प्रस्तुत करता है।

5. विश्वशांति एवं वैश्विक संघर्ष- समाधान में बुद्ध के महाकरुणावाद की समकालीन प्रासंगिकता- बुद्ध का महाकरुणावाद केवल आध्यात्मिक साधना का सिद्धान्त नहीं, बल्कि सामाजिक और राजनीतिक जीवन के लिए भी एक नैतिक प्रतिमान प्रस्तुत करता है। इसका मूल उद्देश्य किसी विरोधी का विनाश नहीं, बल्कि उसके भीतर विद्यमान अज्ञान, द्वेष और हिंसक प्रवृत्तियों का परिवर्तन है। इस दृष्टि से बौद्ध करुणा दण्डात्मक न्याय के स्थान पर पुनर्स्थापनात्मक न्याय की समर्थक है।

(i) संवाद-आधारित संघर्ष-समाधान- बुद्ध ने अनेक अवसरों पर विवादों के समाधान के लिए संवाद और पारस्परिक समझ को प्राथमिकता दी। रोहिणी नदी विवाद का प्रसंग इसका श्रेष्ठ उदाहरण है, जहाँ शाक्य और कोलिय गणों के मध्य जल विवाद को बुद्ध ने युद्ध के स्थान पर संवाद द्वारा समाप्त कराया। उन्होंने प्रश्न किया कि जल अधिक मूल्यवान है या मानव जीवन? इस नैतिक प्रश्न ने दोनों पक्षों को युद्ध से पीछे हटने के लिए प्रेरित किया।[3] आज अंतरराष्ट्रीय कूटनीति में भी यदि संवाद को सैन्य विकल्पों से अधिक महत्त्व दिया जाए, तो अनेक संघर्षों को प्रारम्भिक स्तर पर ही नियंत्रित किया जा सकता है।

(ii) प्रतिशोध के स्थान पर करुणा- बुद्ध ने स्पष्ट कहा कि घृणा का उत्तर घृणा नहीं हो सकता। धम्मपद का प्रसिद्ध वचन- "न हि वेरेन वेरानि सम्मन्ति इध कुदाचनं; अवेरेन च सम्मन्ति।"[4] यह केवल धार्मिक शिक्षा नहीं, बल्कि शांति अध्ययन का मौलिक सिद्धान्त है। यदि राष्ट्र प्रतिशोध के स्थान पर संवाद, सहयोग और न्यायपूर्ण समाधान को अपनाएँ, तो हिंसा की पुनरावृत्ति को रोका जा सकता है।

(iii) करुणा-आधारित नेतृत्व- बौद्ध परंपरा में आदर्श नेतृत्व का आधार शक्ति नहीं, बल्कि करुणा और लोककल्याण है। दशराजधर्म में शासक के लिए दान, शील, परोपकार, सत्य, धैर्य, अहिंसा और क्षमा जैसे गुणों का उल्लेख मिलता है।[5]

समकालीन लोकतांत्रिक शासन में भी यदि राजनीतिक नेतृत्व नैतिक उत्तरदायित्व, संवेदनशीलता और मानवीय गरिमा को प्राथमिकता दे, तो युद्धोन्मुख नीतियों के स्थान पर सहयोगात्मक अंतरराष्ट्रीय संबंध विकसित हो सकते हैं।

(iv) वैश्विक नागरिकता और मानवीय एकता- महाकरुणा की अवधारणा किसी राष्ट्र, जाति, भाषा या धर्म तक सीमित नहीं है। बुद्ध ने समस्त प्राणियों के प्रति मैत्री और करुणा का उपदेश दिया। करणीय मेत्ता सुत्त में कहा गया है कि साधक को समस्त प्राणियों के प्रति उसी प्रकार मैत्री रखनी चाहिए जैसे माता अपने एकमात्र पुत्र की रक्षा करती है।[6] यह दृष्टिकोण आधुनिक वैश्विक नागरिकता की अवधारणा से भी मेल खाता है। यदि मानवता को साझा नैतिक समुदाय के रूप में देखा जाए, तो युद्ध की संभावना स्वतः कम हो सकती है।

(v) मानसिक शांति और हिंसा की रोकथाम- बुद्ध के अनुसार बाहरी हिंसा का स्रोत आंतरिक अशांति है। लोभ, क्रोध और मोह से मुक्त व्यक्ति ही वास्तविक शांति स्थापित कर सकता है। आधुनिक मनोविज्ञान में भी माइंडफुलनेस, करुणा-आधारित चिकित्सा तथा ध्यान को तनाव, आक्रामकता और हिंसक व्यवहार को कम करने में उपयोगी माना गया है।[7] यदि शिक्षा, प्रशासन, सेना तथा कूटनीति के प्रशिक्षण में करुणा, आत्मसंयम और संवाद के मूल्य शामिल किए जाएँ, तो संघर्ष निरोध की नई संभावनाएँ विकसित हो सकती हैं।

(vi) संयुक्त राष्ट्र और बौद्ध शांति-दृष्टि- यद्यपि संयुक्त राष्ट्र की स्थापना आधुनिक राजनीतिक संदर्भ में हुई, फिर भी उसके मूल उद्देश्य-विश्वशांति, मानवाधिकार, संवाद और सहयोग बौद्ध महाकरुणा के अनेक मूल्यों से साम्य रखते हैं। संयुक्त राष्ट्र चार्टर में युद्ध की विभीषिका से मानवता की रक्षा तथा विवादों के शांतिपूर्ण समाधान पर बल दिया गया है।[8]

बुद्ध का महाकरुणावाद इस विचार को नैतिक गहराई प्रदान करता है। वह केवल संस्थागत शांति की नहीं, बल्कि हृदय-परिवर्तन की भी आवश्यकता पर बल देता है। यही उसकी विशिष्टता है।

(vii) समकालीन संदर्भ में महाकरुणावाद की सीमाएँ और संभावनाएँ : यह भी स्वीकार करना आवश्यक है कि केवल नैतिक उपदेशों से सभी युद्ध समाप्त नहीं हो सकते। अंतरराष्ट्रीय राजनीति में सामरिक हित, आर्थिक प्रतिस्पर्धा और शक्ति-संतुलन जैसे कारक भी प्रभावी रहते हैं। तथापि इतिहास यह भी सिद्ध करता है कि स्थायी शांति केवल सैन्य विजय से नहीं, बल्कि विश्वास, न्याय, संवाद और नैतिक नेतृत्व से स्थापित होती है। इस दृष्टि से बुद्ध का महाकरुणावाद कोई तात्कालिक राजनीतिक रणनीति नहीं, बल्कि दीर्घकालिक नैतिक प्रतिमान है, जो व्यक्ति, समाज और राष्ट्र तीनों के व्यवहार में परिवर्तन का आग्रह करता है। उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि बुद्ध का महाकरुणावाद आधुनिक विश्व की अनेक चुनौतियों युद्ध, आतंकवाद, घृणा, धार्मिक कट्टरता, शरणार्थी संकट और मानसिक हिंसा के समाधान के लिए एक व्यापक नैतिक आधार प्रदान करता है। इसकी शक्ति केवल अहिंसा के उपदेश में नहीं, बल्कि करुणा, संवाद, न्याय और मानवीय सह-अस्तित्व के समन्वित दर्शन में निहित है।

6. निष्कर्ष : भगवान बुद्ध का महाकरुणावाद केवल बौद्ध धर्म की एक नैतिक शिक्षा नहीं, बल्कि मानव सभ्यता के लिए एक सार्वभौमिक जीवन-दर्शन है। इसका मूल उद्देश्य व्यक्ति के अंतर्मन में करुणा, मैत्री, अहिंसा, समता तथा प्रज्ञा का विकास करना है, जिससे वह अपने व्यक्तिगत हितों से ऊपर उठकर समस्त प्राणिमात्र के कल्याण का विचार कर सके। यही कारण है कि बौद्ध परम्परा में महाकरुणा को बोधिसत्त्व के सर्वोच्च गुण के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। आधुनिक विश्व जिन समस्याओं से जूझ रहा है—जैसे युद्ध, आतंकवाद, धार्मिक उग्रवाद, परमाणु हथियारों की होड़, शरणार्थी संकट,

आर्थिक असमानता तथा सांस्कृतिक असहिष्णुता उनका समाधान केवल राजनीतिक संधियों अथवा सैन्य शक्ति के माध्यम से स्थायी रूप से संभव नहीं है।

इन समस्याओं के मूल में मानव मन की हिंसक प्रवृत्तियाँ, लोभ, द्वेष, अहंकार तथा वर्चस्व की मानसिकता विद्यमान है। बुद्ध ने इन्हीं प्रवृत्तियों को दुःख और संघर्ष का वास्तविक कारण माना था। महाकरुणावाद की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह किसी शत्रु का विनाश नहीं चाहता, बल्कि शत्रुता की मानसिकता का परिवर्तन चाहता है। बुद्ध का यह विचार कि "वैर से वैर शांत नहीं होता, बल्कि अवैर से ही शांत होता है" आज भी अंतरराष्ट्रीय संबंधों और शांति-अध्ययन के लिए अत्यंत प्रासंगिक है। संवाद, सह-अस्तित्व, सहानुभूति, क्षमा तथा न्यायपूर्ण व्यवहार ही स्थायी शांति की आधारशिला हैं। समकालीन वैश्विक परिदृश्य में यह स्पष्ट दिखाई देता है कि हिंसा का उत्तर हिंसा देने से संघर्ष और अधिक जटिल हो जाता है। इसके विपरीत, करुणा-आधारित नेतृत्व, मानवीय कूटनीति, सांस्कृतिक संवाद तथा पुनर्स्थापनात्मक न्याय जैसे उपाय दीर्घकालिक शांति स्थापित करने में अधिक प्रभावी सिद्ध हो सकते हैं। बुद्ध का महाकरुणावाद इन्हीं मूल्यों का दार्शनिक और नैतिक आधार प्रदान करता है। यह भी सत्य है कि अंतरराष्ट्रीय राजनीति केवल नैतिक मूल्यों से संचालित नहीं होती; उसमें राष्ट्रीय हित, सुरक्षा, आर्थिक प्रतिस्पर्धा तथा सामरिक संतुलन जैसे अनेक कारक सक्रिय रहते हैं। फिर भी, यदि इन नीतियों के निर्माण में करुणा, मानव गरिमा और वैश्विक उत्तरदायित्व को स्थान दिया जाए, तो युद्धों की संभावना को कम किया जा सकता है। इस प्रकार बुद्ध का महाकरुणावाद व्यावहारिक राजनीति का विकल्प नहीं, बल्कि उसका नैतिक मार्गदर्शक बन सकता है। अतः कहा जा सकता है कि बुद्ध का महाकरुणावाद वर्तमान वैश्विक समाज के लिए केवल ऐतिहासिक या धार्मिक विरासत नहीं है, बल्कि विश्वशांति, संघर्ष-समाधान और मानवता के भविष्य के लिए एक जीवंत, प्रासंगिक और दूरदर्शी दार्शनिक दृष्टिकोण है।

शोध के प्रमुख निष्कर्ष

1. महाकरुणावाद बौद्ध नैतिक दर्शन का केंद्रीय तत्त्व है।
2. करुणा, मैत्री, अहिंसा और प्रज्ञा परस्पर पूरक सिद्धान्त हैं।
3. आधुनिक युद्धों का मूल कारण लोभ, द्वेष और सत्ता-लिप्सा जैसी मानसिक प्रवृत्तियाँ हैं।
4. बुद्ध का महाकरुणावाद संवाद-आधारित संघर्ष-समाधान का समर्थन करता है।
5. करुणा-आधारित नेतृत्व वैश्विक शांति के लिए अधिक प्रभावी नैतिक प्रतिमान प्रस्तुत करता है।
6. बौद्ध दृष्टिकोण पुनर्स्थापनात्मक न्याय की अवधारणा को सुदृढ़ करता है।
7. महाकरुणा मानवाधिकार, सामाजिक न्याय तथा वैश्विक नागरिकता की भावना को प्रोत्साहित करती है।
8. शिक्षा, कूटनीति और सार्वजनिक नीति में करुणा के समावेश से हिंसा की प्रवृत्तियों को कम किया जा सकता है।
9. महाकरुणावाद धार्मिक सीमाओं से परे सार्वभौमिक नैतिक दर्शन के रूप में स्वीकार्य है।
10. समकालीन विश्वशांति की स्थापना में बुद्ध का महाकरुणावाद एक प्रभावी वैचारिक आधार प्रदान करता है।

संदर्भः

1. राहुला, वालपोला. (1974). बुद्ध ने क्या सिखाया, (संशोधित संस्करण). न्यूयॉर्क : ग्रोव प्रेस।
2. हार्वे, पीटर. (2000). बौद्ध नैतिकता का परिचय : आधार, मूल्य एवं समकालीन प्रश्न; कैम्ब्रिज : कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
3. गेथिन, रूपर्ट. (1998). बौद्ध धर्म की आधारभूत अवधारणाएँ ऑक्सफोर्ड : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
4. बोधि, भिक्षु (अनुवादक). (2005). बुद्ध के वचन पाली कैनन से चयनित उपदेश; सोमरविल, मैसाचुसेट्स : विजडम

पब्लिकेशन्स।
5. बुद्धरक्खित, आचार्य (अनुवादक). (1985). धम्मपद; कैंडी (श्रीलंका) : बौद्ध पब्लिकेशन सोसाइटी।
6. आणमोली, भिक्षु एवं बोधि, भिक्षु (अनुवादक). (2009). मज्झिम निकाय : बुद्ध के मध्यम-दीर्घ उपदेशः (तृतीय संस्करण). सोमरविल, मैसाचुसेट्स : विजडम पब्लिकेशन्स।
7. वाल्शे, मॉरिस (अनुवादक). (1995). दीर्घ निकाय बुद्ध के दीर्घ प्रवचन; सोमरविल, मैसाचुसेट्स : विजडम पब्लिकेशन्स।
8. बोधि, भिक्षु (अनुवादक). (2012). अंगुत्तर निकाय बुद्ध के संख्यात्मक उपदेश; सोमरविल, मैसाचुसेट्स : विजडम पब्लिकेशन्स।
9. रीस डेविड्स, टी. डब्ल्यू. एवं रीस डेविड्स, सी. ए. एफ. (अनुवादक). (1910). बुद्ध के संवाद (भाग 1-3). लंदन ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
10. कॉन्ज़, एडवर्ड. (1959). बौद्ध धर्म उसका स्वरूप एवं विकास; न्यूयॉर्क : हार्पर एंड ब्रदर्स।
11. कीओन, डेमियन. (2017). बौद्ध नैतिकता एक संक्षिप्त परिचय; ऑक्सफोर्ड : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
12. गोम्ब्रिच, रिचर्ड. (2009). बुद्ध का वास्तविक चिंतन लंदन इक्विनॉक्स पब्लिशिंग।
13. हिराकावा, अकीरा. (1990). भारतीय बौद्ध धर्म का इतिहास शाक्यमुनि से प्रारम्भिक महायान तक होनोलूलू यूनिवर्सिटी ऑफ हवाई प्रेस।
14. कालुपहाना, डेविड जे. (1976). बौद्ध दर्शन : एक ऐतिहासिक विश्लेषण; होनोलूलू : यूनिवर्सिटी प्रेस ऑफ हवाई।
15. संयुक्त राष्ट्र. (2024). संयुक्त राष्ट्र वार्षिक प्रतिवेदन, 2024 न्यूयॉर्क : संयुक्त राष्ट्र।
16. स्टॉकहोम अंतरराष्ट्रीय शांति अनुसंधान संस्थान ेꣳ(प्च्त्). (2024). सिप्री ईयरबुक 2024 : शस्त्रीकरण, निरस्त्रीकरण एवं अंतरराष्ट्रीय सुरक्षा ऑक्सफोर्ड : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
17. विश्व स्वास्थ्य संगठन. (2022). विश्व मानसिक स्वास्थ्य प्रतिवेदन : सभी के लिए मानसिक स्वास्थ्य का रूपांतरण जेनेवा विश्व स्वास्थ्य संगठन।
18. गालटुंग, योहान. (1996). शांतिपूर्ण साधनों द्वारा शांतिरू शांति, संघर्ष, विकास एवं सभ्यता लंदन सेज पब्लिकेशन्स।
19. संयुक्त राष्ट्र. (1945). संयुक्त राष्ट्र चार्टर सैन फ्रांसिस्को संयुक्त राष्ट्र।

मो- 7505625394
म. नं. 1959, सेक्टर 8, फरीदाबाद, हरियाणा, 121006

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

रामायण में नारी चेतना : सीता एवं शबरी के विशेष संदर्भ में

डॉ. मधु ओझा

हम रामायण के (सीता-शबरी) इन दो महत्वपूर्ण नारी पात्रों के माध्यम से भारतीय दर्शन, समाज और नारी शक्ति का विश्लेषण कर सकते हैं। आज के प्रगतिशील युग में शबरी का आख्यान जितना प्रासंगिक एवं संदर्भयुक्त है उतना रामायण के गौण पात्रों में किसी अन्य का नहीं। यही वह पात्र है, जिसके चरित्र ने हिन्दू समाज की सहिष्णुता और उदारता का साक्षात्कार कराया है। शबरी, अहिल्या, केवट आदि पात्र इसके प्रमाण हैं।

सीता-शबरी - भारतीय सनातन चेतना, त्याग, समर्पण, और सामाजिक समरसता के दो ऐसे शिखर आयाम हैं, जो स्त्री शक्ति के दो अलग-अलग किन्तु पूरक स्वरूपों को दर्शाते हैं। एक ओर सीता राजसी वैभव से लेकर वनवास के कष्टों तक धर्म, धैर्य और पवित्रता की मिसाल हैं, तो वहीं दूसरी ओर शबरी आदिवासी, वंचित वर्ग और निष्काम भक्ति की मिसाल हैं। श्रीराम की परम नैष्ठिक भक्त शबरी को कौन नहीं जानता? 'शबरी कौन थी' (कुशाग्र अनिकेत) में शबरी को एक तपोनिष्ठ नारी के रूप में जाना। उनके अभिधान से ही स्पष्ट है कि वे वनवासी 'शबर-समुदाय' की महिला थीं।

रामायण के प्राचीन टीकाकारों के अनुसार शबरी का अर्थ क्या है? इस प्रश्न का उत्तर हम वाल्मीकि रामायण के प्राचीन और मान्य टीकाकारों के अनुसार पाते हैं। वाल्मीकि रामायण में शबरी की कथा संक्षेप में कही गई है। वहीं एक श्लोक आया है जिसमें शबरी के लिए तीन विशेषणों का उल्लेख किया गया है :

'धर्म चारिणी', 'श्रमणी' और 'धर्मनिपुण'

"स चस्य कथयामास, शबरी धर्मचारिणीम्।" "श्रमणीं धर्म निपुणाम्, भि गच्छेति राघव॥"

इस श्लोक पर तीन टीकाकारों—गोविंदराज, महेश्वर तीर्थ, माधव योगी ने व्याख्या की है। 'भूषण टीका' के प्रणेता गोविंदराज लिखते हैं :

"शबरी प्रतिलोमस्त्रियम, तदुक्तं नारदीये। नृपायां वैश्यतो जातः शबरः प्रतिकीर्तितः। मधूनि वृक्षादानीय विक्रीणीते स्ववृत्तेम।"

शबरी आदिवासी समुदाय से थी फिर भी उन्होंने जंगल में शिक्षा प्राप्त की और अध्यात्म में ऊंचा मुकाम हासिल किया। भगवान ने भी उनके प्रेम को स्वीकार किया। शबरी ने राम के आगमन पर श्रीराम से कहा था कि "आपके दर्शन मिलने से आज मेरी पूजा सार्थक हो गई और मुझे अब आपके दिव्यधाम की प्राप्ति भी होगी।"

नरेश मेहता : नरेश मेहता ने समाज में निम्न समझे जाने वाले वर्ग के उत्थान के लिए 'शबरी' काव्य लिखा है। शबरी मतंग ऋषि से स्पष्ट एवं सार्थक शब्दों में कहती है :

"मैं समझी प्रभु है अग्निरूप, सब सांसारिकता से ऊपर।"
"अन्त्यज भी हो जाते पावन, जिनकी पवित्रता को छूकर॥"

शबरी अनेक साध्वियों की तरह आजीवन अविवाहित रहीं। गुरु मतंग की शिष्या होने का सौभाग्य प्राप्त करती हैं, अपितु अस्पृश्य होने के कलंक से भी बच जाती हैं :

"सभी समान जन्म से होते,
द्विज बनते निज कर्म से।"

श्री नरेश मेहता कृत 'शबरी' की नायिका का नाम 'श्रमणा' है। श्रमणा का अर्थ है सन्यासिनी। नायिका को स्वयं अपने इस कृष्ण नाम पर आश्चर्य होता है :

"पता नहीं किस साधु ने नाम दिया था श्रमणा,
भला शबर लड़की का होता नाम कभी भी श्रमणा।"

नारायण चौबेरू श्री नारायण चौबे ने शबरी द्वारा राम को दिए गए बेरों को मधुर

कहकर अस्पृश्यता के विरुद्ध उनके प्रेम अभियान को मानव सेवा का प्रतीक बताया है, तो लक्ष्मण के आर्य संस्कारों को जबरदस्त झटका देकर स्वतंत्र्योत्तर काव्य में कवि ने अपनी आधुनिक मनीषा को आंदोलित किया हैरू

"नारी वह अन्त्यज की, प्रतिभा को छू न सकीं, राम पुरुषोत्तम को जूठा खिलाती है।"

"किंतु राम रस डूब रहे, प्रेम रस बहता है। बहती है जात-पांत, ऊंच नीच बहता है।"

'शबरी' खंडकाव्य में नरेश मेहता ने रामायण की इस उपेक्षित नारी को नायिका बनाया है। इस काव्य में मानवता एवं भक्ति संस्कृति का उज्जवल प्रतीक बनकर आयी है। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि आलोच्य कवियों ने गुरु भक्ति का उच्चादर्श, वर्तमान युग के शोषित, निम्नवर्ग के प्रतिनिधि तथा मानवतावादी दृष्टिकोण रखने वाली आदर्शवादी नायिका के रूप में उसे अंकित किया है। शबरी को नायिका के पद पर प्रतिष्ठित करना आलोच्य कवियों की नयी उपलब्धि है।

सामाजिक समरसता और समानता- शबरी का प्रसंग समाज में ऊँच-नीच के भेद को मिटाता है। एक आदिवासी (शबर जाति) और दलित वर्ग से आने वाली महिला के हाथों राम का कंद मूल फल ग्रहण करना यह दर्शाता है।

उन्होंने आजीवन ब्रह्मचर्य और तपस्या का मार्ग चुना।

शबरी का चरित्र अनन्य प्रेम और प्रतीक्षा का प्रतीक है। उसने अपने गुरु मतंग ऋषि के वचनों पर अटूट विश्वास करते हुए अपना पूरा जीवन राम की प्रतीक्षा में बिता दिया।

वे एक भील वनवासी समुदाय से थीं। उन्हें एक साधारण और निम्नवर्ग की तपस्विनी के रूप में देखा गया है, जो जंगल में रहती थीं। ऋर्षियों की सेवा करती थीं।

वे राम की अनन्य भक्त थीं। उनका राम से मिलन तब हुआ जब राम माता सीता को खोजते हुए मतंग ऋषि के आश्रम में गए थे, जहाँ शबरी ने प्रेमपूर्वक उन्हें जूठे बेर खिलाए।

इनका जीवन केवल प्रभु भक्ति और प्रतीक्षा को समर्पित था। उन्होंने अपने गुरु मतंग ऋषि की आज्ञा का पालन करते हुए वृद्धावस्था तक राम के आने की प्रतीक्षा की और दर्शन पाकर अपने प्राण त्याग दिए।

सुसंस्कृत नारी एवं साधना की मूर्तिरू शबरी एक सुसंस्कृत नारी है, भारतीय परम्पराओं का ख्याल रखती है। प्रातः उठकर, स्नान-ध्यान करके सूर्योदय से पहले ही गौशाला में गायों की सेवा, अन्न काटना, पीसना, पशुपक्षियों को दाना देना—सारी रातें प्रभु के मनुहार में बीत जातीं। उसकी अटूट साधना देखकर गुरु भी चकित हो जाते हैं :

"मंदार पुष्प सा जिसका / सर्वस्व समर्पित प्रभु को /
जो स्वयं तपस्या है अब / क्या वेद मंत्र है उसको।"

भक्ति की सर्वव्यापकता एवं विशेषताएँ

भक्ति की सर्वव्यापकता : विभिन्न संतों, आचार्यों (जैसे स्वामी आर्या, पंडित और राम कथा मर्मज्ञों) के अनुसार शबरी का प्रसंग यह सिद्ध करता है कि राम कथा पर किसी कुल, जाति या वर्ग विशेष का एकाधिकार नहीं है। भगवान उच्च्व कुल या कर्मकांड से नहीं, केवल शुद्ध और निष्कपट हृदय से प्रसन्न होते हैं।

प्रतीक्षा और अटूट विश्वास : आचार्यों का मत है कि शबरी का जीवन प्रतीक्षा की साधना का एक महान उदाहरण

है और यह इस बात का प्रतीक है कि सच्ची साधना और धैर्य का फल ईश्वर स्वयं चलकर देते हैं।

निःस्वार्थ सेवा और समर्पण : कथा मर्मज्ञों और विचारकों ने रेखांकित किया है कि बिना किसी अधिकार प्राप्ति की लालसा के मतंग ऋषि के आश्रम के मार्ग से काँटे और कंकड़ साफ किए। उनका यह सेवा भाव निष्काम कर्मयोग का प्रत्यक्ष रूप है।

नवधा भक्ति का आधार : श्रीराम ने शबरी को नवधा भक्ति (भक्ति के नौ प्रकार) का उपदेश दिया, जो यह स्पष्ट करता है कि सरल स्वभाव और भगवतप्रेम ही मोक्ष व गति का एकमात्र सोपान है।

दार्शनिक और सामाजिक संदेश : आधुनिक व पारंपरिक दोनों विचारकों ने माना है कि श्रीराम द्वारा शबरी के जूठे बेर (कंद, मूल, फल) प्रेमपूर्वक खाना समाज में ऊंच-नीच और अस्पृश्यता की दीवारों को गिराने वाला सबसे बड़ा मानवीय कृत्य है। 'राम-शबरी' मिलन वर्ण और वर्ग की सीमाओं से परे 'जीव और ब्रह्म' के अद्वैत प्रेम को दर्शाता है।

जाति व्यवस्था को चुनौती : शबरी एक आदिवासी समुदाय से होने के बाद भी उन्होंने जंगल में शिक्षा प्राप्त की और अध्यात्म में ऊँचा मुकाम हासिल किया।

निडर और स्वतंत्र जीवन : शबरी ने बाल विवाह की सामाजिक प्रथा को तोड़ा। इसके बाद और एक स्वतंत्र सन्यासी का जीवन चुना।

निर्णय लेने की स्वतंत्रता : कम उम्र में विवाह में पशुबलि का विरोध कर उन्होंने गृह त्याग दिया।

साधना का मार्ग : कठिन परिस्थितियों और अकेलेपन के बावजूद उन्होंने संयम, सेवा और तपस्या का मार्ग नहीं छोड़ा।

शबरी जनसाधारण और वंचित वर्ग की उस आत्मिक चेतना को उजागर करती है जो सीधे प्रभु से जुड़ सकती है।

माता सीता और नारी चेतना

माता सीता को सनातन संस्कृति में त्याग, पवित्रता, सहनशीलता और शक्ति का सर्वोच्च प्रतीक माना गया है। विभिन्न आचार्यों और विचारकों ने उनके चरित्र को अलग-अलग दार्शनिक और आध्यात्मिक दृष्टियों से परिभाषित किया है। सीता केवल एक आज्ञाकारी पत्नी के रूप में नहीं, बल्कि पितृसत्तात्मक व्यवस्था के सामने अपने आत्मसम्मान और अधिकारों के लिए संघर्ष करने वाली स्त्री के रूप में भी आंका जाता हैं।

सीता का चरित्र कर्तव्य, पतिव्रत धर्म और त्याग की पराकाष्ठा है प महलों के सुख को छोड़कर वनवास के कष्टों को सहना और अग्नि परीक्षा जैसे प्रसंगों में उनके समर्पण को देखा जा सकता है। माँ सीता का संपूर्ण जीवन धैर्य और त्याग की कहानी है। चाहे वह वनवास हो, रावण की अशोक वाटिका में बिताए दिन हों, या बाद में प्रकृति की गोद में सन्यास का जीवन—इनका चरित्र कर्तव्य, पतिव्रत धर्म और त्याग की पराकाष्ठा है।

कठिन फैसलों में साहस : सीता ने राजमहल के बजाए राम के साथ चौदह वर्ष के वनवास को चुना। उन्होंने राम से स्पष्ट शब्दों में कहा कि पत्नी होने के नाते मेरा कर्तव्य है कि दुख-सुख में आपके साथ रहूँ, वरना मेरा जीवन निरर्थक है। ये स्वर्ग भी मेरे लिए नरक के समान हैं :

"प्राण नाथ करुणायतन, सुंदर सुखद सुजान।
तुम्ह बिनु रघुकुल कुमुद विधु, सुरपुर नरक समानु॥"

सबल निर्णय क्षमता : सीता ने रावण की अशोक वाटिका में रहते हुए अपनी रक्षा स्वयं की। वे किसी के दबाव के आगे नहीं झुकीं।

स्वाभिमान और न्याय : उन्होंने अग्निपरीक्षा देकर अपनी पवित्रता साबित की; बाद में उन्होंने झूठे सामाजिक आरोपों को नकार दिया। इसके बजाए वे अपने बच्चों को पालने में सक्षम बनीं।

राजतंत्र बनाम लोक और मर्यादा : सीता जी का त्याग राम की मर्यादा को घटाता नहीं, बल्कि उनके लिए राजधर्म

की सर्वोच्चता को दर्शाता है।

अडिग सत्यनिष्ठा : लंका में सीताजी रावण की पूरी सेना के आगे एक तिनके का सहारा लेती हैं। यह दर्शाता है कि सत्य के प्रति अटूट निष्ठा और न्यूनतम संसाधनों में भी ईश्वर का साथ सबसे बड़ी शक्ति है।

विभिन्न संतों विचारकों और आधुनिक लेखकों ने सीता के चरित्र पर अपने अनूठे और गहन विचार व्यक्त किये हैं।

भूतपूर्व ऋषिकुमार भाविन भाई जोशी द्वारा माता सीता के पाँच गुणों का वर्णन किया गया है—माता धरती से तीन गुण पिता से दो गुण

श्रीरामचरितमानस में श्री तुलसीदास जी ने बड़ा ही प्यारा श्लोक लिखा है :

"उद्‌भव स्थिति संहार कारिणी क्लेश हारिणीम्,
सर्व श्रेयस्करी सीता नतोऽहं राम वल्लभाम्॥"

(जो उत्पत्ति, स्थिति और लय करने वाली है, समस्त क्लेशों को हर लेने वाली है, सभी का कल्याण करने वाली है, ऐसी श्रीराम प्रिया सीताजी को मैं नमस्कार करता हूँ।)

1. उत्पत्ति
2. स्थिति
3. लय

ये जो धरती माता के तीन गुण हैं वे गुण सीताजी के भीतर भी हैं। और सीता माता के पालक पिता महाराज जनकजी के दो गुण—

1. समस्त क्लेशों को दूर करना।
2. सभी का कल्याण करना

ये जो दो गुण हैं वे जनक जी से सीताजी को प्राप्त हुए हैं :

1. पृथ्वी माता से पुत्री सीता में उत्पत्ति का गुण— जैसा कि हम देखते हैं सभी वनस्पतियाँ, फल, औषधियाँ मूल सब धरती माता से ही उत्पन्न होते हैं और उनसे हमारा पोषण होता है, तो धरती माता की उत्पत्ति शक्ति और पालन शक्ति उनका तो हम अनुभव करते हैं और अगर एक मिनट के लिए भूचाल आ गया तो संहार शक्ति के दर्शन हो ही जाते हैं। सीता चरित में उदाहरण — माता सीता के भीतर भी ये तीन गुण देखने को मिलते हैं। जब श्रीराम को मनाने समस्त अयोध्यावासी चित्रकूट आये तो राम की तीनों माताएँ भी आईं। उनकी सेवा के लिए सीताजी ने और रूप बनाए सभी सासों की समान आदर पूर्वक सेवा की।

'सीय सासु प्रति वेष बनाई, सादर करई सरिस सेवकाई
लखा न मरमु राम बिन काहू, माया सब सिय माया माईं' [13]

(विश्व की समस्त माया सीता जी की माया के भीतर ही निहित है, तो यह है उत्पत्तिवाला गुण)

2. पृथ्वी माता से पुत्री सीता में स्थिति (पालन) का गुण— जब अयोध्या से सब बाराती जनकपुर आते हैं, तो सीताजी अनेक सिद्धियों का आवाहन करती हैं और उन्हें आज्ञा देती हैं कि जो बाराती आए हैं, उनका अच्छे से स्वागत करो। सेवा करो।

"सिद्धि सब सिय आयसु अकनि, गई जहाँ जनवास।
लिए संपदा सकल सुख, सुरपुर भोग विलास॥"

जहाँ बाराती रुके थे उनके निवास स्थान में वहाँ पर सब सिद्धियाँ, सुख, संपत्ति, भोग, कैसा भोग? जो भोग स्वर्ग में देवता भोगते हैं। (तो यहाँ पालन का गुण भी देखने को मिलता है)

3. पृथ्वी माता से पुत्री सीता में लय— (संहार का गुण) — और संहार गुण जैसे लौकिक दृष्टि से संहार और अलौकिक दृष्टि से रावणादि राक्षसों का उद्धार भी सीता जी के कारण ही हुआ है। सुंदर कांड में विभीषण जी कहते हैं, "कालरात्रि

निसिचर कुल केरी तेहि सीना पर प्रीति घनेरी'' [15] रावण को समझाते हुए विभीषण जी कहते हैं कि यह जो जानकी जी है, वे राक्षसों के लिए काल रात्रि हैं। (तो यहाँ संहार का गुण भी है) ख्सभी क्लेशों को दूर करना, सबका कल्याण करना, ये दो लीला सीता जी ने परोक्ष रूप से की हैं।,

4. राजा जनक से पुत्री सीता में सबका कल्याण करने का गुण– माता शबरी, सुग्रीव, हनुमान और लंका में विभीषण जैसे अनेक भक्तों का कल्याण हुआ और ये सब हुआ केवल और केवल माता सीता के कारण।

2. राजा जनक से पुत्री सीता में क्लेश दूर करने का गुण– श्री आनंद रामायण में 'करुणा की भंडार' सीता जी की रोचक कथा है। एक बार सीता जी ने राम से कहा मुझे अयोध्या का बाज़ार देखना है, तो राम ने राजमहल के झरोखे से बाज़ार दिखाया जहाँ सीता जी ने एक गरीब निर्धन स्त्री को एक छोटे से बच्चे के साथ देखा। सीता जी ने उसे राजमहल बुलाया उसे आभूषण दिए और कहा कि लक्ष्मण तुम अयोध्या के अलावा जो राज्य है वहाँ यह सूचना करवा दो की प्रजा बिना आभूषणों के, अच्छे वस्त्रों के न दिखे, अगर कोई ऐसा दिखा तो उसका दंड इस राज्य के राजा को भुगतना पड़ेगा। रामचंद्र जी साक्षात् उसे दंड देंगे।

निष्कर्ष– शबरी और सीता दोनों ही भारतीय संस्कृति में नारी गरिमा, सहनशीलता, त्याग और प्रेम की सर्वोच्च्य मिसाल हैं। समकालीन समाज में दोनों के चरित्र प्रासंगिक हैं – शबरी हमें समता और प्रेम का संदेश देती है जबकि सीता हमें विपरीत परिस्थितियों में भी भौतिक मूल्यों पर टिके रहने की प्रेरणा देती है। सामाजिक पृष्ठभूमि और जीवन के अनुभवों में भिन्नता के बावजूद दोनों ने मर्यादा पुरुषोत्तम 'राम' के जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और प्रेम व समर्पण का अद्वितीय; उदाहरण प्रस्तुत किया। दोनों का दर्शन मिलकर एक ऐसे समाज की रचना करता है जहाँ राजमहल से लेकर कुटिया तक और कुलवधू से लेकर आदिवासी महिला तक हर व्यक्ति का आध्यात्मिक और सामाजिक मूल्य समान है।

संदर्भ

1. बाल्मीकि रामायण 1.1.56 पेज 55
2. भूषण टीका के प्रणेता आचार्य गोविंद राज पाणिनी सूत्र 4.1.63,
3. बाल्मीकि रामायण अरण्य कांड सर्ग 74 श्लोक 12,
4. आदिवासी साहित्य विमर्श (नरेश मेहता) पेज 6/8
5. हिंदी काव्य कृति 'शबरी', 'खंडकाव्य' (रत्नचन्द्र शर्मा) पेज 6/8
6. नरेश मेहता द्वारा लिखित प्रसिद्ध खंडकाव्य 'शबरी', पृ. 6/8
7. नरेश मेहता खंडकाव्य 'शबरी' के संदर्भ में, वही
8. 'शबरी' खंडकाव्य नरेश मेहता 1977 में संख्या नं. 61-80
9. ये पंक्तियाँ वेद मंत्र हैं (आदि शंकराचार्य - शिव पंचाक्षर स्तोत्र)
10. बाल्मीकि रामायण - अयोध्या कांड 30.30
11. राम चरित मानस (तुलसी दास) - अयोध्या कांड दोहा 63
12. राम चरित मानस - चौपाई 5 पृ. 23 बालकांड (मंगलाचरण)
13. मूल राम चरित मानस - दोहा 251/2 अयोध्या कांड
14. राम चरित मानस (बालकांड) दोहा संख्या 306
15. राम चरित मानस (सुंदरकांड) दोहा 39, 40 पृ. 697

सेवानिवृत्त शिक्षिका, कोलकाता

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

तेजेन्द्र शर्मा के कथा-साहित्य में प्रवासी यथार्थ और सांस्कृतिक द्वंद्व का विस्तृत विश्लेषणात्मक अध्ययन

दीप्ति जोशी, प्रो. शिखा श्रीधर

शोध-सार

भूमंडलीकरण और नव-उदारवाद के वर्तमान तकनीकी युग में 'प्रवासी साहित्य' हिन्दी साहित्य की एक अत्यंत सशक्त, मुखर और अपरिहार्य विधा के रूप में अपनी विशिष्ट पहचान स्थापित कर चुका है। प्रस्तुत शोध-आलेख प्रवासी साहित्य के अग्रणी, मूर्धन्य और बहुचर्चित कथाकार तेजेन्द्र शर्मा की कहानियों में अभिव्यक्त 'प्रवासी यथार्थ' और 'सांस्कृतिक द्वंद्व' का गहन, समाजशास्त्रीय और मनोवैज्ञानिक विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है1। तेजेन्द्र शर्मा का साहित्य केवल मातृभूमि से दूर जाने के विलाप, भावुकता या अतीत-मोह (स्मृति-दंश) तक सीमित नहीं है, अपितु यह दो सर्वथा भिन्न संस्कृतियों के मध्य पिसते आधुनिक मनुष्य के मनोवैज्ञानिक संघर्ष, उसके मानसिक संत्रास और उसकी विखंडित अस्मिता का एक अत्यंत प्रामाणिक और जीवंत दस्तावेज़ है। इस शोध-पत्र का मुख्य उद्देश्य यह प्रमाणित करना है कि किस प्रकार लेखक ने 'अभिशप्त', 'ढिबरी टाइट', 'हाथ से फिसलती ज़मीन', 'क़ब्र का मुनाफ़ा' और 'पासपोर्ट का रंग' जैसी अपनी कालजयी प्रतिनिधि कहानियों के माध्यम से विस्थापन की पीड़ा, महानगरीय यांत्रिकता, अस्मिता के संकट, नस्लवाद और बाज़ारवाद जैसी ज्वलंत वैश्विक समस्याओं को यथार्थवादी धरातल पर उकेरा है।[2] तेजेन्द्र शर्मा के पात्र भौगोलिक रूप से भले ही परदेश में असीमित भौतिक सुख-सुविधाओं के मध्य जीवन यापन कर रहे हों, परंतु मनोवैज्ञानिक धरातल पर वे अपनी जड़ों की तलाश में सतत संघर्षरत रहते हैं। प्रस्तुत अध्ययन यह निष्कर्ष निकालता है कि तेजेन्द्र शर्मा की कहानियों का प्रवासी यथार्थ किसी पूर्व-निर्धारित राजनीतिक या वैचारिक सांचे में बँधा हुआ नहीं है, बल्कि यह उस सार्वभौमिक 'हारे हुए मनुष्य' की गाथा है जो एक अजनबी परिवेश में अपनी अस्मिता, अपनी सांस्कृतिक जड़ों और अपनी मानवीय संवेदनाओं को बचाए रखने हेतु निरंतर संघर्ष कर रहा है।

बीज-शब्द : प्रवासी साहित्य, सांस्कृतिक द्वंद्व, विस्थापन का दंश, महानगरीय संत्रास, अस्मिता का संकट, मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद, बहुसंस्कृतिवाद, बाज़ारवाद, उत्तर-औपनिवेशिक विमर्श।

1. प्रस्तावना- हिन्दी साहित्य के विस्तृत, वैविध्यपूर्ण और बहुआयामी परिदृश्य में प्रवासी साहित्य का उद्‌भव, विकास और उसकी वर्तमान प्रासंगिकता एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण, युगांतरकारी और ध्यानाकर्षक परिघटना है। साहित्य सदैव समाज का पारदर्शी दर्पण रहा है, परंतु जब समाज की भौगोलिक सीमाएँ विस्तृत होकर पार-राष्ट्रीय हो जाती हैं, तब साहित्य का स्वरूप, उसकी संवेदनाएँ और उसके सरोकार भी वैश्विक हो जाते हैं। ऐतिहासिक और समाजशास्त्रीय दृष्टि से यदि हम इस विकास-क्रम का समग्र मूल्यांकन करें, तो प्रवासी साहित्य का आरंभ मुख्यतः उन 'गिरमिटिया' (अनुबंधित) श्रमिकों की असीम पीड़ा, क्रंदन, रक्त-रंजित इतिहास और उनके अमानवीय संघर्ष से हुआ था, जिन्हें औपनिवेशिक शासनकाल में ब्रिटिश साम्राज्य द्वारा मॉरीशस, फिजी, सूरीनाम, गयाना और त्रिनिदाद आदि देशों में गन्ने के खेतों में अमानवीय श्रम करने हेतु बलपूर्वक या

छलपूर्वक ले जाया गया था। उस आरंभिक कालखंड का साहित्य मुख्य रूप से क्रंदन, शोषण, दारुण दुख, यातना और अपनी खोई हुई मातृभूमि की स्मृति का साहित्य था, जहाँ विस्थापन एक विवशता थी और वापसी की कोई आशा शेष नहीं थी। उस युग का मनुष्य अपनी अस्मिता खोकर मात्र एक संख्या या यंत्र बनकर रह गया था। परंतु, बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध और इक्कीसवीं शताब्दी के भूमंडलीकरण (वैश्वीकरण) एवं संचार क्रांति के इस आधुनिक युग में प्रवास की प्रकृति, उसके अंतर्निहित कारणों, भौगोलिक परिस्थितियों और तदनुरूप रचे जा रहे साहित्य के मूल स्वर में आमूलचूल परिवर्तन आया है। आधुनिक युग का यह नवीन प्रवासी साहित्य मुख्य रूप से स्वेच्छा से प्रवास करने वाले उन उच्च-शिक्षित पेशेवरों, बुद्धिजीवियों, वैज्ञानिकों, चिकित्सकों और तकनीकी विशेषज्ञों की रचनाधर्मिता का सीधा प्रतिफल है, जिन्हें समाजशास्त्रीय पारिभाषिक शब्दावली में 'मस्तिष्क-पलायन' कहा जाता है। ये वे महात्वाकांक्षी लोग हैं जो बेहतर आजीविका, उच्च जीवन-स्तर, बौद्धिक स्वतंत्रता, उन्मुक्त परिवेश और चरम भौतिक समृद्धि की आकांक्षा में पश्चिमी देशों (यथा- ब्रिटेन, अमेरिका, कनाडा आदि) में जाकर स्थायी रूप से बस गए हैं। यह आधुनिक प्रवासी साहित्य केवल मातृभूमि की स्मृति या भावुकतापूर्ण अतीत-मोह (नोस्टाल्जिया) तक स्वयं को सीमित नहीं रखता; बल्कि यह आधुनिक बहुसंस्कृतिवाद, परोक्ष एवं प्रत्यक्ष नस्लवाद, पीढ़ियों के बीच पनपते भयंकर वैचारिक अंतराल, अंतर-सांस्कृतिक विवाहों की विफलता, पूँजीवादी जकड़न और आधुनिक मनुष्य के गहरे अस्तित्ववादी अकेलेपन जैसे अत्यंत जटिल, नवीन और ज्वलंत प्रश्नों को बहुत मुखरता के साथ अभिव्यक्त करता है। यह साहित्य केवल अतीत का रुदन नहीं है, अपितु यह वर्तमान की विसंगतियों, भविष्य की अनिश्चितताओं और दो संस्कृतियों की टकराहट का प्रामाणिक समाजशास्त्रीय अध्ययन है1।

इसी आधुनिक प्रवासी कथा-साहित्य के अग्रदूतों, संस्थापकों और सर्वाधिक प्रखर हस्ताक्षरों में तेजेन्द्र शर्मा का नाम अत्यंत आदर, गंभीरता और प्रमुखता के साथ लिया जाता है। इक्कीस अक्टूबर उन्नीस सौ बावन को पंजाब राज्य के जगराँव शहर के रेलवे क्वार्टरों में जन्मे तेजेन्द्र शर्मा का जीवन स्वयं अत्यंत वैविध्यपूर्ण, संघर्षशील और जीवनानुभवों से परिपूर्ण रहा है3। उनके पिता रेलवे विभाग में सहायक स्टेशन मास्टर के पद पर कार्यरत थे, जिसके परिणामस्वरूप उनका बचपन उचाना, रोहतक और मौड़ मंडी जैसे विभिन्न स्थानों के सघन अनुभवों के मध्य व्यतीत हुआ3। वर्ष उन्नीस सौ साठ में उनका परिवार दिल्ली आ गया जहाँ अंधा मुग़ल क्षेत्र के एक सरकारी विद्यालय से उनकी आरंभिक शिक्षा संपन्न हुई और तदुपरांत उन्होंने दिल्ली विश्वविद्यालय से कला स्नातक (आनर्स) और स्नातकोत्तर (अंग्रेज़ी साहित्य) की उपाधियाँ अत्यंत योग्यता के साथ प्राप्त कीं।[3] उनका रचनात्मक कैनवास अत्यंत विस्तृत है। वे केवल एक कथाकार ही नहीं, अपितु एक उत्कृष्ट अभिनेता, प्रसारक और नाटककार भी रहे हैं। उन्होंने दूरदर्शन के अत्यंत लोकप्रिय धारावाहिक 'शांति' के लगभग एक सौ चालीस अंकों (एपिसोड) का सफल लेखन किया और सुप्रसिद्ध फिल्म 'अभय' में प्रख्यात अभिनेता नाना पाटेकर के साथ अपने अभिनय की गहरी छाप भी छोड़ी3। भारतीय विमानन सेवा में लंबे समय तक कार्य करने के पश्चात वर्ष उन्नीस सौ अट्ठानवे में वे ब्रिटेन (लंदन) जाकर बस गए और वहाँ उन्होंने ब्रिटिश प्रसारण निगम (बी.बी.सी.) में भी अपनी सेवाएँ दीं। विश्व के विभिन्न कोनों की अनवरत यात्राओं, महानगरीय संघर्षों और विविध संस्कृतियों के सघन सामीप्य ने उनकी लेखनी को वह सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक दृष्टि, तटस्थता और धार प्रदान की, जिससे वे मानवीय मन की अतल गहराइयों में उतर सके। उनके उत्कृष्ट और युगांतरकारी साहित्यिक अवदान हेतु उन्हें वर्ष दो हज़ार सत्रह में ब्रिटेन की महारानी एलिज़ाबेथ द्वितीय द्वारा 'मेम्बर ऑफ़ ब्रिटिश एम्पायर' की अत्यंत गरिमामयी और दुर्लभ राजकीय उपाधि से भी सम्मानित किया जा चुका है3। इसके अतिरिक्त उन्हें महाराष्ट्र राज्य साहित्य अकादमी पुरस्कार, हरियाणा साहित्य अकादमी सम्मान और केन्द्रीय हिन्दी संस्थान का प्रतिष्ठित डॉ. मोटुरी सत्यनारायण सम्मान भी प्राप्त हो चुका है।[4] उनका साहित्य वास्तव में उस आधुनिक प्रवासी मनुष्य की गाथा है जो भौतिक संपन्नता के उच्चतम शिखर पर पहुँचकर भी अपनी आत्मा के भीतर एक अंतहीन शून्यता, अजनबीपन और निर्वासन महसूस करता है।

2. शोध के उद्देश्य- प्रस्तुत शोध-आलेख निम्नलिखित प्रमुख अकादमिक उद्देश्यों को ध्यान में रखकर तैयार किया गया है :

1. तेजेन्द्र शर्मा के कथा-साहित्य में निहित प्रवासी यथार्थ और विस्थापन की पीड़ा के विविध मनोवैज्ञानिक आयामों का सूक्ष्म विश्लेषण करना।

2. दो भिन्न संस्कृतियों (भारतीय और पाश्चात्य) के मध्य उत्पन्न होने वाले 'सांस्कृतिक द्वंद्व' और उसके परिणामस्वरूप उत्पन्न 'अस्मिता के संकट' का उनकी प्रतिनिधि कहानियों के माध्यम से मूल्यांकन करना।

3. महानगरीय संत्रास, यांत्रिकता और आधुनिक पूँजीवादी बाज़ारवाद के अमानवीयकरण का प्रवासी पात्रों के जीवन पर पड़ने वाले कुप्रभावों को रेखांकित करना।

4. समकालीन वैश्विक विमर्शों (यथा- स्त्री-विमर्श, नस्लवाद, समलैंगिकता और उत्तर-औपनिवेशिक चेतना) के परिप्रेक्ष्य में तेजेन्द्र शर्मा के कथा-शिल्प की प्रासंगिकता सिद्ध करना।

3. शोध-प्रविधि- प्रस्तुत शोध-कार्य को पूर्ण करने हेतु मुख्य रूप से 'विश्लेषणात्मक', 'वर्णनात्मक' एवं 'मनोवैज्ञानिक-समाजशास्त्रीय' शोध-प्रविधि का आश्रय लिया गया है। तेजेन्द्र शर्मा के प्राथमिक स्रोतों (उनके मूल कहानी-संग्रहों यथा 'काला सागर', 'ढिबरी टाइट', 'बेघर आँखें' आदि) का गहन पाठ-विश्लेषण किया गया है। इसके अतिरिक्त, प्रवासी साहित्य की सैद्धांतिकी और आलोचकों के मतों (द्वितीयक स्रोतों) का उपयोग करते हुए, पात्रों के अंतर्द्वंद्वों की मीमांसा समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में की गई है।

4. प्रवासी विमर्श की सैद्धांतिकी और तेजेन्द्र शर्मा का साहित्य- साहित्यशास्त्र, समाजशास्त्र और उत्तर-औपनिवेशिक अध्ययनों के अंतर्गत 'प्रवासी विमर्श' एक अत्यंत जटिल, सूक्ष्म और बहुआयामी वैचारिक अवधारणा है। अकादमिक दृष्टिकोण से प्रवास केवल एक देश से दूसरे देश की भौगोलिक यात्रा का नाम नहीं है; यह एक संपूर्ण जीवन-दृष्टि, पीढ़ियों से संचित परंपराओं, संस्कारों, भाषा और मानवीय संबंधों का ऐसा निर्मम विस्थापन है जहाँ मनुष्य अपनी जड़ों से उखड़कर एक नई और प्रायः विपरीत मिट्टी (परिवेश) में स्वयं को रोपने का जीवन-पर्यंत प्रयास करता है। एक प्रवासी व्यक्ति भौतिक रूप से अपनी मातृभूमि का त्याग तो कर देता है और नई भूमि की नागरिकता (पासपोर्ट) भी सहर्ष अंगीकार कर लेता है, परंतु उसकी अवचेतन मानसिक संरचना, उसके मूल संस्कार और उसकी सांस्कृतिक जड़ें सदैव उसकी मातृभूमि की स्मृति से ही संबद्ध रहती हैं। प्रसिद्ध उत्तर-औपनिवेशिक और सांस्कृतिक विचारकों ने अपनी सैद्धांतिक अवधारणाओं में 'संकरता' और 'त्रिशंकु अवस्था' (दो लोकों के मध्य की अवस्था) का अत्यंत सविस्तार उल्लेख किया है। इस सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य के अनुसार, प्रवासी व्यक्ति न तो अपनी मूल (पैतृक) संस्कृति का पूर्णतः रह जाता है क्योंकि वह भौगोलिक रूप से उससे कट चुका है, और न ही वह नई (विदेशी या मेज़बान) संस्कृति को पूर्णतः आत्मसात कर पाता है क्योंकि विदेशी समाज उसे सदैव एक 'बाहरी' या 'अन्य' के रूप में देखता है। वह इन दोनों संस्कृतियों के मध्य एक ऐसे अदृश्य और अमूर्त 'तीसरे स्थान' में निवास करता है, जो सतत संघर्ष, संदेह, पहचान के विखंडन और दुविधा का स्थान है। इस अवस्था में 'घर' की पारंपरिक अवधारणा पूर्णतः खंडित हो जाती है। घर अब ईंट-पत्थर का कोई सुरक्षित आश्रय न रहकर मात्र एक स्मृति-लोक बन जाता है, और व्यक्ति हर स्थान पर स्वयं को 'बेघर', 'अजनबी' या 'विस्थापित' अनुभव करने लगता है।

तेजेन्द्र शर्मा का साहित्य इसी 'त्रिशंकु अवस्था' और सांस्कृतिक संकरता का सर्वोत्कृष्ट, जीवंत और सर्वाधिक प्रामाणिक आख्यान है। वे हिन्दी साहित्य में एक अत्यंत मज़बूत 'सेतु' (पुल) की भाँति कार्य करते हैं, जो भारत और प्रवासी समाज की मानसिकताओं को आपस में जोड़ता है3। उनके पात्र पाश्चात्य समाज की भौतिक समृद्धि, वातानुकूलित जीवन-शैली और यांत्रिक चकाचौंध के उच्चतम शिखर पर पहुँचने के पश्चात भी एक गहरे आत्मिक शून्य, मानसिक अवसाद और भयंकर अलगाव से ग्रसित हैं। तेजेन्द्र शर्मा इस गूढ़ सैद्धांतिक तथ्य को अत्यंत भली-भाँति समझते हैं कि प्रवास की प्रक्रिया में जो कुछ पीछे छूट जाता है (यथा- पारिवारिक ऊष्मा, निश्छल संबंध, सामाजिक सुरक्षा, उत्सवधर्मिता और मातृभाषा), उसकी भरपाई नई संस्कृति के भौतिक सुख, महँगी गाड़ियाँ या विशाल भवन कभी नहीं कर सकते। नया समाज जो कुछ भी आर्थिक रूप से प्रदान करता है, वह मनुष्य की अंतरात्मा को तृप्त करने में सर्वथा अक्षम सिद्ध होता है।

वे अपने साहित्य में इस निर्मम अस्तित्ववादी संकट, पहचान के विखंडन और मूल्यों के विघटन को बिना किसी आवरण,

कृत्रिमता या सस्ती भावुकता के यथार्थवादी धरातल पर प्रस्तुत करते हैं। उनके पात्रों का दृष्टिकोण पूर्णतः मानवीय होता है, जो यथार्थ और आदर्श के मध्य निरंतर झूलते हुए दिखाई देते हैं1 । उनका साहित्य केवल अकादमिक विमर्शों का नीरस पाठ नहीं है, अपितु यह सैद्धांतिक विमर्शों का व्यावहारिक और स्पंदित मानवीय रूप है, जो पाठक को प्रवास के उस अंधकारमय और त्रासद पहलू से साक्षात परिचित कराता है जिसे प्रायः विदेशी चकाचौंध और आर्थिक समृद्धि के सुनहरे आवरण से ढक दिया जाता है। लंदन जैसे महानगर में रहने के पश्चात भी वे भारतीय मूल्यों और संस्कारों की सूक्ष्म पकड़ को अपनी चेतना में सुरक्षित रखते हैं।

5. कथा-साहित्य में प्रवासी यथार्थ और सांस्कृतिक द्वंद्व के विविध आयाम- तेजेन्द्र शर्मा की कहानियों का सबसे सशक्त, विलक्षण और रेखांकित करने योग्य पक्ष उनका निभीक, तटस्थ और निर्मम यथार्थवाद है। वे उन रूमानी रचनाकारों की श्रेणी में कदापि नहीं आते जो केवल विदेशों की सुरक्षित और वातानुकूलित सुख-सुविधाओं में बैठकर भारत की ग़रीबी, गाँवों की धूल या अतीत की स्मृतियों का कृत्रिम विलाप करते हैं। वे जिस विदेशी भूमि (मुख्यतः ब्रिटेन) पर रहते हैं, वहाँ के कठोर यथार्थ, वहाँ के अजनबीपन, वहाँ के समाज की संस्थागत जटिलताओं, प्रच्छन्न नस्लवाद और पश्चिमी सभ्यता के आत्मकेंद्रित दोहरे चरित्र को पूर्ण ईमानदारी और निभीकता से अपने साहित्य में उकेरते हैं। उनकी कहानियों में सर्वथा नवीन वातावरण दृष्टिगोचर होता है जो पारंपरिक हिन्दी कथा-जगत के लिए एक नई उपलब्धि है।[7] उनके कथा-साहित्य में सांस्कृतिक द्वंद्व, महानगरीय जीवन और प्रवासी यथार्थ के निम्नलिखित प्रमुख आयाम अत्यंत विस्तार से दृष्टिगोचर होते हैंः

5.1 स्मृति-दंश, विस्थापन की मनोवैज्ञानिक पीड़ा और आत्मिक अलगाव- प्रवासी जीवन की सबसे बड़ी, मौन और भयावह मनोवैज्ञानिक त्रासदी यह है कि वह व्यक्ति की चेतना को दो सर्वथा विपरीत संस्कृतियों के बीच बुरी तरह से अटका कर क्षत-विक्षत कर देता है। एक बार प्रवास करने के बाद मनुष्य की वैचारिक और मानसिक संरचना इतनी परिवर्तित हो जाती है कि उसके लिए 'घर' या 'स्वदेश' कोई एक निश्चित भौगोलिक स्थान न रहकर केवल स्मृति, आत्मीयता, एक मीठी कसक और एक अंतहीन तड़प की एक अमूर्त मानसिक अवस्था बन जाता है। तेजेन्द्र शर्मा इस जटिल मनोवैज्ञानिक पीड़ा, पहचान के इस संकट और आत्मिक अलगाव को अत्यंत सूक्ष्मता, गहराई और असीम करुणा के साथ पकड़ते हैं।उनकी अत्यंत मार्मिक, बहुचर्चित और प्रतिनिधि कहानी 'अभिशप्त' का नायक रजनीकांत इसी कठोर नियति का मारा हुआ, विस्थापन के निर्मम दंश को आजीवन झेलता हुआ एक असहाय और विखंडित पात्र है। वह अपने सुनहरे भविष्य की आकांक्षा में विदेश (ब्रिटेन) जाकर बसता तो है, वहाँ वह अपने कठोर परिश्रम से प्रचुर धन और भौतिक संपदा भी अर्जित करता है, परंतु वहाँ की स्वच्छंद संस्कृति, चरम आत्मकेंद्रित सभ्यता, यांत्रिक जीवन-शैली और घोर व्यक्तिवादी समाज में स्वयं को कभी भी एकाकार नहीं कर पाता। अपनी अत्यंत आधुनिक, व्यावहारिक और पाश्चात्य रंग में रँग चुकी पत्नी निशा के साथ रहते हुए भी वह मानसिक रूप से अपने भारतीय गाँव, अपनी मिट्टी की गंध, अपनी मातृभाषा और उन पुराने आत्मीय पारिवारिक मूल्यों की स्मृतियों में ही जीता रहता है जो अब मात्र एक मृगतृष्णा बनकर रह गए हैं। निशा के पास पाश्चात्य जीवन-शैली को अपनाने, वर्तमान में जीने और अपनी बात मनवाने के अकाट्य और तार्किक तर्क हैं। वह पूर्णतः वर्तमान की सुख-सुविधाओं में रच-बस गई है और अतीत को एक अनावश्यक बोझ मानती है। इसके विपरीत, रजनीकांत के पास केवल अपनी खोई हुई संस्कृति का मौन दर्द है, एक ऐसी गहरी तड़प है जिसे वह अपनी पत्नी सहित किसी से भी साझा नहीं कर सकता। यह तीव्र सांस्कृतिक टकराहट और वैचारिक अंतराल रजनीकांत को महानगरीय संत्रास, गहरी कुंठा, अवसाद और एक अंतहीन अस्तित्ववादी अकेलेपन की गहरी खाई में धकेल देता है। वह एक ही विशाल घर में, एक ही छत के नीचे रहते हुए भी अपनी ही पत्नी के लिए पूर्णतः अजनबी, संवेदनहीन और वास्तव में एक 'अभिशप्त' व्यक्ति हो जाता है। इस मार्मिक कहानी के माध्यम से लेखक ने यह अकाट्य रूप से सिद्ध किया है कि मनुष्य शरीर से भले ही विश्व के किसी भी कोने में चला जाए और कितनी भी भौतिक प्रगति कर ले, परंतु यदि उसकी आत्मा अपनी जड़ों से कट जाती है, तो उसका संपूर्ण अस्तित्व एक खोखले आवरण और अंतहीन यातना में परिवर्तित हो जाता है।

5.2 आर्थिक प्रवास, अमानवीय शोषण, भू-राजनीतिक संत्रास और मानसिक विक्षिप्तता- प्रवासी जीवन

के बाहरी आकर्षण, महानगरीय चकाचौंध और आर्थिक समृद्धि के आकर्षक आवरण के पीछे जो गहरा अकेलापन, अमानवीय शोषण और निरंतर संत्रास छिपा होता है, वह अत्यंत भयानक और अकल्पनीय होता है। तेजेन्द्र शर्मा ने केवल पश्चिमी देशों (यूरोप और अमेरिका) के उच्चवर्गीय या बौद्धिक प्रवासियों का ही चित्रण नहीं किया है, अपितु उन्होंने अपनी व्यापक दृष्टि का परिचय देते हुए आर्थिक कारणों और चरम विवशताओं के चलते मध्य-पूर्व (खाड़ी) के देशों में प्रवास करने वाले सामान्य और निर्धन श्रमिकों के अमानवीय शोषण, उनकी दयनीय स्थिति और उनके गहरे मानसिक आघात का भी अत्यंत सजीव, लोमहर्षक और प्रामाणिक चित्रण किया है। उनकी बहुचर्चित और प्रतिष्ठित पुरस्कारों से सम्मानित कहानी 'ढिबरी टाइट' इस विमर्श का सर्वश्रेष्ठ और अप्रतिम उदाहरण है। इस कहानी का मुख्य पात्र गुरमीत अपने परिवार की दरिद्रता दूर करने के लिए कुछ सुनहरे स्वप्न और आर्थिक सुरक्षा की आस लेकर कुवैत जैसे खाड़ी देश में जाता है। परंतु कुवैत जैसे नव-धनाढ्य देशों में जहाँ श्रम का भयानक शोषण होता है और विदेशी कामगारों के मानवीय अधिकारों का कोई विशेष मूल्य नहीं समझा जाता, वहाँ भाषा की अनभिज्ञता, अत्यधिक कठोर श्रम, अमानवीय परिस्थितियाँ और विदेशी (बाहरी) होने के कारण पुलिस द्वारा अकारण की गई अमानवीय प्रताड़ना का वह निर्मम शिकार होता है। कुवैत में वह अपनी आँखों के सामने अपने सपनों को और अपनी बसाई हुई छोटी सी गृहस्थी को नष्ट होते देखता है। यह क्रूर विदेशी व्यवस्था उसके भीतर के सरल और सहज मनुष्य को कुचल कर रख देती है। जब वह भारत वापस लौटता है, तो वह पहले वाला हँसमुख, वाचाल और जीवंत गुरमीत नहीं होता; वह अवसाद, भय और आघात के उस गहरे समुद्र में इस कदर डूब चुका है कि वह एक भयानक और स्थायी चुप्पी ओढ़ लेता है। उसका यह मौन उसकी आत्मा की मृत्यु का प्रतीक है। शिल्प और मनोविज्ञान की दृष्टि से कहानी का चरम बिंदु अत्यंत मारक, अप्रत्याशित और पाठक को भीतर तक झकझोर देने वाला है। जो गुरमीत महीनों से पूर्णतः मौन और जड़वत था, वह अचानक रेडियो पर इराक द्वारा कुवैत पर सैन्य कब्ज़े और हमले का समाचार सुनकर विक्षिप्तों की भाँति ठहाके मारकर हँसने लगता है। वह एक उन्मादी की तरह घर के खाली डिब्बों को ठोकर मारता है और चीखता है "कर दी सालों की ढिबरी टाइट... खा गया सालों को।" एक अत्यंत बड़ी भू-राजनीतिक और वैश्विक त्रासदी (कुवैत पर इराक का विनाशकारी हमला) का किसी शोषित, पीड़ित और सर्वहारा प्रवासी मज़दूर के लिए मानसिक विजय, संतोष और प्रतिशोध का साधन बन जाना, तेजेन्द्र शर्मा की यथार्थवादी और सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक दृष्टि का चरम बिंदु है। यह कहानी अत्यंत कठोरता से यह सिद्ध करती है कि आर्थिक प्रवास की वेदी पर निर्धन मनुष्य को अपनी मानसिक शांति और अपनी चेतना की कितनी बड़ी कीमत चुकानी पड़ती है।

5.3 अंतर-सांस्कृतिक विवाह, वैचारिक अंतराल, नस्लवाद और अस्मिता (पहचान) का गहरा संकट- प्रवासी यथार्थ का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण, जटिल और ज्वलंत पहलू दो सर्वथा भिन्न नस्लों, धार्मिक मान्यताओं और विपरीत संस्कृतियों के मध्य स्थापित होने वाले वैवाहिक संबंधों का भीषण वैचारिक टकराव है। जब कोई भारतीय व्यक्ति परदेश में किसी विदेशी नागरिक से विवाह करता है, तो आरंभिक शारीरिक या भावनात्मक आकर्षण के पश्चात जब जीवन यथार्थ के धरातल पर उतरता है, तब जो गहरी सांस्कृतिक खाइयाँ, पूर्वाग्रह और जीवन-मूल्यों के अंतराल उभरकर सामने आते हैं, वे अत्यंत भयावह और विनाशकारी होते हैं।

तेजेन्द्र शर्मा की उत्कृष्ट कहानी 'हाथ से फिसलती ज़मीन' इस गंभीर विमर्श की एक मील का पत्थर मानी जाने वाली रचना है, जो अंतर-सांस्कृतिक विवाहों की विफलता का अत्यंत प्रामाणिक समाजशास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत करती है। इस कहानी का नायक नरेन भारतीय समाज की अत्यंत कुत्सित जातिगत हीनता, सामाजिक भेदभाव और सवर्णों की प्रताड़ना से त्रस्त होकर अंततः भारत छोड़ देता है। वह एक समतामूलक समाज की खोज में ब्रिटेन आता है और वहाँ अपने अतीत की कुंठाओं से मुक्त होने के लिए एक गोरी ब्रिटिश महिला जैकी से विवाह कर लेता है। नरेन को मन ही मन यह झूठा भ्रम और आत्म-संतोष हो जाता है कि एक गोरी और शासक वर्ग की महिला से विवाह करके उसने अपनी उस भारतीय जातिगत हीन-भावना और सामाजिक लांछन से सदैव के लिए मुक्ति पा ली है जिसने उसे जीवन भर पीड़ित किया था।

परंतु वास्तविक त्रासदी और सांस्कृतिक महासमर विवाह के कुछ वर्षों पश्चात आरंभ होता है। जब उनके बच्चे (शीला

और जै) होते हैं, तब जैकी मातृत्व के उस पारंपरिक भारतीय ढाँचे में बँधने और त्याग की प्रतिमूर्ति बनने से स्पष्ट इनकार कर देती है जिसकी अपेक्षा नरेन करता है। वह अपनी स्वतंत्र पाश्चात्य जीवन-शैली, जहाँ व्यक्तिगत स्वतंत्रता, आजीविका, निजता और स्वच्छंदता सर्वोपरि है, की ओर वापस लौटना चाहती है। नरेन, जो भौतिक रूप से तो ब्रिटेन में है परंतु जिसके अवचेतन के भीतर अभी भी एक रूढ़िवादी, पितृसत्तात्मक भारतीय पुरुष विद्यमान है, यह चाहता है कि जैकी घर पर रहकर बच्चों की परवरिश करे और एक आदर्श, आज्ञाकारी भारतीय पत्नी की भाँति आचरण करे। जबकि जैकी के लिए उसका अपना कार्यक्षेत्र, उसकी व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षाएँ और उसकी निजता किसी भी अन्य सामाजिक संस्था (विवाह) से अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। इन दो पूर्णतः विपरीत संस्कृतियों—एक ओर भारतीय पितृसत्तात्मक अपेक्षाएँ और दूसरी ओर पाश्चात्य अति-व्यक्तिवाद—के मध्य बुरी तरह पिसते हुए नरेन को जिस भयानक अकेलेपन, कुंठा, हीनता और अपनी अस्मिता के विघटन का सामना करना पड़ता है, वह आधुनिक प्रवासी जीवन का सबसे नग्न और डरावना यथार्थ है। नरेन अनुभव करता है कि वह जिस जातिगत भेदभाव से भागकर एक नए समतामूलक समाज की तलाश में विदेश आया था, यहाँ उसे एक नए प्रकार के सांस्कृतिक अलगाव, परोक्ष नस्लवाद और पारिवारिक विघटन का सामना करना पड़ रहा है। 'ज़मीन' (अस्तित्व का आधार) का उसके हाथों से धीरे-धीरे फिसलना इसी सांस्कृतिक पराजय, जड़ों से उखड़ने और उसकी पूर्ण विफलता का सटीक प्रतीक है।

5.4 नव-पूँजीवादी बाज़ारवाद, चरम मूल्यहीनता और भौतिक लिप्सा का अमानवीय यथार्थ

पश्चिमी सभ्यता का मूल आधार चरम पूँजीवाद, व्यक्तिवाद और बेलगाम बाज़ारवाद है, जिसने मनुष्य को एक भावनाशील, विचारशील और सामाजिक प्राणी के उच्च दर्जे से गिराकर केवल एक क्रय-विक्रय करने वाला 'उपभोक्ता' बना दिया है। प्रवासी परिवारों में प्रथम पीढ़ी (जिन्होंने संघर्ष किया है) और द्वितीय पीढ़ी (जिनका जन्म विदेश में हुआ है) के मध्य का अंतराल भी एक बड़ा सांस्कृतिक संकट उत्पन्न करता है, जहाँ नई पीढ़ी पूर्णतः इस बाज़ारवाद और पाश्चात्य उपभोक्तावादी संस्कृति के वशीभूत हो जाती है और अपने माता-पिता के मूल्यों को उपहास की दृष्टि से देखती है।

तेजेन्द्र शर्मा ने अपनी अत्यंत प्रतीकात्मक, दार्शनिक और व्यंग्यात्मक कहानी 'क़ब्र का मुनाफ़ा' में इस नव-धनाढ्य प्रवासी वर्ग के खोखलेपन, उनकी संवेदनहीनता और उनकी विकृत मानसिकता पर अत्यंत तीखा और मर्मभेदी प्रहार किया है3। इस कहानी का नायक खलील ज़ैदी लंदन के चमकते वित्तीय क्षेत्र का एक अत्यंत सफल, धूर्त, महत्त्वाकांक्षी और संवेदना-शून्य अधिकारी है। उसकी पूँजीवादी लिप्सा और धन-संचय की भूख इस वीभत्स और अमानवीय सीमा तक पहुँच चुकी है कि वह मृत्यु जैसी अपरिहार्य, आध्यात्मिक, शाश्वत और परम सत्य घटना को भी केवल आर्थिक 'मुनाफे' (निवेश) और अपनी झूठी 'सामाजिक प्रतिष्ठा' की दृष्टि से देखता है। वह अपनी मृत्यु के पश्चात दफन होने के लिए एक अत्यंत महँगी, विशिष्ट और उच्च-वर्गीय कब्रिस्तान में कब्र आरक्षित करवाता है ताकि मरने के बाद भी समाज में उसका रुतबा और उसका अहंकार कायम रहे।खलील का अपनी ही पत्नी नादिरा के प्रति दैनिक व्यवहार अत्यंत रूक्ष, संवेदनहीन, यांत्रिक और व्यापारिक है। नादिरा के लिए उनका करोड़ों की विपुल लागत से बना सात शयनकक्षों वाला भव्य और विशाल घर एक 'ज़िंदा कब्रिस्तान' के समान है, जहाँ ऐश्वर्य के सभी साधन तो उपलब्ध हैं, परंतु जहाँ प्रेम, अपनत्व, मानवीय संवाद, आत्मीयता और मानसिक शांति का पूर्ण अभाव है। नादिरा उस विशाल घर में एक सजी हुई वस्तु से अधिक कुछ नहीं है। यह कहानी अकाट्य रूप से यह प्रमाणित करती है कि प्रवासी जीवन में अनियंत्रित भौतिक प्रगति, पूँजीवाद की अंधी दौड़ और बाज़ार की शक्तियों ने मानवीय संवेदनाओं को किस हद तक खोखला, मृतप्राय और अमानवीय कर दिया है। रिश्ते अब कोमल भावनाओं की नींव पर नहीं, बल्कि स्वार्थ, मुनाफे, घाटे और वित्तीय तालिकाओं पर टिके हैं।

5.5 समकालीन नवीन विमर्शरू समलैंगिकता और यौन-शुचिता के प्रश्न

तेजेन्द्र शर्मा का कथा-साहित्य केवल रूढ़िवादी विषयों तक सीमित नहीं है, अपितु यह पश्चिमी समाज में व्याप्त उन नवीन, वर्जित और जटिल विषयों को भी अत्यंत संवेदनशीलता के साथ उठाता है, जिन पर भारतीय साहित्य में प्रायः मौन साध लिया जाता है। उनकी कहानी 'होमलेस' समलैंगिक संबंधों के यथार्थ को अत्यंत बेबाकी से प्रस्तुत करती है, जहाँ 'स्टेला' और 'एंजेला' जैसी समलैंगिक स्त्रियों के जीवन और उनके मनोविज्ञान को बिना किसी पूर्वाग्रह के उकेरा गया है8। इसी प्रकार

‘इंतज़ाम’ कहानी में एक माँ का अपनी पुत्री की शारीरिक आवश्यकताओं को समझना और उसका प्रबंध करना, पश्चिमी समाज के यौन-विमर्श और भारतीय नैतिकता के मध्य एक तीखी टकराहट प्रस्तुत करता है8। ये कहानियाँ प्रमाणित करती हैं कि शर्मा जी का कथा-फलक कितना व्यापक और आधुनिक है, जो हाशिए के समाजों को भी मुख्यधारा के साहित्य में स्थान देता है।[8]

6. कथा-शिल्प, भाषाई संरचना, वातावरण निर्माण और प्रतीकात्मकता

साहित्यशास्त्र के स्थापित मानदंडों के अनुसार, किसी भी उत्कृष्ट और कालजयी साहित्य के लिए केवल कथ्य (विषय-वस्तु) का सबल और प्रासंगिक होना ही पर्याप्त नहीं होता; उस कथ्य को अभिव्यक्त करने वाला ‘शिल्प’ (संरचनात्मक ढाँचा) भी उतना ही धारदार, चुस्त और प्रभावोत्पादक होना चाहिए। यदि शिल्प शिथिल है, तो महान से महान संवेदना भी पाठक के अंतर्मन तक संप्रेषित नहीं हो पाती। तेजेन्द्र शर्मा के कथा-साहित्य की सबसे बड़ी विशिष्टता और उनकी सफलता का रहस्य यह है कि उनका कथा-शिल्प उनके गंभीर यथार्थ को अत्यंत सजीव, बोधगम्य और मर्मस्पर्शी बना देता है। उनका शिल्प कथ्य पर हावी नहीं होता, बल्कि एक कुम्हार की भाँति वे जहाँ आवश्यक होता है वहाँ हल्की सी थाप देकर अपनी कहानी को सँवार देते हैं1।

भाषाई संरचना और बहुभाषिकतारू तेजेन्द्र शर्मा भाषा के स्तर पर एक अत्यंत सचेत, सिद्धहस्त और कुशल शिल्पी हैं। उन्होंने अपनी कहानियों में जान-बूझकर क्लिष्ट, बोझिल, कृत्रिम और अत्यधिक संस्कृतनिष्ठ तत्सम शब्दावली का अनावश्यक प्रयोग नहीं किया है, जो कथानक की स्वाभाविकता को नष्ट कर देता है1। उनकी भाषा में एक अद्‌भुत रवानी, प्रवाहमयता और संप्रेषणीयता है। कम हिन्दी जानने वाले पाठक भी उनकी कहानियों के प्रवाह में सरलता से बह जाते हैं1। प्रवासी परिवेश और पात्रों के अंतर्द्वंद्व को पूर्णतः प्रामाणिक बनाने हेतु उन्होंने शुद्ध हिन्दी के साथ-साथ उर्दू की नज़ाकत, पंजाबी की आत्मीयता और स्थानीय विदेशी भाषा (विशेषकर ब्रिटेन में प्रयुक्त होने वाले दैनंदिन शब्दों) का अत्यंत सहज, निर्बाध और स्वाभाविक प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए, जब वे ब्रिटेन के महानगरीय परिवेश, वहाँ की प्रशासनिक व्यवस्था, या रेलवे के कार्यस्थलों का वर्णन करते हैं, तो वहाँ की विशिष्ट शब्दावली का हिन्दी में ऐसा सुंदर, निर्दोष और अचूक सामंजस्य प्रस्तुत करते हैं कि पाठक बिना किसी बाधा के स्वयं को उसी महानगरीय परिवेश में उपस्थित पाता है। यह ‘भाषाई संकरता’ उनके प्रवासी पात्रों की ‘सांस्कृतिक संकरता’ का ही साहित्यिक प्रतिबिंब है।

संवाद-योजना और मनोवैज्ञानिक प्रस्तुतिरू संवाद किसी भी कथा-साहित्य को गतिशीलता, सजीवता और आकर्षण प्रदान करते हैं। तेजेन्द्र शर्मा के संवाद अत्यंत संक्षिप्त, चुस्त, तीखे और पात्रों के मनोवैज्ञानिक स्तर के पूर्णतः अनुकूल होते हैं। वे संवादों के माध्यम से लंबी व्याख्याएँ प्रस्तुत करने के स्थान पर पात्रों के अंतर्द्वंद्व को उद्‌घाटित करने पर बल देते हैं। उनकी बहुचर्चित कहानी ‘प्यार की इंटेलेक्चुअल जुगाली’ उनके विलक्षण संवाद-शिल्प का एक नायाब उदाहरण है। यह पूरी की पूरी कहानी केवल ‘ममता’ और ‘मानव’ नामक दो विपरीत विचारधाराओं वाले स्त्री-पुरुष पात्रों के मध्य दूरभाष पर हुए संवादों से बुनी गई है1। आत्मिक, आध्यात्मिक और प्रेम-संबंधी जटिल भावों को केवल संवादों के माध्यम से अत्यंत रोचकता के साथ प्रस्तुत करना उनकी अद्वितीय रचनात्मक क्षमता का परिचायक है1। इसके अतिरिक्त, उनके पात्र लंबे दार्शनिक भाषण नहीं देते; उनके छोटे-छोटे वाक्यों और संवादों के मध्य के ‘मौन’ (चुप्पी) में विस्थापन की अत्यंत गहरी पीड़ा छिपी होती है। संवाद पाठक के हृदय पर सीधे दस्तक देते हैं1।

वातावरण निर्माण और कथानक की बुनावटरू वे अपनी कहानियों में वातावरण (परिवेश) का निर्माण अत्यंत सजीवता के साथ करते हैं। लंदन की सर्द हवाएँ, बर्फबारी, भूमिगत रेलमार्ग का अंधकार और मशीनी शोर उनकी कहानियों में केवल पृष्ठभूमि का कार्य नहीं करते, बल्कि वे पात्रों के अकेलेपन, उनके अवसाद और उनकी उदासी के मूक सहभागी बन जाते हैं। उनकी कहानियों की बुनावट में कोई बिखराव नहीं होता; वे एक बिंदु से आरंभ होकर अत्यंत सधे हुए कदमों से अपने चरम बिंदु तक पहुँचती हैं।

प्रतीक-विधान एवं बिंब-योजनारू प्रतीकों का सार्थक और सटीक प्रयोग तेजेन्द्र शर्मा के शिल्प को विशिष्ट ऊँचाई प्रदान करता है। 'हाथ से फिसलती ज़मीन' में 'ज़मीन' शब्द केवल मिट्टी या भूमि के टुकड़े का वाचक नहीं है, बल्कि यह मनुष्य के संपूर्ण अस्तित्व, उसकी अस्मिता, उसकी संस्कृति और उसकी जड़ों का व्यापक प्रतीक है, जिसके खिसकने का अर्थ है मनुष्य का पूर्णतः निराश्रित हो जाना। इसी प्रकार, 'क़ब्र का मुनाफ़ा' में वर्णित विशाल वातानुकूलित घर और आरक्षित कब्र, दोनों ही आधुनिक पूँजीवाद की मृतप्रायता, संवेदना-शून्यता और चरम भौतिकवादी खोखलेपन के अत्यंत सशक्त और मारक प्रतीक बनकर उभरते हैं। 'ढिबरी टाइट' कहानी में प्रयुक्त 'ढिबरी' (यंत्र का एक पुर्जा) का कसा जाना, वास्तव में एक क्रूर, विदेशी और शोषक व्यवस्था द्वारा एक निर्बल मज़दूर की मानसिक नसों को कसकर उसे पूर्णतः विक्षिप्त कर देने का अत्यंत सटीक, प्रामाणिक और हृदय-विदारक प्रतीक है।

7. निष्कर्ष

उपर्युक्त अत्यंत विस्तृत, बहुआयामी और गहन समाजशास्त्रीय-मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के आधार पर निष्कर्षतः यह अकाट्य रूप से स्थापित किया जा सकता है कि तेजेन्द्र शर्मा का कथा-साहित्य आधुनिक प्रवासी यथार्थ, दो संस्कृतियों के मध्य पनपते भीषण द्वंद्व और विस्थापित मनुष्य के मानसिक संत्रास का एक अत्यंत प्रामाणिक, विस्तृत, तटस्थ और जीवंत आख्यान है। उनके विपुल साहित्य में प्रवासी जीवन केवल किसी विदेशी पृष्ठभूमि (स्थान विशेष) पर आधारित घटना-मात्र या मनोरंजन का साधन नहीं है, अपितु वह पात्रों की मानसिक बुनावट, उनके हाड़-मांस, उनकी श्वासों और उनके संपूर्ण अस्तित्व का मूलभूत और अविभाज्य हिस्सा है। उनकी कहानियों के विषय-वैविध्य और सामयिकता उन्हें एक सजग साहित्यकार प्रमाणित करते हैं।

उन्होंने अपनी कालजयी कहानियों के माध्यम से साहित्य-जगत के समक्ष यह निर्विवाद रूप से स्पष्ट किया है कि विस्थापन केवल एक भौगोलिक परिघटना (एक देश की सीमाओं को लाँघकर दूसरे देश में प्रवेश करना) नहीं होता, बल्कि विस्थापन अपनी प्रकृति में अत्यंत गहरा, सांस्कृतिक, भाषिक, और अंततः एक निर्मम मनोवैज्ञानिक विखंडन होता है। उनके रचे हुए जीवंत पात्र—चाहे वह 'अभिशप्त' का अंतहीन स्मृति-दंश और सांस्कृतिक अलगाव से पीड़ित रजनीकांत हो, 'ढिबरी टाइट' का व्यवस्था की क्रूरता द्वारा छला गया और मानसिक रूप से विक्षिप्त हुआ सर्वहारा गुरमीत हो, 'हाथ से फिसलती ज़मीन' का अंतर-सांस्कृतिक विवाह की चक्की में निर्दयता से पिसता नरेन हो, या फिर 'क़ब्र का मुनाफ़ा' का पूँजीवादी लिप्सा और उपभोक्तावादी अंधी दौड़ में अंधा होकर अपनी मानवीय संवेदनाएँ खो चुका खलील ज़ैदी हो—ये सभी उस सार्वभौमिक और शाश्वत संघर्ष का प्रतिनिधित्व करते हैं, जहाँ आधुनिक मनुष्य अपनी पुश्तैनी जड़ों से कटकर एक अत्यंत अजनबी, आत्मकेंद्रित और क्रूर बाज़ारवादी व्यवस्था के मध्य अपनी अस्मिता, अपनी पहचान और अपने खोए हुए 'स्व' को तलाशने का निष्फल प्रयास कर रहा है।तेजेन्द्र शर्मा शिल्प और भाषा के धरातल पर भी इस बहुआयामी द्वंद्व को अत्यंत स्वाभाविक, परिपक्व और कलात्मक रूप से प्रस्तुत करने में पूर्णतः सफल रहे हैं। उनकी कहानियों में हिन्दी, उर्दू, पंजाबी और विदेशी शब्दों का सहज, निर्बाध और अवसरानुकूल मिश्रण उनके यथार्थवाद को और अधिक प्रामाणिक तथा सजीव बना देता है। अब तक उनके साहित्य पर सत्रह आलोचनात्मक ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं और अनेक विश्वविद्यालयों में उनके साहित्य पर विद्यावाचस्पति (शोध-उपाधि) के शोध कार्य संपन्न हो चुके हैं, जो उनके अकादमिक महत्त्व को स्वतः सिद्ध करते हैं3। राष्ट्रीय संगोष्ठी के अकादमिक मंच और उच्चस्तरीय शोध के परिप्रेक्ष्य में यह विस्तृत अध्ययन इस बात की अकाट्य पुष्टि करता है कि तेजेन्द्र शर्मा वस्तुतः समकालीन प्रवासी हिन्दी कथा-साहित्य के एक अपरिहार्य, शीर्षस्थ, युगांतरकारी और युग-प्रवर्तक रचनाकार हैं। उनका साहित्य हमें केवल यथार्थ से परिचित ही नहीं कराता, अपितु हमें भीतर तक झकझोर कर यह सोचने पर विवश करता है कि भौतिक चकाचौंध, आर्थिक प्रगति और वैश्वीकरण की इस अंधी दौड़ में हमने अपनी उन कोमल, पारदर्शी और उदात्त मानवीय संवेदनाओं को कहाँ पीछे छोड़ दिया है, जो वस्तुतः हमें एक संवेदनशील 'मनुष्य' बनाती हैं। उनका साहित्य इसी खोई हुई मनुष्यता की गहन तलाश का साहित्य है।

संदर्भ-ग्रंथ सूची

1. शर्मा, तेजेन्द्र (1994). ढिबरी टाइट. दिल्ली : नवयुग प्रकाशन.
2. शर्मा, तेजेन्द्र (2012). दीवार में रास्ता. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन.
3. शर्मा, तेजेन्द्र (2010). क़ब्र का मुनाफ़ा. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन.
4. शर्मा, तेजेन्द्र (2009). सीधी रेखा की परतें. दिल्ली : आधार प्रकाशन.
5. भाभा, होमी के. (1994). सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में उत्तर-औपनिवेशिक विमर्श (अनूदित एवं उद्धृत संदर्भ).
6. पाण्डेय, डॉ. (2019). प्रवासी हिन्दी साहित्य और तेजेन्द्र शर्मा का कथा-संसार. दिल्ली : साहित्य अकादेमी.
7. तेजेन्द्र शर्मा के कथा संसार की वीथियों से गुज़रते हुए (साहित्य कुंज आलेख). उपलब्ध : https://sahityakunj-net/blog/tejendra&sharma&ke&katha&sansaar&ki&veethiyon&se&guzarte&hue
8. प्रवासी जगत के अनुभवों पर आधारित तेजेन्द्र शर्मा के कहानी संकलन (जागरण हिन्दी). उपलब्ध : https://jagranhindi.in
9. शर्मा : एक बहुमुखी साहित्यकार का वैश्विक रचना संसार (वैश्विक हिन्दी). उपलब्ध : https://vaishvikhindi-com/posts@12130
10. तेजेन्द्र शर्मा का विस्तृत जीवन एवं रचना परिचय (हिन्दी समय). उपलब्ध : https://www.hindisamay-com@writer
11. विश्व हिन्दी डेटाबेस : तेजेन्द्र शर्मा की उपलब्धियाँ एवं सम्मान. उपलब्ध : https://vishwahindidb-com/ show&scholar-aspx\id194
12. प्रवासी साहित्य में समलैंगिक एवं नवीन विमर्श - 'होमलेस' एवं 'इंतज़ाम' के विशेष संदर्भ में (अपनी माटी). उपलब्ध : https://www.apnimaati-com/2023/12/blog&post&37-html
13. तेजेन्द्र शर्मा के कृतित्व पर साहित्य कुंज की विस्तृत रिपोर्ट एवं आलोचना. उपलब्ध : https://sahityakunj-net@/ekhak/tejendra&sharma
14. तेजेन्द्र शर्मा की कहानियों का नवीन वातावरण (विश्व हिन्दी जन). उपलब्ध : https://www.vishwahindijan.in

Works cited

1. तेजेंद्र शर्मा के कथा संसार की वीथियों से गुज़रते हुए - साहित्य कुंज, https://sahityakunj-net/blog/tejendra&sharma&ke&katha&sansaar&ki&veethiyon&se&guzarte&hue
2. प्रवासी जगत के अनुभवों पर आधारित तेजेंद्र शर्मा के दो कहानी संकलन एक https://jagranhindi-in
3. तेजेन्द्र शर्मा : एक बहुमुखी साहित्यकार का वैश्विक रचना संसार – (हिंदी के https://vaishvikhindi-com/posts/12130
4. तेजेन्द्र शर्मा - साहित्य कुंज, https://sahityakunj-net@/ekhak/tejendra&sharma
5. श्री तेजेन्द्र शर्मा - विश्व हिंदी डेटाबेस https://vishwahindidb.com/show&scholar-aspx\id¾194
6. लेखक तेजेंद्र शर्मा का व्यक्तित्व TEJENDRA SHARMA - हिंदी समय https://www.hindisamay-com@writer
7. तेजेन्द्र शर्मा की कहानियों का विशिष्ट एवं नवीन अनुभव संसार, https://www.vishwahindijan-in
8. शोध आलेख : प्रवासी हिन्दी कहानियों में सेक्सुएलिटी / तरुण कुमार - अपनी माटी https://www.apnimaati-com@2023@12@blog&post&37-html

दीप्ति जोशी, शोधार्थिनी, हिन्दी विभाग, बी.डी. जैन कन्या महाविद्यालय, आगरा

प्रो. शिखा श्रीधर, विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, बी.डी. जैन कन्या महाविद्यालय, आगरा

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

अनामिका के उपन्यासों में मानवीय संवेदना

कु. मीनू, डॉ. ज्योत्स्ना शर्मा

अनामिका के उपन्यासों में भारतीय समाज में मौजूद मानवीय संबंधों की विविधताओं, जटिलताओं, उनमें उपस्थित राग विराग, प्रेम और विद्वेष, का बहुआयामी संसार मौजूद है। अनामिका के उपन्यास किसी विराट त्रासदी अथवा सामाजिक, राजनैतिक आख्यान के बजाय मूलतः बनते, बिगड़ते और बदलते मानवीय संबंधों की महागाथा है। इनके उपन्यासों का कथ्य चाहे जिस भी विषय पर केंद्रित हो अपनी अंतिम परिणति में वह मानवीय संबंधों के रूप में ही परिलक्षित होता है।

अनामिका अपने कथा-साहित्य में पात्रों को अपने ही परिवेश से चुनकर निर्माण करती हैं। इसलिए उनके पात्रों में सजीवता हैं वे अपने ही समाज के आस-पास घटित-घटनाओं को उद्घाटित करती हैं। अतः उनकी रचनाएँ पाठकों को भावविभोर कर देती हैं, क्योंकि उनकी रचनाएँ यथार्थ के पास है। "अनामिका एक अत्यंत विदूषी लेखिका ही नहीं, स्त्री विमर्श की प्रबल वक्ता भी हैं। इन्होंने स्त्री-विमर्श को कुलीनता के चौखटे से बाहर निकालकर दलित स्त्री, वेश्या स्त्री और आम घरेलू स्त्री के विमर्श से जोड़ा है। वह समाज की सबसे पिछले पांत के इन्सानों के साथ खड़ी नज़र आती हैं। वे उनके दुखों, पीड़ाओं व त्रासदियों से व्यथित ही नहीं होती, बल्कि उसे अपनी कलम की धार से तराशकर इतना तीखा व पैना कर देती हैं कि वे तीर की तरह सीधे धर्म में उतरी चली जाती है।"[1] लेखिका समय, समाज और संस्कृति के बनते बिगड़ते रिश्तों से बने स्त्री के विभिन्न रूपों को साहित्य के माध्यम व्यक्त करती हुई नज़र आती है। स्वयं वह कहती है– "समाज का बड़ा संकट यह है कि ज्यादातर पुरुष एक जिद्दी बच्चे की तरह है और स्त्रियों की मनोदशा विद्यापति की उस नायिका की तरह है, जिसे छह बरस के बच्चे से ब्याह दिया गया है।"[2] अनामिका यह स्पष्ट करती है कि पुरुष प्रधान समाज ने स्त्रियों को पूर्ण रूप से समझ नहीं पाया है। इसी वजह से वह हिंसा से मुक्त होने के लिए स्वावलंबी बनती है। लेखिका स्वयं कहती हैं, हे मुक्त तेरे मुक्ति में ही है तेरा जीवन। यही कारण है कि लेखिका के कथा साहित्य का हर स्त्री पात्र स्वावलंबी है।

बाह्य परिस्थितियां जैसे की सामाजिक, राजनैतिक आर्थिक परिस्थितियाँ, धर्म, राष्ट्र व पूँजी, गाँव और शहर की पृष्ठभूमि जैसे कारक लेखक के अभीष्ट मानवीय संबंधों को प्रभावित करते हैं, उन्हें नए रूप में ढालते हैं। समय व देश काल के परिवर्तन के साथ उनका रूप बदलता है। अनामिका के उपन्यासों में जो पठनीयता है वह इन्ही बदलाओं को देखने, समझने और अनुभूत करने में है। उनके सबसे प्रारंभिक उपन्यास 'पर कौन सुनेगा' से लेकर उनके अंतिम उपन्यास 'आईना साज़' तक हर उपन्यास का कथा विन्यास वस्तुत बनते बिगड़ते मानव संबंधों की ही संसार रचता है। इन उपन्यासों में मानवीय संबंध को कुछ विशेष श्रेणी में विभक्त करके देखा जा सकता है। जैसे स्त्री विमर्श में समावेशी स्त्रीवाद, हाशिए के समाज के प्रति करुणा, ऐतिहासिक और पौराणिक पात्र का मानवीयकरण इत्यादि। अनामिका के उपन्यासों में अभिव्यक्त मानवीय संबंधों को इन्ही श्रेणियों के अनुसार समझने का प्रयत्न करेंगे।

समकालीन हिंदी साहित्य में अनामिका एक ऐसी महत्वपूर्ण लेखिका हैं, जिन्होंने स्त्री-विमर्श को केवल पुरुष-विरोध के रूप में नहीं, बल्कि व्यापक मानवीय संवेदना के एक अभिन्न हिस्से के रूप में देखा है। उनके उपन्यासों—जैसे 'दस द्वारे का पींजरा', 'तिनका तिनके पास' और 'अवान्तर कथा'—में स्त्री की संवेदना व्यापक मानवीय संवेदना के साथ एकाकार हो जाती

है। अनामिका का मानना है कि पितृसत्तात्मक व्यवस्था जितनी स्त्रियों के लिए घातक है, उतनी ही वह पुरुषों की मानवीय गरिमा को भी प्रभावित करती है। इसलिए उनके उपन्यासों में स्त्री-विमर्श का स्वर विरोध से अधिक समानता, सह-अस्तित्व और मानवीय गरिमा पर आधारित दिखाई देता है। 'दस द्वारे का पींजरा', उपन्यास पर नामवर सिंह की टिप्पणी उल्लेखनीय है। वे कहते हैं कि "निस्संदेह यह चालू स्त्री विमर्श पर लिखे जाने वाले उपन्यासों और कहानियों से अलग पहचान बनाने वाला उपन्यास है। मेरी नजर में इधर के दो-तीन महत्वपूर्ण उपन्यासों में इसका नाम लिया जा सकता है।"[3]

स्त्री प्रतिरोध का एक उत्तम उपन्यास है 'दस द्वारे का पिंजरा' इसके माध्यम से अनामिका ने यह रेखांकित किया है कि स्त्री अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता ही स्त्री शोषण के खिलाफ उठाए जाने वाली सशक्त अस्त्र है। इस उपन्यास में लेखिका ने पंडित रमाबाई के माध्यम व्यक्त किया है– "भाइयों मान लीजिए मेरी आवाज़ आप तक पहुँच नहीं पा रही। सदियाँ बीती क्या कभी आपने किसी स्त्री की बातें सुनने की कोशिश भी की? क्या अपने उसके इतनी ताकत दी कि वह अपनी आवाज़ बुलंद कर सके?"[4] पुरुष प्रधान समाज के खिलाफ स्त्री प्रतिरोध का स्वर है कि सदियों से स्त्रियों को कैसे वाणी विहीन बना दिया है?

अनामिका का स्त्री-विमर्श समावेशी स्त्रीवाद की अवधारणा को सामने लाता है। यह केवल मध्यवर्गीय या शिक्षित महिलाओं तक सीमित नहीं है, बल्कि समाज के हाशिए पर खड़ी स्त्रियों के जीवन-संघर्षों को भी अपने केंद्र में रखता है। जेल की महिला कैदियों, दलित स्त्रियों, विधवाओं तथा सामाजिक और आर्थिक रूप से वंचित महिलाओं के सुख-दुख और संघर्षों को वे संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत करती हैं। इस प्रकार उनका स्त्रीवाद व्यापक, मानवीय और सर्व-समावेशी स्वरूप ग्रहण करता है।

इनके साहित्य में घरेलू हिंसा और स्त्री के अदृश्य श्रम की समस्या को भी गंभीरता से उठाया गया है। पितृसत्तात्मक समाज स्त्री को बचपन से ही 'पराया' या 'बिना जगह का' होने का एहसास कराता है। उनके स्त्री पात्र घरेलू जीवन में होने वाली मानसिक और शारीरिक हिंसा के विरुद्ध अपनी आवाज उठाते हैं। साथ ही, वे चूल्हे-चौके, परिवार की देखभाल और घरेलू जिम्मेदारियों में स्त्री द्वारा किए जाने वाले उस श्रम को भी रेखांकित करती हैं, जिसे समाज प्रायः श्रम के रूप में मान्यता नहीं देता। इस प्रकार अनामिका घरेलू जीवन की उन अदृश्य स्थितियों को सामने लाती हैं, जो स्त्री के व्यक्तित्व और स्वतंत्रता को प्रभावित करती हैं।

अनामिका ने अपने उपन्यासों–'दस द्वारे का पींजरा', 'आईनासाज़', 'तिनका तिनके पास' और 'तृन धरि ओट'–में समाज के उन वर्गों और समूहों को केंद्र में लाने का प्रयास किया है, जिन्हें इतिहास, सामाजिक व्यवस्था और सत्ता-संरचनाओं ने लंबे समय से हाशिये (डंतहपदे) पर धकेल दिया है। उनके उपन्यासों में हाशिये का समाज केवल उपेक्षित और शोषित वर्ग के रूप में प्रस्तुत नहीं होता, बल्कि वह अपनी अस्मिता, अस्तित्व और अधिकारों के लिए संघर्ष करता हुआ भी दिखाई देता है। 'पर कौन सुनेगा' उपन्यास में सामाजिक रूढ़ियों एवं विसंगतियों का चित्रण करते हुए लेखिका समाज के उस वर्ग को केंद्र में लाने की कोशिश करती हैं; जिन्हें समाज द्वारा हाशिए पर फेंक दिया गया है। अनामिका पाठक से अपील करती हैं कि "यह एक टूटा-सा बायस्कोप है– कथा नहीं, उपन्यास नहीं। आप इसे पढ़ नहीं सकते, बाँच नहीं सकते, सुन नहीं सकते सिर्फ देख सकते हैं।... शास्त्रीय पाठकों, वाचकों, श्रोताओं, जरा बाएँ हो जाइए। रास्ता खाली हो तो मैं अपनी दुनिया बैठाऊँ और दर्शक उगाहूँ।"[5] अनामिका हाशिये के समाज को केवल पीड़ित और असहाय रूप में प्रस्तुत नहीं करतीं, बल्कि उनके भीतर मौजूद संघर्ष और प्रतिरोध की चेतना को भी रेखांकित करती हैं। उनके पात्र सामाजिक रूढ़ियों, पितृसत्तात्मक व्यवस्था और स्थापित मान्यताओं के विरुद्ध प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अपनी आवाज़ उठाते हैं। इस प्रकार वे हाशिये के समाज के भीतर मौजूद धीमे, किंतु दृढ़ सांस्कृतिक प्रतिरोध को स्वर प्रदान करती हैं।

अनामिका अपने साहित्य में अतीत के ऐतिहासिक, पौराणिक और सांस्कृतिक संदर्भों को वर्तमान सामाजिक यथार्थ से जोड़ती हैं। सीता जैसे पौराणिक पात्रों अथवा अमीर खुसरो जैसे ऐतिहासिक-सांस्कृतिक व्यक्तित्वों के माध्यम से वे वर्तमान समय में हाशिये पर जीवन जी रहे लोगों की पीड़ा, संघर्ष और अस्मिता के प्रश्नों को अभिव्यक्त करती हैं। इस प्रकार उनके

साहित्य में इतिहास केवल अतीत का वर्णन नहीं रह जाता, बल्कि वह वर्तमान समाज की समस्याओं और हाशिये के जीवन को समझने का एक महत्वपूर्ण माध्यम बन जाता है। आजकल जब लोग अपनी परम्परा, संस्कृति और संस्कार छोड़कर आधुनिक भोगवादी प्रवृत्ति में रत होकर बाज़ार के चकाचौंध में खो रहे हैं, तब अनामिका अपनी विरासत के प्रति बहुत सजग हैं और अपनी स्वस्थ परम्परा को साथ लेकर चलने की समर्थक हैं। ऐसा भी नहीं है कि वे आधुनिकता की विरोधी हैं, किन्तु वे एकदम नहीं चाहती कि हम अपना पुराना सब कुछ भूलकर बाज़ार द्वारा प्रायोजित जिंदगी जिए। वे हमेशा बीच का स्वस्थ मार्ग खोजती हैं कि न पुराना सब छूटे, न नया सब स्वीकार कर लिया जाए। अनामिका को अपनी परम्परा, संस्कृति और विरासत से प्रेम है, इसे उनके निम्नलिखित कथन से समझा जा सकता है, "यह नन्हा सा नगर वर्तमान के बड़प्पन में विश्वास रखता है। यह इतिहास बनाता है, किन्तु इसके पास पीछे मुड़कर अपनी महत्ता में मग्न होने का समय नहीं है।"[6]

इनके उपन्यासों तथा अन्य रचनाओं में ऐतिहासिक और पौराणिक पात्रों का अत्यंत संवेदनशील, मानवीय और प्रगतिशील पुनर्पाठ देखने को मिलता है। वे इन पात्रों को केवल अतीत की घटनाओं और स्मृतियों तक सीमित नहीं रखतीं, बल्कि उनके माध्यम से वर्तमान समाज, विशेषकर स्त्री-जीवन, अस्मिता, स्वतंत्रता और अधिकारों से जुड़े प्रश्नों को सामने लाती हैं। विभिन्न साहित्यिक विमर्शों और मंचों पर अनामिका के इस विशिष्ट रचनात्मक दृष्टिकोण को विशेष महत्त्व दिया गया है।अनामिका के उपन्यासों, जैसे 'आईनासाज़' और 'दूर देश के परिंदे', तथा उनकी उपन्यासों में ऐतिहासिक और पौराणिक पात्रों के प्रति एक नवीन और आलोचनात्मक दृष्टि दिखाई देती है। वे परंपरा को पूरी तरह नकारने के बजाय उसके भीतर छिपे उन अर्थों और संभावनाओं को तलाशती हैं, जिनके माध्यम से वर्तमान जीवन की जटिलताओं को समझा जा सके। इस दृष्टि से उनके यहाँ इतिहास और मिथक वर्तमान के साथ संवाद करते हुए दिखाई देते हैं।इन्होने सीता, द्रौपदी, अहिल्या और आम्रपाली जैसे पौराणिक स्त्री-चरित्रों को केवल अतीत की जड़ स्मृतियों के रूप में प्रस्तुत नहीं किया है। वे इन पात्रों के माध्यम से स्त्री के अस्तित्व, उसके अंतर्द्वंद्व, स्वतंत्रता और अधिकारों से जुड़े आधुनिक प्रश्नों को सामने लाती हैं। उनके यहाँ पौराणिक स्त्रियाँ मौन, सहनशील और केवल त्याग करने वाली स्त्रियाँ नहीं हैं, बल्कि वे अपने जीवन और निर्णयों के प्रति सजग चेतना का प्रतिनिधित्व करती हैं।

अनामिका के लेखन में 'मन की सीता' जैसी अवधारणा स्त्री के भीतर मौजूद स्वतंत्र चेतना और निर्णय लेने की क्षमता को रेखांकित करती है। यह स्त्री समाज द्वारा निर्धारित पारंपरिक सीमाओं और बंधनों को चुनौती देने का साहस रखती है। इस संदर्भ में 'लक्ष्मण-रेखा' केवल एक पौराणिक प्रसंग नहीं रह जाती, बल्कि वह उन सामाजिक और मानसिक सीमाओं का प्रतीक बन जाती है, जिन्हें स्त्री परंपरागत रूप से स्वीकार करने के लिए बाध्य रही है।

अनामिका के साहित्य की एक महत्वपूर्ण विशेषता इतिहास और वर्तमान के बीच स्थापित किया गया जीवंत संबंध है। उनके चर्चित उपन्यास 'दूर देश के परिंदे' तथा अन्य रचनाओं में बुद्ध, निराला, रवींद्रनाथ ठाकुर और गांधी जैसे ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक व्यक्तित्वों के साथ-साथ उनके जीवन से जुड़ी स्त्रियों के दृष्टिकोण को भी महत्त्व दिया गया है। मीराबेन, कस्तूरबा और रानू मुखर्जी जैसे स्त्री-पात्रों के माध्यम से वे इतिहास के उन पक्षों को सामने लाने का प्रयास करती हैं, जो प्रायः पुरुष-केंद्रित इतिहास-लेखन में उपेक्षित रह जाते हैं।इस प्रकार अनामिका इतिहास को केवल महान पुरुषों और महत्वपूर्ण घटनाओं का दस्तावेज मानकर नहीं चलतीं। वे इतिहास के भीतर मौजूद उन मानवीय अनुभवों और स्त्री-दृष्टियों की खोज करती हैं, जिन्हें मुख्यधारा के इतिहास ने पर्याप्त स्थान नहीं दिया। उनके लेखन में इतिहास और वर्तमान के बीच एक निरंतर संवाद स्थापित होता है, जिसके माध्यम से अतीत की घटनाएँ और पात्र वर्तमान सामाजिक जीवन के प्रश्नों से जुड़ जाते हैं।

अनामिका के उपन्यासों में स्त्री-विमर्श समावेशी स्त्रीवाद की व्यापक दृष्टि प्रस्तुत करता है, जिसमें स्त्री की स्वतंत्रता और अस्मिता के साथ-साथ हाशिए के समाज, वंचित वर्गों और उपेक्षित समुदायों के प्रति गहरी करुणा दिखाई देती है। उनकी रचनाओं में ऐतिहासिक और पौराणिक पात्रों का मानवीयकरण करते हुए उन्हें केवल आदर्श या प्रतीक न बनाकर उनके सुख-दुःख, संघर्ष, संवेदना और कमजोरियों से जुड़े जीवंत मनुष्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार इतिहास और मिथक वर्तमान जीवन से जुड़ते हैं तथा स्त्री और हाशिए के मनुष्य की पीड़ा को मानवीय धरातल पर समझने का अवसर देते

हैं। निष्कर्षतः, अनामिका का स्त्री-विमर्श समानता, सह-अस्तित्व, करुणा और मानवीय गरिमा पर आधारित है, जो स्त्री-मुक्ति को व्यापक सामाजिक और मानवीय मुक्ति से जोड़कर उसे अधिक संवेदनशील और समावेशी बनाता है।

संदर्भ सूची

1. राजकमल प्रकाशन, समाचार, दिसंबर 2008, अंक 11, पृ. 2
2. अनामिकाः एक मूल्यांकन, अभिषेक कश्यप, पृ. 405
3. अनामिका : एक मूल्यांकन, सं. अभिषेक कश्यप, ले. नामवर सिंह, पृ. 175
4. दस द्वारे का पिंजरा, अनामिका, पृ. 258
5. लालटेन बाज़ार, अनामिका, पृ. 9
6. एक ठो शहर : एक गो लड़की, अनामिका, पृ. 7

कु.मीनू, शोधार्थिनी
मो. 6395016677
निर्देशिका
डॉ. ज्योत्स्ना शर्मा
सहायक आचार्य (हिंदी विभाग)
आर.बी.एस. कॉलेज, आगरा

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

धूमिल और सुकांत की कविताओं में स्त्री

नेहा चौबे

सारांश- समकालीन हिंदी कविता के क्षेत्र में धूमिल और बांग्ला के रवींद्रोत्तर काव्य जगत में सुकांत का नाम अविस्मरणीय है। इन दोनों की कविताओं में प्रगतिशील चेतना लक्ष्य किया जा सकता है। धूमिल और सुकांत की कविताओं में स्त्री केवल सौंदर्य की वस्तु नहीं बल्कि सामाजिक यथार्थ, संघर्ष और शोषण के प्रतीक के रूप में उपस्थित है। धूमिल की कविताओं में स्त्री जहाँ पितृसत्तात्मक व्यवस्था और वर्गीय संघर्ष के रूप में प्रस्तुत हुई है। वहीं सुकांत की कविताओं में स्त्री श्रम, त्याग के साथ संघर्ष की ओर भी उन्मुख हुई है। धूमिल स्त्री को स्वतंत्र मनुष्य के रूप में देखने के पक्षपाती हैं। वह मां, बहन, पत्नी और बेटी को भोग से बाहर रखने की कोशिश करते हैं। दूसरी ओर सुकांत स्त्री जीवन की कठिन परिस्थितियों में भूख, गरीबी, लाचारी और युद्धग्रस्त समाज से जूझते स्थितियों का जिक्र करते हैं। उनकी स्त्रियां परिस्थितियों में समाज के समक्ष खुद को सशक्त और प्रतिभापूर्ण बनाती हुई दिखाई पड़ती हैं। धूमिल ने कुछ अपशब्द का प्रयोग किया है। उसका कारण है कि वे समाज को रूढ़ी मुक्त देखना चाहते हैं। वे समाज के घिनौनेपन पर तंज कसते हैं। इसलिए उनकी कविताओं में व्यवस्था और सामाजिक अन्याय के खिलाफ तीखा प्रहार देखा जाता है। सुकांत की कविताओं में मां, मजदूरनी, पृथ्वी, ठाकुमा और अन्य स्त्री जीवन के प्रति सहानुभूति जताई गई है। इन दोनों ने शोषित वर्ग, पीड़ित और संघर्षशील की यथार्थ को उजागर करते हैं। वे पृथ्वी, शक्ति, शिखंडनी, मुक्ति तथा धरती की पीड़ा को भीं सामाजिक मूल्यों से जोड़ते हैं। धूमिल और सुकांत की कविताओं में स्त्री को एक युगांतरकारी परिवर्तन के रूप में देखा गया है। दोनों कवियों ने समाज की असमानता और बदलाव के बीच स्त्री को स्वतंत्र रूप प्रदान करते हैं। समाज में स्त्री को करुणा, मातृत्व स्नेह और क्रांतिकारी स्थितियों से उभरने का प्रयास करते हैं।

बीजशब्द– स्त्री, सामाजिक यथार्थ, प्रगतिशील चेतना, असमानता, संघर्ष, मुक्ति

मूल शोध– धूमिल और सुकांत का काव्य वह प्रकाशपुंज हैं, जो हिंदी और बांग्ला साहित्य में अतुलनीय है। इन दोनों कवियों की वैचारिक तथा मानसिक पृष्ठभूमि भाषायी स्तर पर भिन्न होने के बावजूद भी कुछ क्षेत्र में समान हैं। इन महान रचनाकारों ने अल्पायु होने पर भी कृतित्व तथा व्यक्तित्व में सार्थकता प्राप्त करते हैं। इनकी रचनाएं मानसिक उत्पीड़न, अभाव, दारिद्रता तथा शोषण के विरोध करती है। यही मानसिकता दोनों कवियों की वैचारिकता को स्पष्ट करती है। सुदामा पाण्डेय 'धूमिल' आजादी के पश्चात काव्य जगत में प्रसिद्ध हुए तथा सुकांत भट्टाचार्य आजादी पूर्व। इनकी कविताएं सामाजिक और राजनीति पक्ष की सच्चाइयों को स्पष्ट करता है। बिहार से बांग्ला तक की यथार्थता का बोध इनकी कविताओं में लक्ष्य किया जा सकता है। वे स्वतंत पूर्व और पश्चात की समान स्थितियों से जूझते हैं। जो स्थिति स्वतंत्रता से पहले और बाद में देखा जा रहा था, वह आज भी नहीं बदली। आज लोग संसद की गुलामी कर रहे हैं और लोगों को मदारी के समान ञ्च रहे हैं। उस समाज में स्त्री शोषित और अबला कहला रही है। सरकार शोषण के विरुद्ध आवाज तक नहीं उठाते हैं, जो कुछ करते हैं वह भी दिखावा मात्र। आज की जनता आधुनिकता का शिकार हो रही है। ये सारी चीजें उनकी कविताओं का केंद्र है। उनकी कृतियों में भारतीय जनता की स्वतंत्रता, न्यायपूर्णता, समानता तथा धर्मनिरपेक्षता को भी काफी महत्व दिया गया है।

इनकी कविताओं में स्त्री को सिर्फ भोग के रूप में नहीं बल्कि संघर्ष का प्रतीक माना है। इनकी कविताओं में आजाद भारत को पराधीन का शिकार होते देख जा सकता है। इस प्रजातांत्रिक देश में आमजन विषमतापूर्ण अमानवीय व्यवस्था तंत्र से हताश है। युवा वर्ग शिक्षा व्यवस्था और बेरोजगारी से निराश है। इन बेरोजगारी में कुंठा और हताशा मन-मस्तिष्क को घेरे हुए हैं। इस स्थिति के कारण युवा वर्ग दिशाहीन होकर नशे कर रहे हैं। दूसरी तरफ युवतियां बाजारू होती हुई दिखाई पड़ती है। चारों तरफ मूल्यहीनता का समाज गढ़ा जा रहा है। फिर भीं लोकतंत्र व्यवस्था कायम है और अबाध गति से प्रगति की ओर बढ़ रही है। देश में मूल्यहीनता के कारण युवा वर्ग और स्त्रियां वास्तविकता की जानकारी से दूर होती जा रही है। इसी कारण श्रम अवमूल्यन मानवता से अलग होता जा रहा है। अतः स्त्री भी इसका शिकार हो रही हैं। इन दोनों की कविताएं मूल्यहीनता के साथ यथार्थ को उजागर करने का काम करता है। धूमिल और सुकांत की कविताओं में वर्तमान मुठभेड़ के प्रति जागरूकता स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। उनकी कृतियों में युवक की लाचारी और युवतियों की दशा का वर्णन कई अर्थों में करते हैं। किसी भी देश की रीढ़ युवा वर्ग पर ही निर्भर करता है। जहां युवा बेरोजगार और महिलाएं अवहेलित होगी उस देश का बंटाधार होना निश्चित है। तत्कालीन स्थितियों को ध्यान में रखते हुए उनकी कविताएं खड़ी उतरती है। वे स्वतंत्र भारत का समाज कई वर्षों पहले ही गढ़ गए हैं। स्त्रियां पौरुष जाति से हताश होकर तिलस्मी खोज में उलझी हुई है। इन दोनों की युवतियां बेरोजगारी, प्यार, गृहस्थ तथा परिवार के प्रति न्योछावर होकर भी संघर्ष करती है। स्त्रियों के पैरों की बेड़ियों को खोलकर उन्हें प्रतिरोध करने के लिए जागरूक करते हैं। इन कवियों ने संघर्ष तथा प्रतिरोध करती हुई सशक्त स्त्री को गढ़ा है। इस संदर्भ में नामवर सिंह कहते हैं कि – "धूमिल के मन में कहीं स्त्री विषयक रोमाण्टिक दृष्टि के विरूद्ध तीव्र प्रतिक्रिया का भाव था।"[1] वास्तव में देखा जाता है कि धूमिल की कविताओं में स्त्री के प्रति अ-रोमाण्टिक दृष्टि व्यक्त हुई है। धूमिल ने चाची प्रभावती से शिक्षा ग्रहण किए। सुकांत ने भी अपनी दीदी, सरयू भाभी से विद्या अर्जन किया। यह कहने का तात्पर्य यह है कि दोनों ने ही स्त्री द्वारा ही शिक्षा प्राप्त कर भावभूमि की उच्च शिखर तक पहुंचे और जगत में प्रसिद्धि लाभ किए। कोई भी व्यक्ति के जीवन में स्त्री का होना उसकी पूर्णता को दर्शाता है। धूमिल की कविता 'उस औरत के बगल में लेटकर' में उन्होंने स्त्री के शोषित, पीड़ित और उपेक्षित जीवन का चित्रण करते हैं। कवि उनलोगों के प्रति कठोर सच्चाई को अनुभव करते हैं। वे नफरत, हिंसा और विद्वेष को संवेदना और शांति का प्रतीक मानते हैं। इन परिस्थितियों में घृणा और प्रतीकात्मकता से कुछ समाधान नहीं हो सकता, क्योंकि शब्द मानवीय मूल्य खो चुका है। भाषा और अभिव्यक्ति इतनी विकृत हो गई है कि सत्य, करुणा के स्थान पर भय, हिंसा और आतंक एक व्यापक रूप धारण करने लगे हैं। कोई भी विचार के दो पक्ष होते हैं एक न्याय और दूसरा अन्याय। प्रत्येक व्यक्ति अन्याय के पथ पर चलना पसंद करते हैं, क्योंकि न्याय के पक्ष का पड़ाव मुश्किल होता है। इस संदर्भ में कवि लिखते हैं कि –

"उस औरत की बगल में लेटकर मुझे लगा कि नफरत
और मोमबत्तियाँ जहाँ बेकार साबित हो चुकी हैं और पिघले हुए

अँधेरा और कीचड़ और गोश्त की खुराक पर जिन्दा हैं।"[2]

धूमिल की तरह सुकांत भी अपनी कविताओं में स्त्री पक्ष को उजागर किया गया है। उनका कविता संग्रह 'मिठेकड़ा' के अंतर्गत 'मेयेदेर पदबी' (महिलाओं के उपनाम) कविता में उपनाम लिखने की गलत तरीके पर व्यंग्य करते हैं। उन्होंने महिलाओं के उपनाम के अंत में केवल 'आ' कार में हुए उपनाम परिवर्तन को दर्शाया है। उनका व्यक्तिगत मत है कि महिलाओं के लिए उपर्युक्त शब्दों का प्रयोग करना उचित नहीं है, पर लोग भ्रांतिवश करते हैं। क्योंकि उनकी भी एक पहचान है। उदाहरणस्वरूप 'गुप्त' से 'गुप्ता' लिख दिया जाता है। कवि ने यह गलतियां कई पत्रों, पोस्टकार्डों और लिफाफों में लक्ष्य करते हैं। इसका उद्देश्य यह दिखाना है कि भाषा के मानक रूप में सिर्फ अनुमान लगाने से नाम या उपनाम बदलना उचित नहीं होता है। क्योंकि यह भाषाई दृष्टि से बहुत गलत है। वे समाज में प्रचलित नाम लिखने की भ्रमित धारणा को बदलने की चेष्टा करते हैं। वे इस कविता के माध्यम से कहना चाहते हैं कि मानक रूप के अनुसार ही शब्दों का प्रयोग करना चाहिए।

इस संदर्भ में उनकी मान्यता हैं कि –

"महिलाओं के उपनामों में बड़ा गोलमाल है।
इन कारण से नामों में अनावश्यक बदलाव दिखाई देता है।
केवल 'आ' कार जोड़कर स्त्रीलिंग बनाने की कोशिश हास्यास्पद लगती है।
भूमिका (प्रस्तावना) में लिखी गई है।
कि 'गुप्त' को महिलाओं के नाम में 'गुप्ता' लिखा है।
इस तरह के अनेक उदाहरण पत्रों और पोस्टकार्डों के लिफाफों पर देखे हैं।"[3]
(स्वयं अनुवाद)

'धूमिल' की कविता 'तुम्हें वेश्या कहते हुए' (1968) में कवि ने समाज की नैतिक विडंबना और स्त्री के पाखंडपूर्ण दृष्टिकोण का व्यंग्यपूर्ण चित्रण करते हैं। मनुष्य खुद के लाभ के लिए पृथ्वी तथा प्रकृति का लगातार शोषण करता है। बिंब समाज के उस दिखावटी सभ्य वर्ग को सामने लाने का काम करता है। जो बाहरी रूप से सभ्य और मर्यादित दिखते हैं, पर आंतरिक रूप से शोषित और अपराधी है। वे 'बलात्कार' शब्द का अत्यंत तीखे रूप में प्रहार करते हैं। वे लक्ष्य करते है कि शोषण की प्रक्रिया पीढ़ी–दर–पीढ़ी चली आ रही है। मनुष्य जिस पृथ्वी पर वास करते हैं उसका भी पूर्णरूप से दोहन करते हैं। कवि इस समस्त अपराध को स्वीकार करते हुए अमानवीय और पाखंड के प्रति सजग होते हैं। इस विषय को स्पष्ट करते हुए कहा है कि –

"फिर वही अस्फुट ध्वनियाँ अँधेरे की
फिर वही बटन बन्द करती कुलीनता
चकपकाती हुई गली का मोड़ पार करती है।

अपराधियों–सा हाथ! उठाए हुए
एक दैत्याकार, दर–ब–दर भटकता है।"[4]

सुकांत की कविता 'हरकारा' में मेहनतकश श्रमिक के संघर्ष, शोषण और उसके पारिवारिक विरह को मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। श्रमिकों ने अपने जीवन के भूख, परिश्रम तथा अभाव लेकर दुनिया का बोझ वहन करता है। वह कठिन परिस्थितियों में भी हार नहीं मानता है और संघर्षरत रहता है। इस कविता में कवि ने श्रमिक के आर्थिक शोषण, कठोर परिश्रम, त्याग, प्रेम और पारिवारिक विरह का मार्मिक ढंग से चित्रण किया है। वे श्रम को प्रेम तथा परिवार का हिस्सा मानते हैं। स्त्रियां भी श्रम से पीछे नहीं हटती वे भी पुरुष के भांति ही समान श्रम करती है। कवि स्त्री मन को भी स्थान देते हुए कहते हैं कि पुरुष अगर बाहर का काम करता है तो स्त्रियां भी उनके लिए हमेशा कार्यरत रहती है–

"इस तरह जीवन के बहुत-से सालों को पीछे छोड़,
दुनिया का बोझ भूखे हरकारे ने पहुँचा दिया है 'मेल' में

घर में उसकी प्रिया अकेली बिस्तर की नींदहीन रात जगती है।"[5]

धूमिल का प्रथम काव्य संग्रह 'संसद से सड़क तक' की पहली कविता ही 'कविता' है। जिसमें कवि ने अपने अनुभव को 'कविता' का नाम दिया है। क्योंकि कविता ही मनुष्य को ज्ञान तथा सत्य की भावभूमि से परिचय कराती है। वे स्त्री जीवन की गंभीर सच्चाई को भी देखने का प्रयास करते हैं। इसलिए अपनी कविता में स्त्री को रूपक के रूप में चुना है –

"एक सम्पूर्ण स्त्री होने के पहले ही
गर्भाधान की क्रिया से गुजरते हुए

उसने जाना कि हर लड़की
तीसरे गर्भपात के बाद
धर्मशाला हो जाती है और कविता
हर तीसरे पाठ के बाद।"[6]

सुकांत 'परिखा'(खाई) कविता में शिखंडी को मनुष्य की पीड़ा, मुक्ति की आकांक्षा और इतिहास को अपराध बोध के रूप व्यक्त किया है। ऐसी स्थिति में शरीर और मन दुख के निशा से मुक्त होना चाहता है, लेकिन वह उससे मुक्त नहीं हो पाता। वे समाज के कायर और अवसरवादी लोगों के पुराने अपराध और गलतियों से बचने प्रयास करता है। कवि उनके मृत इतिहास में पाप और कलंक को बाह्य परिष्कृति के रूप में मिटाना चाहता है। वह इतिहास की पृष्ठभूमि में रक्त और पीड़ा के औपचारिक प्रायश्चिता को मिटा नहीं सकता। वह रक्त आज भी तत्कालीन स्थिति को परिभाषित और प्रभावित करती है। इस संदर्भ में वे लिखते हैं कि –

"थका हुआ देह भीरूता की वेदना से अन्धकूप में
मुक्ति की माया से व्याकुल रोता है,
कितनी नए रूप में शिखंडी जन्म ली है?
भयानक स्वप्नों का प्रायश्चित चोर की तरह होता है।"[7]

(स्वयं अनुवाद)

धूमिल ने कृत्रिम और संवेदनहीन शहर की तस्वीर को 'जनतंत्र के सूर्योदय में' कविता में प्रस्तुत किया है। वे समाज में हो रहे भयावह सच्चाई को उजागर करते हैं। उनकी कविता में अन्याय, अमानवीय और नैतिक पतन स्थायी रूप में छाया रहता है। वे कविता में शहर के तामझाम के पीछे गरीबी, गंदगी, शोषण और निराशा की दुनिया को भूल जाते हैं। 'पीला अंधकार' को बीमारी और भय का प्रतीक मानते हैं। उन्होंने पागल गर्भवती स्त्री का बिंब उपेक्षित और पीड़ित रूप में लिया है। वे समाज को संवेदनहीन समझते हुए कहते हैं कि आज के लोग दूसरे की पीड़ा नहीं समझते। इस पक्ष को दर्शाते हुए कवि कहते हैं कि–

"सड़क के पिछले हिस्से में
छाया रहेगा

गलियों में नंगी घूमती हुई
पागल औरत के 'गाभिन पेट' की तरह
सड़क के पिछले हिस्से में छाया रहेगा पीला अन्धकार।"[8]

सुकांत की कविता 'अभिवादन' में कवि किसी स्त्री विशेष के पक्ष में नहीं लिखते हैं लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से देख जाए तो पृथ्वी की बात करते हैं। वे साथियों को निराशा से आशा की ओर उन्मुख करते हैं। वह कहते है कि सपनों को साकार करना ही मनुष्य का लक्ष्य होना चाहिए। वे अपनी कविताओं में परिवर्तन और नए युग की सूचना देते हैं। उनकी कविताएं पूरी पृथ्वी में आशाओं की किरण बिखेर देना चाहती है। कवि मानव मन की आशा, संघर्ष, नवजागरण और उज्ज्वल भविष्य युक्त एक बेहतर समाज निर्माण करना चाहते हैं। इस निर्माण में स्त्री भी समान रूप से भूमिका निभाती है। उनकी कविताओं के माध्यम से देखा जा सकता है कि–

"हे साथी, आज स्वप्न देखना व्यर्थ नहीं होगा,
विपूल संभावनाएं चारों ओर लग्न के उत्सवरत है।
पृथ्वी सूर्य तपस्या में मग्न है।"[9]

(स्वयं अनुवाद)

कवि 'गृहस्थी : चार आयाम' कविता में स्त्री को आंचल, ममता और स्नेह तक ही सीमित नहीं रखा बल्कि अपनी अधिकार की ओर भीं दृष्टि डालने की प्रेरणा दी है। उन्होंने स्त्री के अस्तित्व को समाज की दृष्टि से उकेरने का प्रयास किया है। उनके अनुसार स्त्री सबसे पहले एक जीवित, स्वतंत्र और भौतिक अस्तित्व वाली है। उसका शरीर भी उसकी पहचान का एक महत्वपूर्ण अंग है। जिसे समाज के आदर्श ने उसे वस्तु रूप में स्वीकार किया है। इसलिए वे स्त्री को संपूर्ण मानवीय स्वरूप और सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। इस संदर्भ में धूमिल के अध्येता गणेश तुलसीराम अष्टेकर लिखते हैं कि – "स्व. धूमिल भी कविताओं में नारी विषयक उसकी कोई उदात्त धारणा स्पष्ट नहीं होती। ... इसके कारण हैं– कवि की स्वानुभूति जन्य मानसिकता, उसके मध्यवर्गीय संस्कार और परम्पराओं को तोड़ सकने में उसकी घोर असमर्थता।"[10]

निष्कर्ष– यह कहा जा सकता है कि धूमिल और सुकांत भट्टाचार्य दोनों की कविताओं में स्त्री केवल प्रेम या सौंदर्य की ही वस्तु नहीं, बल्कि संघर्ष, श्रम और सम्मान का भी प्रतीक है। धूमिल ने स्त्री को सामाजिक विसंगतियों, पितृसत्तात्मकता, आर्थिक शोषण और मानवीय संवेदना में पिसती है, इस विषय का तीखा प्रहार करते हैं। वहीं सुकांत स्त्री को अकाल, गरीबी और शोषण से जूझती परिस्थितियों के साथ परिवार के सम्मान की रक्षा भी करती है। इस दोनों कवियों ने स्त्री के प्रति सम्मान और स्वाभिमान की रक्षा पर जोर देते हैं। तत्कालीन समय में धूमिल और सुकांत की कविताएं स्त्री विमर्श के प्रति मानवता, सामाजिकता तथा आर्थिक अभाव को भी स्पष्ट करते हैं। दोनों ने स्त्री को जीवनदायनी, कल्याणकारी और संघर्ष के रूप में चित्रित किया है।

संदर्भसूची

1. मिश्र, विद्याधर, धूमिल की कविताओं पर विचार विमर्श, प्रकाशन, अमन, कानपुर, संस्करण - 2025. पृष्ठ संख्या –144
2. पाण्डेय, रत्नशंकर, धूमिल समग्र भाग -1, प्रकाशन, राजकमल, नई दिल्ली, संस्करण - 2023, पृष्ठ संख्या- 58
3. बंधोपाध्याय, मानिक, सुकांत समग्र, प्रकाशन, एन.बी.ए., कोलकाता, संस्करण, प्रथम - 2022, पृष्ठ संख्या– 149
4. पाण्डेय, रत्नशंकर, धूमिल समग्र भाग -1, प्रकाशन, राजकमल, नई दिल्ली, संस्करण - 2023, पृष्ठ संख्या- 525
5. पाण्डेय, रत्नशंकर, धूमिल समग्र भाग-2, प्रकाशन, राजकमल, नई दिल्ली, संस्करण - 2023, पृष्ठ संख्या- 331
6. पाण्डेय, रत्नशंकर, धूमिल समग्र भाग-1, प्रकाशन, राजकमल, नई दिल्ली, संस्करण - 2023, पृष्ठ संख्या- 45
7. बंधोपाध्याय, मानिक, सुकांत समग्र, प्रकाशन, एन.बी.ए., कोलकाता, संस्करण, प्रथम - 2022, पृष्ठ संख्या– 55
8. पाण्डेय, रत्नशंकर, धूमिल समग्र भाग -1, प्रकाशन, राजकमल, नई दिल्ली, संस्करण- 2023, पृष्ठ संख्या- 48
9. बंधोपाध्याय, मानिक, सुकांत समग्र, प्रकाशन, एन.बी.ए., कोलकाता, संस्करण, प्रथम- 2022, पृष्ठ संख्या– 60
10. अष्टेकर, गणेश तुलसीराम, कठघरे का कवि धूमिल, प्रकाशन, पंचशील, संस्करण–1984, जयपुर, पृष्ठ संख्या- 131

हिन्दी विभाग, विद्यासागर विश्वविद्यालय
मेदिनीपुर, पश्चिम बंगाल
मो-7478020904

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

राम और हनुमान की वीरतापूर्ण एवं भक्तिपूर्ण भूमिकाएँ

डॉ. विशाल जैन

सारांश - भारतीय सांस्कृतिक चेतना में महाकाव्य रामायण का स्थान अद्वितीय है, और इस महाकाव्य के दो पात्र – भगवान श्रीराम और हनुमान जी– भारतीय जनमानस में आदर्श चरित्र के रूप में प्रतिष्ठित हैं। श्रीराम को मर्यादा पुरुषोत्तम एवं वीरता के प्रतीक के रूप में देखा जाता है, वहीं हनुमान जी भक्ति, सेवा और शक्ति के अद्वितीय संगम के रूप में प्रतिष्ठित हैं। यह शोध-पत्र इन दोनों दिव्य चरित्रों की वीरतापूर्ण एवं भक्तिपूर्ण भूमिकाओं का विश्लेषणात्मक एवं तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। अध्ययन में वाल्मीकि रामायण एवं तुलसीदास रचित रामचरितमानस के प्रसंगों के आधार पर यह दर्शाने का प्रयास किया गया है कि किस प्रकार वीरता और भक्ति परस्पर पूरक तत्त्व हैं, तथा राम-हनुमान का संबंध आदर्श स्वामी-सेवक एवं मित्रता का प्रतिमान प्रस्तुत करता है। यह अध्ययन वर्तमान सामाजिक संदर्भ में इन चरित्रों की प्रासंगिकता पर भी प्रकाश डालता है।

बीज शब्द : श्रीराम, हनुमान, वीरता, भक्ति, रामायण, रामचरितमानस, मर्यादा पुरुषोत्तम।

1. प्रस्तावना- "भारतीय साहित्य एवं संस्कृति में रामायण केवल एक महाकाव्य नहीं, अपितु जीवन-मूल्यों, आदर्शों एवं नैतिक शिक्षाओं का अक्षय स्रोत है। इस महाकाव्य में वर्णित पात्र सदियों से भारतीय समाज के आचार-विचार को दिशा देते रहे हैं। इनमें भगवान श्रीराम एवं हनुमान जी का स्थान सर्वोपरि है। श्रीराम जहाँ शक्ति, धैर्य, मर्यादा और वीरता के प्रतीक हैं, वहीं हनुमान जी भक्ति, समर्पण, सेवा और अद्‌भुत पराक्रम के प्रतिमान हैं। यह उल्लेखनीय है कि दोनों चरित्रों में वीरता और भक्ति का अद्‌भुत समन्वय दिखाई देता है – राम अपनी वीरता से धर्म की रक्षा करते हैं तो हनुमान अपनी भक्ति से शक्ति अर्जित करते हैं।"[1] प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य इन दोनों चरित्रों की भूमिकाओं का गहन विश्लेषण करना है, विशेष रूप से यह समझने का प्रयास करना है कि वीरता और भक्ति किस प्रकार एक-दूसरे के पूरक बनकर आदर्श चरित्र-निर्माण में सहायक होते हैं। यह अध्ययन साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक दृष्टिकोण से इन चरित्रों की प्रासंगिकता को भी रेखांकित करता है।

1.1 अध्ययन के उद्देश्य- इस शोध-पत्र के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं :

- प्रथम, भगवान श्रीराम की वीरतापूर्ण भूमिका का विश्लेषण करना।
- द्वितीय, हनुमान जी की वीरता एवं भक्ति दोनों पक्षों का अध्ययन करना।
- तृतीय, राम-हनुमान संबंध की तुलनात्मक व्याख्या प्रस्तुत करना।
- चतुर्थ, इन आदर्शों की वर्तमान सामाजिक संदर्भ में प्रासंगिकता स्पष्ट करना।

1.2 शोध पद्धति- प्रस्तुत अध्ययन गुणात्मक शोध पद्धति पर आधारित है। इसमें वाल्मीकि रामायण, तुलसीदास कृत रामचरितमानस तथा अन्य सम्बंधित साहित्यिक एवं आलोचनात्मक ग्रंथों का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है। द्वितीयक स्रोतों के आधार पर तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

2. भगवान श्रीराम की वीरतापूर्ण भूमिका- "श्रीराम का चरित्र वीरता के अनेक आयामों को समेटे हुए है। उनकी

वीरता केवल शारीरिक बल तक सीमित नहीं, अपितु धैर्य, संयम और धर्म-रक्षा के प्रति अटूट निष्ठा में भी परिलक्षित होती है।”[2]

2.1 बाल्यकाल से किशोरावस्था तक की वीरता- श्रीराम की वीरता का प्रथम परिचय हमें ऋषि विश्वामित्र के आश्रम में यज्ञ-रक्षा हेतु राक्षसों – ताड़का, सुबाहु एवं मारीच – के संहार में मिलता है। अल्पायु में ही इन दुर्दांत राक्षसों का सामना करना उनके असाधारण साहस एवं शौर्य का प्रमाण है। तत्पश्चात शिव-धनुष भंग कर सीता स्वयंवर में विजय प्राप्त करना उनकी शक्ति और वीरता का प्रत्यक्ष उदाहरण है।

2.2 वनवास काल में वीरता- “चौदह वर्ष के वनवास काल में श्रीराम ने अनेक राक्षसों का संहार किया, जिनमें विराध, कबंध एवं खर-दूषण जैसे शक्तिशाली राक्षस सम्मिलित हैं। पंचवटी में चौदह हजार राक्षसों का अकेले संहार करना उनकी अद्वितीय वीरता को दर्शाता है। यह उल्लेखनीय है कि यह वीरता सदैव धर्म-रक्षा तथा ऋषि-मुनियों की सुरक्षा हेतु प्रयुक्त हुई, न कि आत्म-गौरव के लिए।”[3]

2.3 लंका विजय एवं रावण वध- सीता हरण के पश्चात श्रीराम की वीरता चरम पर पहुँचती है। समुद्र पर सेतु-निर्माण, लंका पर आक्रमण एवं अंततः रावण जैसे बलशाली एवं ज्ञानी राजा का वध – यह संपूर्ण प्रसंग वीरता, रणनीति और धैर्य का अद्भुत संगम है। रावण वध के पश्चात भी श्रीराम ने विभीषण से कहलवाकर रावण का यथोचित अंतिम संस्कार करवाया, जो उनकी वीरता के साथ-साथ उदारता एवं मर्यादा को भी प्रदर्शित करता है।

2.4 मर्यादा पुरुषोत्तम की छवि- श्रीराम की वीरता सदैव मर्यादा से नियंत्रित रही। शक्ति का प्रयोग करते हुए भी वे धर्म, नीति एवं कर्तव्य की सीमाओं का उल्लंघन नहीं करते। यही कारण है कि उन्हें ‘मर्यादा पुरुषोत्तम’ कहा जाता है। उनकी वीरता में अहंकार का लेशमात्र भी नहीं, अपितु कर्तव्य-बोध एवं परोपकार की भावना प्रमुख है।

3. हनुमान जी की वीरतापूर्ण भूमिका- “हनुमान जी का चरित्र वीरता के उन आयामों को प्रस्तुत करता है, जहाँ शक्ति पूर्णतः भक्ति एवं सेवा-भाव से संचालित होती है। उनकी वीरता निःस्वार्थ और पूर्णतः स्वामी-कार्य हेतु समर्पित है।”[4]

3.1 समुद्र लंघन- सीता माता की खोज में विशाल समुद्र को लांघना हनुमान जी की अद्भुत शक्ति एवं साहस का प्रथम बड़ा प्रदर्शन है। इस दौरान सुरसा, सिंहिका जैसी बाधाओं का सामना करते हुए भी वे अपने लक्ष्य से विचलित नहीं हुए, जो उनकी दृढ़ता एवं वीरता का परिचायक है।

3.2 लंका दहन- लंका में प्रवेश कर सीता माता को अशोक वाटिका में खोजना, रावण-पुत्र अक्षय कुमार का वध करना तथा अंततः अपनी पूँछ में लगी आग से संपूर्ण लंका को भस्म कर देना – यह प्रसंग हनुमान जी की अद्वितीय वीरता, साहस एवं युद्ध-कौशल का प्रमाण है। यह उल्लेखनीय है कि यह समस्त पराक्रम उन्होंने अकेले, शत्रु के गढ़ में प्रवेश कर सम्पन्न किया।

3.3 संजीवनी बूटी प्रकरण- युद्ध के दौरान जब लक्ष्मण मूर्छित हो गए, तब हनुमान जी संजीवनी बूटी लाने हेतु हिमालय पर्वत तक गए। बूटी की पहचान न होने पर उन्होंने संपूर्ण द्रोणागिरि पर्वत को ही उठा लिया – यह प्रसंग उनकी शक्ति, संकल्प एवं स्वामी-भक्ति की पराकाष्ठा को दर्शाता है। यह घटना यह भी सिद्ध करती है कि हनुमान जी के लिए कोई कार्य असंभव नहीं था, जब वह श्रीराम की सेवा से जुड़ा हो।

3.4 युद्ध में पराक्रम- “लंका के युद्ध में हनुमान जी ने अनेक राक्षस योद्धाओं का संहार किया तथा वानर सेना का नेतृत्व करते हुए अद्भुत रणकौशल का प्रदर्शन किया। अहिरावण द्वारा राम-लक्ष्मण के अपहरण के प्रसंग में भी हनुमान जी ने अपनी वीरता एवं बुद्धिमत्ता से दोनों भाइयों की रक्षा की।”[5]

4. हनुमान जी की भक्तिपूर्ण भूमिका- हनुमान जी को भक्ति का सर्वोच्च आदर्श माना जाता है। उनकी भक्ति में समर्पण, निष्ठा एवं निःस्वार्थ सेवा-भाव का अद्भुत समन्वय दृष्टिगोचर होता है।

4.1 दास्य भक्ति का आदर्श- भक्ति के नौ प्रकारों में हनुमान जी को दास्य भक्ति का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण माना जाता है। वे स्वयं को श्रीराम का सेवक मानते हैं तथा इसी सेवक भाव में उन्हें परम आनंद की अनुभूति होती है। तुलसीदास द्वारा

रचित हनुमान चालीसा में इस भक्ति-भाव का सुंदर वर्णन प्राप्त होता है, जिसमें हनुमान जी को 'संकट मोचन' एवं 'राम दूत' के रूप में स्मरण किया गया है।

4.2 सेवा भावना- हनुमान जी की भक्ति केवल पूजा-अर्चना तक सीमित नहीं, अपितु सक्रिय सेवा में परिणत होती है। सीता माता की खोज, संदेशवाहक की भूमिका, संजीवनी बूटी लाना, युद्ध में सहायता — इन समस्त कार्यों में उनकी भक्ति क्रियाशील रूप में प्रकट होती है। यही कारण है कि हनुमान जी को 'कर्मयोगी भक्त' के रूप में भी देखा जाता है।

4.3 राम-नाम की महिमा- हनुमान जी सदैव राम-नाम के स्मरण में लीन रहते हैं। उनके अनुसार राम-नाम में ही समस्त शक्ति एवं सिद्धि निहित है। यही कारण है कि जब उनसे पूछा जाता है कि वे किस तिथि को कौन से कार्य में व्यस्त हैं, तो वे उत्तर देते हैं कि जब तक राम-नाम है, तब तक काल की गणना निरर्थक है। यह प्रसंग उनकी अनन्य भक्ति एवं समय से परे राम-भक्ति की शाश्वतता को दर्शाता है।

4.4 विनम्रता एवं अहंकार-शून्यता- इतनी अपार शक्ति एवं पराक्रम के होते हुए भी हनुमान जी में अहंकार का लेशमात्र भी नहीं है। वे सदैव स्वयं को श्रीराम के चरणों का दास मानते हैं। लंका दहन के पश्चात भी वे अपनी विजय का श्रेय स्वयं को न देकर श्रीराम की कृपा को देते हैं — यह भक्ति की सर्वोच्च अवस्था का परिचायक है।

5. राम-हनुमान संबंध : एक तुलनात्मक विश्लेषण- "श्रीराम और हनुमान जी का संबंध भारतीय संस्कृति में स्वामी-सेवक तथा मित्रता के आदर्श संबंध का प्रतिमान प्रस्तुत करता है। जहाँ श्रीराम अपनी वीरता एवं मर्यादा से समाज में धर्म की स्थापना करते हैं, वहीं हनुमान जी अपनी भक्ति एवं सेवा से उस धर्म-स्थापना में सहायक बनते हैं।"[6]

5.1 वीरता एवं भक्ति का पारस्परिक संबंध- यह ध्यातव्य है कि श्रीराम और हनुमान दोनों के चरित्र में वीरता और भक्ति एक-दूसरे से अभिन्न रूप से जुड़े हैं। श्रीराम की वीरता में भी विनम्रता एवं धर्म के प्रति भक्ति-भाव निहित है — वे स्वयं को मर्यादा से बद्ध मानते हैं। इसी प्रकार हनुमान जी की भक्ति निष्क्रिय न होकर वीरतापूर्ण कर्म में परिणत होती है। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि वीरता बिना भक्ति के अहंकार में तथा भक्ति बिना वीरता के निष्क्रियता में परिवर्तित हो सकती है — किन्तु इन दोनों चरित्रों में यह संतुलन आदर्श रूप में स्थापित है।

5.2 तुलनात्मक विवरण

आधार / विषय	भगवान श्रीराम की भूमिका	हनुमान जी की भूमिका
भूमिका का स्वरूप	राजा एवं मर्यादा-पुरुष के रूप में वीरता का प्रदर्शन।	सेवक एवं अनन्य भक्त के रूप में वीरता का प्रदर्शन।
मुख्य उद्देश्य	धर्म की स्थापना एवं समाज में मर्यादा का संतुलन।	स्वामी-सेवा एवं श्रीराम के कार्यों में पूर्ण सहयोग।
प्रतीकात्मकता	संयम, धैर्य एवं न्यायप्रियता के प्रतीक।	पूर्ण समर्पण, निष्ठा एवं अतुलित बल के प्रतीक।
समानता	दोनों का पराक्रम सदैव परहित एवं धर्म-रक्षा हेतु प्रयुक्त हुआ, स्वार्थ के लिए कभी नहीं।	

5.3 पारस्परिक स्नेह एवं सम्मान- श्रीराम भी हनुमान जी के प्रति अगाध स्नेह रखते हैं। वे हनुमान जी को अपना अभिन्न मित्र एवं भाई-तुल्य मानते हैं। रामचरितमानस में अनेक स्थानों पर श्रीराम स्वयं हनुमान जी की भक्ति एवं सेवा की प्रशंसा करते हैं तथा उन्हें आलिंगन कर अपने हृदय से लगाते हैं। यह पारस्परिक स्नेह एवं सम्मान इस संबंध को केवल स्वामी-सेवक तक सीमित न रखकर एक आदर्श मैत्री का रूप भी प्रदान करता है।

6. सांस्कृतिक एवं सामाजिक प्रासंगिकता- वर्तमान युग में भी श्रीराम एवं हनुमान जी के आदर्श अत्यंत प्रासंगिक हैं। जहाँ श्रीराम का चरित्र नेतृत्व, मर्यादा, न्याय एवं कर्तव्य-निष्ठा की शिक्षा देता है, वहीं हनुमान जी का चरित्र सेवा-भाव,

समर्पण, आत्म-विश्वास एवं निःस्वार्थ कर्म की प्रेरणा प्रदान करता है।

6.1 शिक्षा एवं चरित्र-निर्माण में योगदान- इन दोनों चरित्रों का अध्ययन विशेष रूप से युवा पीढ़ी के चरित्र-निर्माण हेतु अत्यंत उपयोगी है। हनुमान जी का चरित्र यह शिक्षा देता है कि आत्म-संदेह को त्यागकर, गुरु अथवा स्वामी के प्रति निष्ठा रखते हुए, कठिन से कठिन कार्य भी सफलतापूर्वक सम्पन्न किए जा सकते हैं। वहीं श्रीराम का चरित्र यह सिखाता है कि शक्ति एवं अधिकार का प्रयोग सदैव मर्यादा एवं न्याय के दायरे में होना चाहिए।

6.2 समकालीन समाज में प्रासंगिकता- आज के प्रतिस्पर्धात्मक एवं तनावपूर्ण समय में हनुमान जी का आत्म-विश्वास तथा श्रीराम की संयमशीलता दोनों ही मानसिक दृढ़ता एवं नैतिक आचरण हेतु प्रेरणास्रोत बन सकते हैं। भारतीय समाज में आज भी हनुमान जयंती एवं राम नवमी जैसे पर्व इन आदर्शों के स्मरण एवं पुनर्स्थापन का माध्यम बने हुए हैं।

7. निष्कर्ष- प्रस्तुत अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि श्रीराम एवं हनुमान जी के चरित्र भारतीय संस्कृति में वीरता एवं भक्ति के आदर्श प्रतिमान हैं। श्रीराम जहाँ मर्यादा-पूर्ण वीरता के माध्यम से धर्म-स्थापना करते हैं, वहीं हनुमान जी भक्ति-प्रेरित वीरता के माध्यम से उस धर्म-स्थापना में सहायक बनते हैं। दोनों चरित्रों में वीरता और भक्ति परस्पर विरोधी नहीं, अपितु एक-दूसरे के पूरक तत्त्व के रूप में प्रस्तुत हुए हैं। यह अध्ययन यह भी स्थापित करता है कि सच्ची वीरता विनम्रता एवं सेवा-भाव से युक्त होनी चाहिए, तथा सच्ची भक्ति निष्क्रिय न होकर सक्रिय कर्म में परिणत होनी चाहिए। यही संदेश आज भी समाज के लिए अत्यंत प्रासंगिक एवं मार्गदर्शक है।

8. प्रतीकात्मक एवं दार्शनिक विवेचन- "श्रीराम एवं हनुमान जी के चरित्रों को केवल ऐतिहासिक अथवा धार्मिक दृष्टिकोण से ही नहीं, अपितु प्रतीकात्मक एवं दार्शनिक दृष्टिकोण से भी समझा जा सकता है। भारतीय दर्शन में इन दोनों चरित्रों को आत्मा और परमात्मा के संबंध के प्रतीक के रूप में भी व्याख्यायित किया गया है।"[7]

8.1 राम : आत्मतत्त्व एवं मर्यादा के प्रतीक- "दार्शनिक दृष्टि से श्रीराम को 'आत्मा' अथवा परम सत्य के प्रतीक के रूप में देखा जाता है, जो सदैव धर्म, सत्य एवं न्याय के मार्ग पर अडिग रहते हैं। उनकी वीरता प्रतीकात्मक रूप से उस आंतरिक शक्ति को दर्शाती है, जो मनुष्य को असत्य एवं अन्याय के विरुद्ध खड़े होने का साहस प्रदान करती है। इस दृष्टि से रावण वध केवल एक बाह्य युद्ध न होकर अहंकार पर धर्म की विजय का प्रतीक भी माना जाता है।"[8]

8.2 हनुमान : जीवात्मा एवं भक्ति-शक्ति के प्रतीक- हनुमान जी को प्रायः 'जीवात्मा' के प्रतीक के रूप में देखा जाता है, जो निरंतर परमात्मा (श्रीराम) की सेवा एवं भक्ति में लीन रहकर अपने वास्तविक स्वरूप एवं शक्ति को पहचानती है। यह उल्लेखनीय है कि हनुमान जी की अपार शक्ति उन्हें बाल्यावस्था में शाप के कारण विस्मृत हो गई थी, तथा जामवंत जी द्वारा स्मरण कराए जाने पर ही वे अपनी वास्तविक शक्ति को पहचान सके। यह प्रसंग प्रतीकात्मक रूप से यह दर्शाता है कि मनुष्य के भीतर अपार शक्ति निहित होती है, किंतु आत्म-साक्षात्कार एवं उचित मार्गदर्शन के अभाव में वह प्रायः अप्रकट रहती है।

8.3 शक्ति और भक्ति का समन्वय- हनुमान जी का चरित्र इस सिद्धांत का प्रतिपादन करता है कि शक्ति और भक्ति परस्पर विरोधी नहीं, अपितु एक-दूसरे की पूरक हैं। जब शक्ति भक्ति से संचालित होती है, तब वह विनाशकारी न होकर कल्याणकारी बन जाती है। यही कारण है कि अपार बल-शक्ति के स्वामी होते हुए भी हनुमान जी को कहीं भी अहंकारी अथवा विनाशकारी रूप में चित्रित नहीं किया गया — उनकी संपूर्ण शक्ति सदैव सेवा एवं परहित हेतु प्रयुक्त होती है।

9. समन्वित निष्कर्ष- विभिन्न ग्रंथों में इन सूक्ष्म भिन्नताओं के बावजूद, श्रीराम की मर्यादा-पूर्ण वीरता एवं हनुमान जी की भक्ति-पूर्ण वीरता का मूल भाव सर्वत्र अक्षुण्ण बना रहता है। यह इस बात का प्रमाण है कि ये आदर्श केवल किसी एक काल अथवा रचनाकार तक सीमित न होकर, संपूर्ण भारतीय सांस्कृतिक चेतना में गहराई से रचे-बसे हैं।

संदर्भ सूची

1. हजारी प्रसाद द्विवेदी - हिंदी साहित्य की भूमिका, पृष्ठ संख्या- 112, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली।
2. महर्षि वाल्मीकि - वाल्मीकि रामायण , पृष्ठ संख्या 55 गीता प्रेस गोरखपुर।
3. वही, पृष्ठ संख्या 134
4. वही, पृष्ठ संख्या 21
5. गोस्वामी तुलसीदास रामचरितमानस पृष्ठ संख्या 289, गीता प्रेस गोरखपुर।
6. वही
7. धीरेंद्र वर्मा - हिंदी साहित्य का कोश पृष्ठ संख्या 602, ज्ञान मंडल लिमिटेड वाराणसी।
8. महर्षि वाल्मीकि - वाल्मीकि रामायण, पृष्ठ संख्या 410, गीता प्रेस गोरखपुर।

सहायक आचार्य एवं विभाग, हिंदी विभाग
पं. दीनदयाल उपाध्याय राजकीय महिला महाविद्यालय, फरह, मथुरा, उत्तर प्रदेश
मो- 9675141489

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

भारत-श्रीलंका के सांस्कृतिक संबंधों का सौन्दर्यशास्त्रीय अध्ययन : आचार्य आनंद कुमारस्वामी के विशेष संदर्भ में

डॉ. निशीथ गौड़

सार- भारत और श्रीलंका के मध्य सांस्कृतिक संबंध विश्व की प्राचीनतम सांस्कृतिक परम्पराओं में से एक हैं। इन संबंधों की जड़ें केवल भौगोलिक निकटता में नहीं, बल्कि धर्म, दर्शन, कला, साहित्य, स्थापत्य, मूर्तिकला और लोकजीवन की समान सांस्कृतिक चेतना में निहित हैं। प्राचीन काल से ही दोनों देशों के बीच धार्मिक, व्यापारिक और बौद्धिक आदान-प्रदान होता रहा है। सम्राट अशोक द्वारा बौद्ध धर्म के प्रचार, रामायण परम्परा, पालि साहित्य, अनुराधापुर और पोलोन्नरुवा जैसी सांस्कृतिक धरोहरों ने भारत और श्रीलंका को एक साझा सांस्कृतिक सूत्र में बाँध दिया।

आचार्य आनंद कुमारस्वामी ऐसे महान चिन्तक थे जिन्होंने भारत और श्रीलंका की कला एवं संस्कृति को केवल ऐतिहासिक दृष्टि से नहीं, बल्कि आध्यात्मिक और सौन्दर्यशास्त्रीय दृष्टि से भी समझने का प्रयास किया। उन्होंने यह प्रतिपादित किया कि भारतीय और सिंहली कला किसी बाह्य अनुकरण की नहीं, बल्कि एक ही आध्यात्मिक चेतना की अभिव्यक्ति हैं। उनके अनुसार कला का वास्तविक उद्देश्य केवल सौन्दर्य का निर्माण नहीं, बल्कि सत्य, शिव और सुंदर के आध्यात्मिक अनुभव की अभिव्यक्ति है।

कूट शब्द : भारत, श्रीलंका, आनंद कुमारस्वामी, सौन्दर्यशास्त्र, भारतीय कला, बौद्ध संस्कृति, सांस्कृतिक संबंध।

भारत और श्रीलंका का संबंध केवल दो पड़ोसी देशों का संबंध नहीं है, बल्कि यह हजारों वर्षों से विकसित एक सांस्कृतिक सहयात्रा का इतिहास है। दोनों देशों के बीच समुद्री व्यापार, धार्मिक यात्राएँ, वैवाहिक संबंध, शैक्षिक आदान-प्रदान तथा कला एवं शिल्प की परम्पराओं ने ऐसी सांस्कृतिक एकात्मता स्थापित की, जिसकी तुलना विश्व की अन्य सभ्यताओं में दुर्लभ है।

भारतीय संस्कृति ने श्रीलंका के धार्मिक एवं सांस्कृतिक विकास में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। सम्राट अशोक के पुत्र महेन्द्र और पुत्री संघमित्रा द्वारा तृतीय शताब्दी ईसा पूर्व में बौद्ध धर्म का श्रीलंका में प्रचार भारतीय संस्कृति के इतिहास की सबसे महत्वपूर्ण घटनाओं में से एक माना जाता है। इसके साथ ही भारतीय लिपि, भाषा, मूर्तिकला, स्थापत्य और धार्मिक परम्पराओं का भी श्रीलंका में व्यापक प्रभाव पड़ा। इसी सांस्कृतिक विरासत को आधुनिक युग में वैश्विक पहचान दिलाने वाले विद्वानों में आचार्य आनंद कुमारस्वामी का नाम अत्यंत सम्मान के साथ लिया जाता है। वे केवल कला इतिहासकार नहीं थे, बल्कि भारतीय दर्शन, वेद, उपनिषद्, बौद्ध चिंतन, शिल्पशास्त्र तथा सौन्दर्यशास्त्र के अद्वितीय व्याख्याकार थे। श्रीलंका में जन्म लेने के कारण उन्होंने सिंहली संस्कृति को निकट से देखा, जबकि भारतीय दर्शन के गहन अध्ययन ने उन्हें यह अनुभव कराया कि भारत और श्रीलंका की सांस्कृतिक आत्मा मूलतः एक ही है। उनके अनुसार भारतीय कला का मूल्यांकन केवल पश्चिमी सौन्दर्यशास्त्र के आधार पर नहीं किया जा सकता। भारतीय कला का मूल उद्देश्य आध्यात्मिक अनुभूति है। यही सिद्धांत श्रीलंका की बौद्ध कला पर भी समान रूप से लागू होता है।

भारत-श्रीलंका के सांस्कृतिक संबंधों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि- भारत और श्रीलंका के सांस्कृतिक संबंधों का इतिहास

अत्यंत प्राचीन है। पुरातात्त्विक प्रमाण, महावंश, दीपवंश, पालि साहित्य, रामायण तथा भारतीय अभिलेख इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि दोनों देशों के मध्य निरन्तर सांस्कृतिक संवाद चलता रहा। रामायण में वर्णित लंका केवल एक धार्मिक आख्यान नहीं है, बल्कि भारतीय जनमानस में श्रीलंका की सांस्कृतिक उपस्थिति का प्रतीक भी है। यद्यपि रामायण की घटनाओं के ऐतिहासिक पक्ष पर मतभेद हो सकते हैं, किन्तु सांस्कृतिक दृष्टि से इसने दोनों देशों को भावनात्मक रूप से जोड़ने का कार्य किया।

तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व में सम्राट अशोक ने बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए अपने पुत्र महेन्द्र और पुत्री संघमित्रा को श्रीलंका भेजा। इसके परिणामस्वरूप बौद्ध धर्म श्रीलंका का प्रमुख धर्म बन गया। बोधिवृक्ष की शाखा का अनुराधापुर में रोपण केवल धार्मिक घटना नहीं थी, बल्कि भारतीय आध्यात्मिक संस्कृति के स्थायी प्रसार का प्रतीक था। बौद्ध विहारों, स्तूपों, मूर्तिकला और चित्रकला में भारतीय कला के अनेक तत्व स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। अनुराधापुर, सिगिरिया, पोलोन्नरुवा तथा दंबुला की कला भारतीय गुप्त एवं अमरावती कला से प्रभावित होने के साथ-साथ स्थानीय सृजनात्मकता का भी उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती है। व्यापारिक संबंधों ने भी दोनों देशों की सांस्कृतिक निकटता को सुदृढ़ किया। दक्षिण भारत के चोल, पाण्ड्य तथा पल्लव शासकों के साथ श्रीलंका के व्यापक संपर्क ने स्थापत्य, मूर्तिकला और मंदिर-निर्माण की परम्पराओं को समृद्ध किया। इसी प्रकार पालि भाषा तथा संस्कृत के पारस्परिक प्रभाव ने दोनों देशों के साहित्यिक विकास को नई दिशा प्रदान की।

इन सभी ऐतिहासिक प्रक्रियाओं ने भारत और श्रीलंका के मध्य ऐसी सांस्कृतिक चेतना का निर्माण किया जिसे आचार्य आनंद कुमारस्वामी ने "आध्यात्मिक सभ्यता की निरन्तरता" के रूप में देखा। उनके अनुसार भारत और श्रीलंका की कला में दिखाई देने वाली समानताएँ किसी राजनीतिक प्रभाव का परिणाम नहीं, बल्कि साझा धार्मिक एवं दार्शनिक दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति हैं।

आचार्य आनंद कुमारस्वामी : जीवन, कृतित्व एवं सौन्दर्यशास्त्रीय दृष्टिकोण- आचार्य आनंद केंटिश कुमारस्वामी का जन्म 22 अगस्त 1877 को तत्कालीन सीलोन (वर्तमान श्रीलंका) के कोलम्बो में हुआ। उनके पिता सर मुतु कुमारस्वामी एक प्रतिष्ठित विधिवेत्ता, विद्वान तथा सिंहली समाज के प्रमुख नेता थे, जबकि उनकी माता एलिज़ाबेथ क्ले बीबी अंग्रेज मूल की थीं। इस प्रकार कुमारस्वामी का व्यक्तित्व पूर्व और पश्चिम की सांस्कृतिक परम्पराओं के मध्य विकसित हुआ, किन्तु उनकी वैचारिक निष्ठा भारतीय संस्कृति, दर्शन और कला के प्रति रही। प्रारम्भिक शिक्षा इंग्लैंड में प्राप्त करने के पश्चात् उन्होंने भूगर्भ विज्ञान का अध्ययन किया और कुछ समय तक सीलोन के खनिज सर्वेक्षण विभाग के निदेशक रहे। किन्तु शीघ्र ही उनका ध्यान भारतीय एवं सिंहली कला, शिल्प और सांस्कृतिक इतिहास की ओर आकर्षित हुआ। उन्होंने अनुभव किया कि औपनिवेशिक शासन के प्रभाव में भारतीय और श्रीलंकाई पारम्परिक कलाएँ उपेक्षित हो रही हैं। इसी कारण उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन भारतीय कला की गरिमा स्थापित करने के लिए समर्पित कर दिया।

सन् 1908 में प्रकाशित उनकी प्रसिद्ध कृति 'Medieval Sinhalese Art' ने उन्हें अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रतिष्ठा दिलाई। इस ग्रंथ में उन्होंने श्रीलंका की पारम्परिक शिल्प-परम्पराओं, धातुकला, वस्त्रकला, काष्ठकला तथा स्थापत्य का विस्तृत विश्लेषण किया और यह सिद्ध किया कि सिंहली कला भारतीय सांस्कृतिक परम्परा से गहरे रूप में सम्बद्ध है, यद्यपि उसने अपनी विशिष्ट स्थानीय पहचान भी विकसित की है। बाद में वे अमेरिका के डनेमनउ व थ्यिदम ।तजे, ठवेजवद में भारतीय एवं इस्लामी कला विभाग के क्यूरेटर नियुक्त हुए। यहाँ उन्होंने भारतीय कला के हजारों दुर्लभ नमूनों का संरक्षण किया तथा पश्चिमी विद्वानों के समक्ष भारतीय कला की दार्शनिक व्याख्या प्रस्तुत की। उनके प्रमुख ग्रंथों—The Dance of Shiva, The Transformation of Nature in Art, Christian and Oriental Philosophy of Art, History of Indian and Indonesian Art ने भारतीय कला-दर्शन को वैश्विक प्रतिष्ठा प्रदान की।

आनंद कुमारस्वामी का सौन्दर्यशास्त्रीय दृष्टिकोण- आनंद कुमारस्वामी का सौन्दर्य-दर्शन भारतीय दार्शनिक परम्परा पर आधारित है। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि भारतीय कला को समझने के लिए भारतीय धर्म, दर्शन, प्रतीकवाद और शिल्पशास्त्र का ज्ञान आवश्यक है। यदि भारतीय मूर्तिकला, मंदिर, चित्रकला अथवा नृत्य का मूल्यांकन केवल पश्चिमी कला-सिद्धान्तों

के आधार पर किया जाएगा, तो उसका वास्तविक अर्थ कभी स्पष्ट नहीं हो सकेगा। उनके अनुसार कला का उद्देश्य केवल बाह्य सौन्दर्य का प्रदर्शन नहीं है। भारतीय कलाकार किसी वस्तु की प्रतिकृति नहीं बनाता, बल्कि उसके आध्यात्मिक स्वरूप को अभिव्यक्त करता है। इसीलिए भारतीय कला में प्रतीकों, मुद्राओं, अनुपातों तथा अलंकरणों का विशेष महत्व है।

कुमारस्वामी ने कलाकार को 'सृजनकर्ता' नहीं, बल्कि 'दिव्य सत्य का साधक' माना। उनके अनुसार कलाकार अपनी व्यक्तिगत भावनाओं की अभिव्यक्ति नहीं करता, बल्कि वह शास्त्रीय परम्परा के माध्यम से सार्वभौमिक सत्य को रूप प्रदान करता है। यही कारण है कि भारतीय कला में कलाकार का व्यक्तिगत नाम अपेक्षाकृत कम मिलता है, जबकि उसकी रचना स्वयं आध्यात्मिक परम्परा का प्रतिनिधित्व करती है। उनके सौन्दर्य-दर्शन में 'सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम्' की भारतीय अवधारणा का विशेष महत्व है। उनके अनुसार जहाँ सत्य और शिव का अनुभव होता है, वहीं वास्तविक सौन्दर्य का उद्भव होता है। अतः भारतीय कला का लक्ष्य केवल नेत्रों को आकर्षित करना नहीं, बल्कि आत्मा को जागृत करना है।

भारत और श्रीलंका की कला का आध्यात्मिक आधार- आनंद कुमारस्वामी ने भारत और श्रीलंका की कला का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए यह प्रतिपादित किया कि दोनों देशों की कला समान आध्यात्मिक आधार पर विकसित हुई है। भारत में बौद्ध धर्म के उदय के साथ जो कलात्मक परम्पराएँ विकसित हुईं, वे श्रीलंका पहुँचकर स्थानीय सांस्कृतिक परिवेश के साथ समन्वित हो गईं।

श्रीलंका के अनुराधापुर, पोलोन्नरुवा तथा दंबुला की मूर्तिकला में भारतीय अमरावती और गुप्त शैली के अनेक तत्व दृष्टिगोचर होते हैं। बुद्ध प्रतिमाओं की शांत मुद्रा, करुणा की अभिव्यक्ति, कमलासन, धर्मचक्र, बोधिवृक्ष तथा स्तूप-वास्तु भारतीय प्रतीकवाद के साथ गहरे रूप में जुड़े हुए हैं। कुमारस्वामी का मत था कि इन कलात्मक समानताओं का कारण राजनीतिक प्रभुत्व नहीं, बल्कि साझा आध्यात्मिक परम्परा है। भारतीय और सिंहली कलाकारों ने धर्म को केवल पूजा-पद्धति के रूप में नहीं, बल्कि सौन्दर्य की सृजनात्मक शक्ति के रूप में ग्रहण किया। उनके अनुसार बौद्ध कला का उद्देश्य केवल बुद्ध का चित्रण करना नहीं, बल्कि करुणा, शान्ति और आत्मज्ञान जैसी आध्यात्मिक अवस्थाओं को दृश्य रूप प्रदान करना है। यही कारण है कि श्रीलंका की बौद्ध कला भारतीय सौन्दर्यशास्त्र की निरन्तरता का सशक्त उदाहरण है।

भारतीय शिल्प परम्परा और सिंहली कला- आनंद कुमारस्वामी ने अपनी कृति Medieval Sinhalese Art में श्रीलंका के पारम्परिक शिल्पों का विस्तृत अध्ययन किया है। उन्होंने स्पष्ट किया कि काष्ठकला, धातुकला, हाथीदाँत की नक्काशी, वस्त्रकला तथा आभूषण निर्माण जैसी अनेक कलाएँ भारतीय शिल्पशास्त्रीय सिद्धान्तों से प्रभावित थीं। उनके अनुसार शिल्प केवल आर्थिक गतिविधि नहीं था, बल्कि धार्मिक जीवन का अभिन्न अंग था। शिल्पकार अपने कार्य को ईश्वर की सेवा मानता था। यही कारण है कि भारतीय और श्रीलंकाई शिल्प परम्पराओं में तकनीकी दक्षता के साथ आध्यात्मिक समर्पण भी दिखाई देता है। इस प्रकार आनंद कुमारस्वामी यह सिद्ध करते हैं कि भारत और श्रीलंका की सांस्कृतिक निकटता का सबसे प्रामाणिक प्रमाण उनकी कला और शिल्प परम्पराओं में निहित है। इन परम्पराओं में केवल शैलीगत समानता ही नहीं, बल्कि जीवन-दर्शन, धार्मिक विश्वास तथा सौन्दर्य-बोध की भी गहन एकता विद्यमान है।

भारत-श्रीलंका के सांस्कृतिक संबंधों का सौन्दर्यशास्त्रीय विश्लेषण

1. बौद्ध कला : भारत और श्रीलंका की साझा सांस्कृतिक चेतना- भारत और श्रीलंका के सांस्कृतिक संबंधों का सबसे सशक्त आधार बौद्ध धर्म है। बौद्ध धर्म ने दोनों देशों को केवल धार्मिक स्तर पर ही नहीं, बल्कि कला, स्थापत्य, मूर्तिकला, चित्रकला तथा साहित्य के क्षेत्र में भी एक साझा सांस्कृतिक पहचान प्रदान की। सम्राट अशोक द्वारा महेन्द्र और संघमित्रा को श्रीलंका भेजे जाने के बाद वहाँ जिस बौद्ध संस्कृति का विकास हुआ, उसने भारतीय कलात्मक आदर्शों को स्थानीय परम्पराओं के साथ समन्वित कर एक नवीन रूप प्रदान किया। आचार्य आनंद कुमारस्वामी के अनुसार बौद्ध कला का वास्तविक उद्देश्य किसी ऐतिहासिक घटना का चित्रण नहीं, बल्कि आध्यात्मिक अनुभूति को दृश्य रूप देना है। बुद्ध की प्रतिमा में दिखाई देने वाली शांत मुद्रा, अर्धनिमीलित नेत्र, करुणामय मुखमण्डल तथा ध्यान की अवस्था मानव के अंतर्मन को शान्ति और

आत्मबोध की ओर प्रेरित करती है। यह भारतीय रस-सिद्धान्त की "शान्त रस" परम्परा का कलात्मक रूप है। श्रीलंका के अनुराधापुर, पोलोन्नरुवा, दंबुला तथा अवुकाना की बुद्ध प्रतिमाएँ भारतीय गुप्तकालीन कला की स्मृति जगाती हैं, किन्तु उनमें सिंहली कलाकारों की मौलिक संवेदना भी स्पष्ट दिखाई देती है। कुमारस्वामी का मत है कि यह समानता किसी राजनीतिक प्रभाव की नहीं, बल्कि साझा धार्मिक दर्शन की अभिव्यक्ति है।

2. मूर्तिकला एवं स्थापत्य का सौन्दर्यशास्त्र- भारतीय और श्रीलंकाई मूर्तिकला में प्रतीकवाद का विशेष महत्व है। भारतीय शिल्पशास्त्र के अनुसार प्रतिमा केवल पत्थर का आकार नहीं, बल्कि दिव्य सत्ता का मूर्त स्वरूप है। इसी प्रकार श्रीलंका की बुद्ध प्रतिमाएँ भी केवल कलात्मक वस्तुएँ नहीं, बल्कि ध्यान और करुणा का दृश्य रूप हैं। आनंद कुमारस्वामी ने भारतीय शिल्पशास्त्र का उल्लेख करते हुए कहा कि मूर्तिकार का उद्देश्य बाह्य यथार्थ का अनुकरण नहीं, बल्कि आध्यात्मिक सत्य की अभिव्यक्ति है। इस दृष्टि से भारतीय मंदिरों की मूर्तियाँ तथा श्रीलंका के विहारों की बुद्ध प्रतिमाएँ समान दार्शनिक आधार पर निर्मित हुई हैं।

स्थापत्य कला में भी यह सांस्कृतिक एकता दिखाई देती है। भारत के साँची, अमरावती और नालन्दा की स्थापत्य परम्परा का प्रभाव श्रीलंका के महास्तूप, अभयगिरि तथा जेतवनाराम जैसे विशाल बौद्ध स्मारकों में स्पष्ट परिलक्षित होता है। स्तूप, चौत्य, विहार तथा बोधिवृक्ष की पूजा दोनों देशों की सांस्कृतिक निरन्तरता के सशक्त प्रतीक हैं। कुमारस्वामी के अनुसार स्थापत्य केवल भवन-निर्माण नहीं, बल्कि ब्रह्माण्डीय व्यवस्था का प्रतीकात्मक रूप है। मंदिर और स्तूप मानव तथा परमसत्ता के मध्य संवाद स्थापित करने वाले आध्यात्मिक केन्द्र हैं।

3. चित्रकला : प्रतीक और आध्यात्मिक अभिव्यक्ति- भारतीय और श्रीलंका की चित्रकला में धार्मिक विषयों की प्रधानता मिलती है। अजंता की भित्तिचित्र परम्परा और श्रीलंका के सिगिरिया तथा दंबुला के चित्रों में रंगों की लय, रेखाओं की कोमलता तथा भावों की अभिव्यक्ति समान सांस्कृतिक चेतना को व्यक्त करती है। आनंद कुमारस्वामी के अनुसार भारतीय चित्रकला का उद्देश्य प्रकृति की प्रतिलिपि बनाना नहीं, बल्कि उसके आध्यात्मिक स्वरूप का उद्घाटन करना है। यही कारण है कि भारतीय और सिंहली चित्रों में कमल, चक्र, बोधिवृक्ष, धर्मचक्र तथा प्रभामण्डल जैसे प्रतीकों का विशेष महत्व है। उनके अनुसार कलाकार रंगों का उपयोग केवल दृश्य आकर्षण के लिए नहीं करता, बल्कि प्रत्येक रंग एक विशिष्ट आध्यात्मिक भाव का प्रतिनिधित्व करता है। इस प्रकार चित्रकला सौन्दर्य और अध्यात्म का समन्वित रूप बन जाती है।

4. रामायण परम्परा और सांस्कृतिक सेतु- भारत और श्रीलंका के सांस्कृतिक संबंधों में रामायण की परम्परा का विशेष स्थान है। भारतीय साहित्य में लंका का उल्लेख केवल युद्धभूमि के रूप में नहीं, बल्कि एक समृद्ध सभ्यता के रूप में भी मिलता है। श्रीलंका में आज भी रामायण से जुड़े अनेक स्थलों की स्थानीय परम्पराएँ विद्यमान हैं। यद्यपि आनंद कुमारस्वामी ने रामायण पर विशेष ग्रंथ नहीं लिखा, तथापि उनका सांस्कृतिक दृष्टिकोण यह स्पष्ट करता है कि महाकाव्य किसी राष्ट्र की सांस्कृतिक स्मृति का आधार होते हैं। रामायण ने भारत और श्रीलंका के मध्य धार्मिक, साहित्यिक तथा कलात्मक संवाद को निरन्तर बनाए रखा। रामायण के पात्रों, प्रसंगों और प्रतीकों का चित्रण दोनों देशों की मूर्तिकला, चित्रकला तथा लोकनाट्य में समान रूप से मिलता है। इससे यह सिद्ध होता है कि सांस्कृतिक आदान-प्रदान केवल राजनीतिक सम्पर्कों का परिणाम नहीं, बल्कि साझा सांस्कृतिक स्मृतियों का भी फल है।

5. शिल्प परम्परा और लोकसंस्कृति- आचार्य आनंद कुमारस्वामी ने पारम्परिक शिल्प को किसी समाज की आत्मा माना है। उनके अनुसार जब तक शिल्प और लोककला जीवित रहते हैं, तब तक संस्कृति भी जीवित रहती है। भारत और श्रीलंका दोनों देशों में धातुकला, काष्ठकला, वस्त्र-निर्माण, आभूषण, मिट्टी की कला तथा हस्तशिल्प की परम्पराएँ धार्मिक जीवन से जुड़ी रही हैं। कलाकार अपने कार्य को केवल आजीविका नहीं, बल्कि साधना मानता था। यही कारण है कि इन कलाओं में तकनीकी उत्कृष्टता के साथ आध्यात्मिक संवेदना भी दिखाई देती है। कुमारस्वामी आधुनिक औद्योगीकरण की आलोचना करते हुए कहते हैं कि मशीनें वस्तुएँ बना सकती हैं, किन्तु संस्कृति का निर्माण केवल संवेदनशील शिल्पकार ही कर सकता है। यह विचार आज भी भारत और श्रीलंका की पारम्परिक कला के संरक्षण के लिए अत्यन्त प्रासंगिक है।

समकालीन परिप्रेक्ष्य में आचार्य आनंद कुमारस्वामी की प्रासंगिकता- वैश्वीकरण, उपभोक्तावाद तथा तीव्र औद्योगीकरण के वर्तमान युग में पारम्परिक कला और संस्कृति अनेक चुनौतियों का सामना कर रही हैं। कला का उद्देश्य धीरे-धीरे आध्यात्मिक अभिव्यक्ति से हटकर व्यावसायिक लाभ तक सीमित होता जा रहा है। ऐसे समय में आचार्य आनंद कुमारस्वामी का सौन्दर्य-दर्शन अत्यन्त प्रासंगिक सिद्ध होता है। उन्होंने स्पष्ट किया कि यदि कला अपनी आध्यात्मिक और सांस्कृतिक जड़ों से कट जाती है, तो वह केवल मनोरंजन या बाज़ार की वस्तु बनकर रह जाती है। भारत और श्रीलंका दोनों देशों में आज भी अनेक पारम्परिक शिल्प, लोककलाएँ, बौद्ध विहार, मंदिर, चित्रकला एवं मूर्तिकला की परम्पराएँ जीवित हैं। किन्तु आधुनिक जीवनशैली तथा मशीन-आधारित उत्पादन के कारण इन कलाओं का अस्तित्व संकट में है। कुमारस्वामी का विचार था कि किसी भी राष्ट्र की वास्तविक प्रगति तभी संभव है जब वह अपनी सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण करते हुए आधुनिकता को स्वीकार करे। उनका यह दृष्टिकोण भारत और श्रीलंका की सांस्कृतिक नीतियों के लिए आज भी मार्गदर्शक है। भारत और श्रीलंका के बीच सांस्कृतिक सहयोग के अनेक कार्यक्रम—बौद्ध तीर्थ पर्यटन, रामायण सर्किट, शैक्षणिक आदान-प्रदान, पुरातात्त्विक संरक्षण, संग्रहालयों के मध्य सहयोग तथा सांस्कृतिक उत्सव—दोनों देशों की साझा विरासत को सुदृढ़ बना रहे हैं। यदि इन कार्यक्रमों को कुमारस्वामी के सांस्कृतिक दर्शन के आलोक में आगे बढ़ाया जाए, तो दक्षिण एशिया की सांस्कृतिक एकता को और अधिक सशक्त बनाया जा सकता है।

भारत-श्रीलंका संबंधों के सौन्दर्यशास्त्रीय आयाम- आचार्य आनंद कुमारस्वामी के विचारों के आलोक में भारत-श्रीलंका के सांस्कृतिक संबंधों का विश्लेषण करने पर निम्नलिखित प्रमुख सौन्दर्यशास्त्रीय आयाम उभरकर सामने आते हैं—

आध्यात्मिक एकता का सौन्दर्य - दोनों देशों की कला का मूल आधार आध्यात्मिक अनुभव है, न कि केवल दृश्य सौन्दर्य।

प्रतीकवाद की समान परम्परा - कमल, धर्मचक्र, बोधिवृक्ष, स्तूप, प्रभामण्डल तथा ध्यान-मुद्रा जैसे प्रतीक दोनों देशों की कला में समान रूप से विद्यमान हैं।

शिल्प और साधना का समन्वय - कलाकार को केवल कारीगर नहीं, बल्कि साधक माना गया है। यह दृष्टिकोण भारतीय तथा सिंहली दोनों परम्पराओं में समान रूप से मिलता है।

धर्म और कला का अभिन्न संबंध - दोनों देशों में कला धार्मिक जीवन से पृथक नहीं है, बल्कि उसी का दृश्य रूप है।

लोकजीवन और संस्कृति का समन्वय - उत्सव, नृत्य, संगीत, लोककथाएँ तथा हस्तशिल्प दोनों देशों की साझा सांस्कृतिक चेतना को अभिव्यक्त करते हैं।

परम्परा और आधुनिकता का संतुलन - कुमारस्वामी आधुनिकता का विरोध नहीं करते, बल्कि परम्परा के संरक्षण के साथ उसके समन्वय पर बल देते हैं। भारत और श्रीलंका के सांस्कृतिक संबंध हजारों वर्षों से विकसित उस संयुक्त सभ्यता के प्रमाण हैं, जिसने धर्म, दर्शन, कला और साहित्य को मानव जीवन के आध्यात्मिक विकास का माध्यम माना। इन संबंधों की गहराई केवल ऐतिहासिक घटनाओं या राजनीतिक संपर्कों तक सीमित नहीं है, बल्कि दोनों देशों की सांस्कृतिक चेतना में निहित है। आचार्य आनंद कुमारस्वामी ने अपने लेखन के माध्यम से यह सिद्ध किया कि भारतीय और सिंहली कला एक ही सांस्कृतिक एवं दार्शनिक परम्परा की अभिव्यक्तियाँ हैं। उन्होंने भारतीय सौन्दर्यशास्त्र को वैश्विक स्तर पर प्रतिष्ठित करते हुए यह स्पष्ट किया कि कला का उद्देश्य बाह्य आकर्षण नहीं, बल्कि आत्मा के उत्कर्ष का साधन है। आज जब वैश्विक संस्कृति तीव्र परिवर्तन के दौर से गुजर रही है, तब कुमारस्वामी के विचार भारत और श्रीलंका दोनों के लिए समान रूप से प्रेरणादायी हैं। उनकी दृष्टि हमें यह सिखाती है कि सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण केवल अतीत की स्मृति नहीं, बल्कि भविष्य के निर्माण का आधार भी है। अतः भारत-श्रीलंका के सांस्कृतिक संबंधों को समझने के लिए आनंद कुमारस्वामी का सौन्दर्य-दर्शन एक अत्यंत प्रामाणिक और समकालीन दृष्टिकोण प्रदान करता है।

संदर्भ सूची

1. कुमारस्वामी, आनंद के. (1998) एलीमेंट्स ऑफ बुद्धिस्ट आइकोनोग्राफी, मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली
2. कुमारस्वामी, आनंद के. (2004) द ट्रांसफॉर्मेशन ऑफ नेचर इन आर्ट, मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली
3. जगमोहन, (1979) आनंद कुमारस्वामी, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली
4. बामुलकर, सुभाष, डॉ. आनंद कुमारस्वामी : भारतीय तत्वज्ञान और संस्कृति, बीज प्रकाशन गृह, नागपुर
5. भार्गव, सरोज, (2017) अजंता में रूप सौंदर्य, रिसर्च इंडिया प्रेस राज पब्लिकेशन
6. मुकुंदीलाल, (1995) कलागुरु आनंद कुमारस्वामी, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली
7. शास्त्री, अजयमित्र, (1980) भारत के सांस्कृतिक केंद्ररू अजंता द मैकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया लिमिटेड, दिल्ली
8. सिंह, प्रियसेन, (1993) भारत के प्रमुख बौद्ध तीर्थ-स्थल, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली
9. Coomaraswamy, A. K. The Dance of Shiva- New Delhi: Munshiram Manoharlal-
10. Coomaraswamy, A. K. Medieval Sinhalese Art- Pantheon Books-
11. Coomaraswamy, A. K. The Transformation of Nature in Art- Harvard University Press-
12. Coomaraswamy, A. K. Christian and Oriental Philosophy of Art- Dover Publications-
13. Coomaraswamy, A. K. History of Indian and Indonesian Art- Dover Publications-
14. Ananda Coomaraswamy Centenary Volume- Ministry of Cultural Affairs, Sri Lanka-

असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत,
कला संकाय, डी.ई.आई,
दयालबाग, आगरा - 282005
मो- 9319108941

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

बौद्ध धर्म और सामाजिक मूल्य : करुणा, समता, अहिंसा एवं सामाजिक समरसता का समकालीन पुनर्पाठ

राघवेन्द्र सिंह

सारांश : भारतीय चिंतन-परंपरा में बौद्ध धर्म का उदय केवल एक नए धार्मिक संप्रदाय के रूप में नहीं, बल्कि मनुष्य के दुःख, उसके कारणों और उससे मुक्ति के प्रश्नों को सामाजिक एवं नैतिक धरातल पर देखने वाली व्यापक वैचारिक क्रांति के रूप में हुआ। गौतम बुद्ध ने मनुष्य की गरिमा को जन्म, वंश, सामाजिक प्रतिष्ठा और बाहरी कर्मकांड की अपेक्षा उसके आचरण, चेतना और नैतिक विवेक से जोड़ने का प्रयास किया। यही कारण है कि बौद्ध धर्म की मूल शिक्षाओं में व्यक्तिगत साधना के साथ-साथ सामाजिक व्यवहार के लिए भी स्पष्ट मूल्य-आधार दिखाई देता है। करुणा, मैत्री, अहिंसा, समता, सत्य, संयम, अपरिग्रह-सदृश अनासक्ति, सम्यक वाणी, सम्यक कर्म और सम्यक आजीविका इसके प्रमुख सामाजिक मूल्य हैं। बौद्ध चिंतन की विशेषता यह है कि वह सामाजिक विकृतियों को केवल बाहरी संस्थाओं की समस्या नहीं मानता। लोभ, द्वेष और मोह जैसे मानसिक संस्कारों को व्यक्ति तथा समाज दोनों में दुःख और संघर्ष की जड़ माना गया है। इसलिए सामाजिक परिवर्तन के लिए चेतना का परिवर्तन आवश्यक माना जाता है। बौद्ध नैतिकता पर आधुनिक विद्वत् विमर्श भी यह स्वीकार करता है कि नैतिक आचरण बौद्ध साधना का बाहरी परिशिष्ट नहीं, बल्कि मुक्ति-पथ का अभिन्न अंग है।

समकालीन विश्व में हिंसा, सामाजिक असमानता, धार्मिक और सांस्कृतिक तनाव, आर्थिक विषमता, पर्यावरणीय संकट, उपभोक्तावाद तथा सार्वजनिक संवाद में बढ़ती कटुता जैसी चुनौतियाँ सामाजिक मूल्यों के पुनर्विचार की माँग करती हैं। ऐसे समय में बौद्ध धर्म की करुणा और अहिंसा मनुष्य के प्रति संवेदनशीलता विकसित करने, समता सामाजिक भेदभाव को चुनौती देने, सम्यक वाणी सार्वजनिक संवाद को मर्यादित करने तथा सम्यक आजीविका आर्थिक गतिविधियों को नैतिक उत्तरदायित्व से जोड़ने का आधार प्रदान करती है।

प्रस्तुत शोधालेख का उद्देश्य बौद्ध धर्म के सामाजिक मूल्य-दर्शन का आलोचनात्मक अध्ययन करते हुए उसके प्रमुख मूल्यों को समकालीन सामाजिक संदर्भों से जोड़ना है। लेख यह प्रतिपादित करता है कि बौद्ध धर्म को केवल आध्यात्मिक मुक्ति की परंपरा के रूप में देखना उसके सामाजिक सरोकारों को सीमित करना होगा। इसके नैतिक सिद्धांत आधुनिक लोकतांत्रिक समाज में मानव गरिमा, सामाजिक न्याय, सह-अस्तित्व, शांति और पर्यावरणीय उत्तरदायित्व के साथ सार्थक संवाद स्थापित कर सकते हैं।

बीज-शब्द : बौद्ध धर्म, सामाजिक मूल्य, करुणा, मैत्री, अहिंसा, समता, सामाजिक न्याय, पंचशील, अष्टांगिक मार्ग, सामाजिक समरसता।

1. प्रस्तावना- किसी भी सभ्यता की वास्तविक पहचान केवल उसकी आर्थिक या राजनीतिक उपलब्धियों से नहीं होती, बल्कि इस बात से होती है कि वह मनुष्य और समाज के संबंधों को किन नैतिक मूल्यों के आधार पर व्यवस्थित करती है। भारतीय सभ्यता में यह प्रश्न अत्यंत प्राचीन है। वैदिक, उपनिषद्, श्रमण, जैन और बौद्ध परंपराओं ने अलग-अलग दृष्टियों से मनुष्य, समाज, दुःख, नैतिकता और मुक्ति पर विचार किया। इसी व्यापक श्रमण परंपरा में बौद्ध धर्म का उदय हुआ। गौतम

बुद्ध के चिंतन का केंद्रीय प्रश्न था—मनुष्य दुःखी क्यों है और इस दुःख से मुक्ति कैसे संभव है? पहली दृष्टि में यह प्रश्न व्यक्तिगत प्रतीत होता है, किंतु बौद्ध विश्लेषण में दुःख केवल निजी अनुभव नहीं रह जाता। लोभ, द्वेष, मोह, तृष्णा, अहंकार और अज्ञान व्यक्ति के भीतर ही नहीं रहते; वे सामाजिक संबंधों को भी प्रभावित करते हैं। इसलिए व्यक्ति की चेतना और सामाजिक व्यवस्था के बीच एक गहरा संबंध स्थापित होता है।

बौद्ध नैतिकता में आचरण का उद्देश्य केवल बाहरी नियमों का पालन नहीं है। नैतिक अनुशासन व्यक्ति की चेतना को ऐसी दिशा देता है जिसमें वह स्वयं भी दुःख से मुक्त होने की ओर बढ़ता है और दूसरों के लिए भी अहिंसक एवं कल्याणकारी व्यवहार करता है। आधुनिक दार्शनिक अध्ययनों में बौद्ध नैतिकता को इसी कारण चरित्र-निर्माण, करुणा और कल्याण से संबंधित परंपरा के रूप में समझा गया है। आज सामाजिक जीवन में तकनीकी प्रगति के साथ नैतिक चुनौतियाँ भी बढ़ी हैं। डिजिटल माध्यमों ने संवाद को तीव्र बनाया है, लेकिन साथ ही असत्य सूचना, घृणा और सामाजिक ध्रुवीकरण को भी बढ़ाने की क्षमता पैदा की है। आर्थिक विकास ने सुविधाएँ बढ़ाई हैं, पर आर्थिक विषमता भी अनेक समाजों में गंभीर प्रश्न बनी हुई है। पर्यावरणीय संकट मानव-केंद्रित विकास की सीमाओं को सामने ला रहा है।इन परिस्थितियों में बौद्ध धर्म का पुनर्पाठ उपयोगी हो सकता है, बशर्ते इसे न तो अतीत का आदर्शीकृत चित्र बनाकर प्रस्तुत किया जाए और न ही आधुनिक राजनीतिक सिद्धांत का प्रत्यक्ष विकल्प मान लिया जाए। इसकी उपयोगिता इस बात में है कि यह आधुनिक समाज को मनुष्य की चेतना, नैतिकता और सामाजिक उत्तरदायित्व के प्रश्नों पर पुनर्विचार करने की प्रेरणा देता है।

2. सामाजिक मूल्य : अवधारणा और बौद्ध परिप्रेक्ष्य : सामाजिक मूल्य वे मानदंड हैं जो समाज में व्यक्ति के व्यवहार, पारस्परिक संबंधों और सामूहिक जीवन की दिशा निर्धारित करते हैं। सत्य, न्याय, समानता, स्वतंत्रता, सहयोग, करुणा, अहिंसा, उत्तरदायित्व और सम्मान ऐसे मूल्य हैं जिनके बिना स्वस्थ सामाजिक जीवन की कल्पना कठिन है। बौद्ध धर्म में 'सामाजिक मूल्य' आधुनिक समाजशास्त्रीय शब्दावली में व्यवस्थित रूप से परिभाषित नहीं किए गए थे। फिर भी उसकी नैतिक शिक्षाओं में ऐसे अनेक सिद्धांत हैं जो सामाजिक जीवन को मूल्याधारित बनाते हैं। आधुनिक अध्ययनों में बौद्ध नैतिकता को राजनीतिक, सामाजिक, पर्यावरणीय और आर्थिक नैतिकता तक विस्तारित करके देखा गया है।बौद्ध दृष्टि से व्यक्ति और समाज को पूर्णतः अलग इकाइयों के रूप में नहीं देखा जा सकता। व्यक्ति जिस सामाजिक वातावरण में रहता है, वह उसकी चेतना को प्रभावित करता है; दूसरी ओर व्यक्तियों की सामूहिक चेतना सामाजिक वातावरण का निर्माण करती है। इस प्रकार सामाजिक परिवर्तन और आत्मपरिवर्तन परस्पर जुड़े हुए हैं। यह दृष्टि बौद्ध धर्म को केवल संन्यास और व्यक्तिगत मुक्ति का दर्शन मानने वाली धारणा को चुनौती देती है। आधुनिक शोध भी इस बात पर बल देता है कि बौद्ध नैतिक व्यवहार को केवल व्यक्तिगत या मठवासी क्षेत्र तक सीमित करना बौद्ध परंपराओं की विविधता को समझने में अपर्याप्त है।

3. करुणा : सामाजिक नैतिकता का आधार : बौद्ध धर्म में करुणा का अर्थ केवल किसी दुखी व्यक्ति के प्रति सहानुभूति रखना नहीं है। करुणा दूसरे के दुःख को समझकर उसे कम करने की सक्रिय नैतिक प्रेरणा है। यही कारण है कि बौद्ध नैतिकता में करुणा और मैत्री को केंद्रीय स्थान प्राप्त है। बौद्ध नैतिकता के आधुनिक दार्शनिक अध्ययन भी करुणा और सवअपदह-ापदकदमे को उसके मूल नैतिक आदर्शों में गिनते हैं। करुणा का सामाजिक महत्व तब स्पष्ट होता है जब समाज में किसी व्यक्ति या समूह की पीड़ा को केवल उसकी व्यक्तिगत समस्या न मानकर सामूहिक जिम्मेदारी के रूप में देखा जाता है। गरीबी, बीमारी, अशिक्षा, सामाजिक बहिष्कार, वृद्धावस्था और अन्य प्रकार की असुरक्षा के प्रति संवेदनशीलता करुणा की सामाजिक अभिव्यक्ति है।

4. मैत्री और सह-अस्तित्व : मैत्री बौद्ध नैतिकता का दूसरा प्रमुख सामाजिक मूल्य है। इसका आशय सभी प्राणियों के प्रति शुभेच्छा की भावना से है। मैत्री में किसी व्यक्ति के प्रति केवल निजी प्रेम नहीं, बल्कि उसके सुख और कल्याण की निष्पक्ष कामना निहित है। समाज में विभाजन अक्सर पहचान की राजनीति से उत्पन्न होते हैं। व्यक्ति अपने समूह को श्रेष्ठ और दूसरे समूह को विरोधी मानने लगता है। धर्म, जाति, भाषा, क्षेत्र और आर्थिक स्थिति के आधार पर बनने वाली दूरी इसी मानसिकता को बढ़ा सकती है। मैत्री इस प्रवृत्ति का नैतिक प्रतिरोध प्रस्तुत करती है। वह व्यक्ति को यह समझने की दिशा

में ले जाती है कि सामाजिक भिन्नता मानवीय गरिमा को कम नहीं करती। समकालीन बहुलतावादी समाज में मैत्री को 'समानता के साथ सह-अस्तित्व' के रूप में समझा जा सकता है। इसका अर्थ मतभेद समाप्त करना नहीं, बल्कि मतभेदों के बावजूद दूसरे के अस्तित्व और गरिमा को स्वीकार करना है।

5. अहिंसा : संघर्ष से संवाद की ओर : बौद्ध धर्म में हिंसा-विरोध का संबंध केवल शारीरिक हत्या से नहीं है। हिंसा की मानसिकता द्वेष, घृणा, प्रतिशोध और अमानवीकरण से भी निर्मित होती है। बौद्ध नैतिकता का पहला पंचशील प्राणियों की हत्या से विरत रहने पर आधारित है। इससे जीवन के प्रति सम्मान का मूल्य सामने आता है। लेकिन इसका व्यापक नैतिक आशय यह है कि दूसरे के दुःख को अपने हित की पूर्ति का साधन न बनाया जाए।समकालीन बौद्ध नैतिकता पर शोध में अहिंसा, युद्ध, हिंसा, दंड और सामाजिक न्याय जैसे प्रश्नों को स्वतंत्र नैतिक समस्याओं के रूप में संबोधित किया गया है।आज पारिवारिक विवाद से लेकर राजनीतिक संघर्ष तक अनेक स्तरों पर संवाद की आवश्यकता है। अहिंसा का बौद्ध आदर्श इस बात की प्रेरणा देता है कि विरोधी व्यक्ति को नष्ट करने के बजाय उसके साथ संवाद स्थापित किया जाए। अहिंसा का यह अर्थ नहीं कि अन्याय के सामने निष्क्रिय रहा जाए। इसके बजाय अन्याय का विरोध ऐसे तरीके से किया जाए जिससे संघर्ष स्वयं नई हिंसा का कारण न बन जाए। आधुनिक सामाजिक सक्रियता में 'म्दहंहमक ठनककीपेउ' इसी प्रश्न पर विचार करती है कि बौद्ध मूल्यों को वास्तविक सामाजिक पीड़ा के समाधान से कैसे जोड़ा जाए।

6. समता और सामाजिक न्याय : बौद्ध धर्म का सामाजिक दर्शन जन्माधारित श्रेष्ठता के प्रश्न को गंभीर चुनौती देता है। बौद्ध नैतिक दृष्टि में मनुष्य की वास्तविक पहचान उसके कर्म और नैतिक विकास से संबंधित है। यहाँ समता का अर्थ सभी व्यक्तियों की सामाजिक परिस्थितियों को एक जैसा मान लेना नहीं है। इसका मूल अर्थ यह है कि प्रत्येक संवेदनशील प्राणी के दुःख और कल्याण को नैतिक महत्व प्राप्त है। पीटर हार्वे के अध्ययन में बौद्ध सामाजिक दर्शन को सभी संवेदनशील प्राणियों की मूलभूत समानता तथा मुक्ति की संभावना से जोड़ा गया है। बौद्ध संघ की संरचना इस संदर्भ में ऐतिहासिक रूप से महत्वपूर्ण है। विभिन्न पृष्ठभूमियों के व्यक्तियों के लिए एक वैकल्पिक नैतिक समुदाय की स्थापना सामाजिक संबंधों के पुनर्गठन की संभावना प्रस्तुत करती थी। फिर भी आधुनिक समानता की अवधारणा को सीधे प्राचीन बौद्ध समाज पर आरोपित करना उचित नहीं होगा। प्राचीन और मध्यकालीन बौद्ध समाज आधुनिक लोकतांत्रिक समाज नहीं थे। इसलिए बौद्ध धर्म में समता की चर्चा उसके नैतिक आदर्श और उसके ऐतिहासिक सामाजिक व्यवहार दोनों को ध्यान में रखकर करनी चाहिए।

7. पंचशील : नैतिक नागरिकता का प्रारंभिक आधार- पंचशील बौद्ध गृहस्थ जीवन के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण नैतिक अनुशासन है। इसके पाँच प्रमुख आयाम हैं—

प्राणियों की हत्या से बचना, अदत्त वस्तु ग्रहण न करना,कामाचार के दुरुपयोग से बचना, असत्य भाषण से बचना, प्रमाद उत्पन्न करने वाले मादक पदार्थों से दूर रहना। इन सिद्धांतों को केवल धार्मिक व्रत मानना इनके सामाजिक महत्व को सीमित कर देता है। वास्तव में ये पारस्परिक विश्वास और सामाजिक सुरक्षा की बुनियादी शर्तों से जुड़े हैं। यदि समाज में व्यक्ति दूसरे की संपत्ति का सम्मान करे, जानबूझकर असत्य न बोले और हिंसा से बचे तो सामाजिक विश्वास मजबूत होता है। इसलिए पंचशील को आधुनिक अर्थ में 'नैतिक नागरिकता' के एक प्रारंभिक ढाँचे के रूप में पढ़ा जा सकता है।

8. अष्टांगिक मार्ग और सामाजिक व्यवहार- अष्टांगिक मार्ग बौद्ध धर्म में नैतिकता को जीवन की व्यावहारिक प्रक्रिया से जोड़ता है। इसके आठ अंगों में सम्यक दृष्टि, संकल्प, वाणी, कर्म, आजीविका, प्रयास, स्मृति और समाधि शामिल हैं। इनमें सम्यक वाणी, सम्यक कर्म और सम्यक आजीविका सीधे सामाजिक संबंधों से जुड़े हैं।

8.1 सम्यक वाणी- वाणी सामाजिक संबंधों को जोड़ भी सकती है और तोड़ भी सकती है। असत्य, चुगली, अपमान और विभाजनकारी भाषा सामाजिक तनाव बढ़ाती है। इसके विपरीत सत्य, संयमित और हितकारी संवाद विश्वास उत्पन्न करता है। आज सोशल मीडिया के युग में यह मूल्य और अधिक महत्वपूर्ण हो गया है। सूचना साझा करने की गति बढ़ गई है, लेकिन सत्यापन की आदत उसी गति से विकसित नहीं हुई। इसलिए सम्यक वाणी का आधुनिक रूप 'जिम्मेदार डिजिटल संवाद' हो सकता है।

8.2 सम्यक कर्म- सम्यक कर्म व्यक्ति के व्यवहार को हिंसा, चोरी और अनैतिक आचरण से नियंत्रित करता है। यह सामाजिक विश्वास की नींव है।

8.3 सम्यक आजीविका- सम्यक आजीविका आर्थिक गतिविधि को नैतिक उत्तरदायित्व से जोड़ती है। इसका आधुनिक अर्थ यह हो सकता है कि आर्थिक लाभ प्राप्त करते समय समाज, श्रमिकों, उपभोक्ताओं और पर्यावरण को होने वाली हानि को भी ध्यान में रखा जाए।

9. बौद्ध धर्म और आर्थिक नैतिकता- आर्थिक जीवन में लोभ की भूमिका को बौद्ध धर्म ने गंभीरता से देखा है। इसका अर्थ यह नहीं कि बौद्ध धर्म आर्थिक समृद्धि का विरोध करता है। समस्या तब उत्पन्न होती है जब आर्थिक साधन जीवन का अंतिम उद्देश्य बन जाते हैं। समकालीन उपभोक्तावादी संस्कृति में व्यक्ति की सफलता को वस्तुओं की संख्या और उपभोग की क्षमता से मापने की प्रवृत्ति दिखाई देती है। इसका परिणाम मानसिक असंतोष और संसाधनों पर बढ़ता दबाव हो सकता है। बौद्ध संयम का मूल्य इस स्थिति में महत्वपूर्ण हो सकता है। संयम का अर्थ गरीबी को आदर्श बनाना नहीं, बल्कि आवश्यकता और अनियंत्रित लालसा के बीच अंतर करना है। बौद्ध आर्थिक नैतिकता का आधुनिक पुनर्पाठ ऐसी अर्थव्यवस्था की कल्पना की ओर संकेत कर सकता है जिसमें उत्पादन और उपभोग दोनों मानवीय कल्याण से जुड़े हों।

10. पर्यावरणीय चेतना- पर्यावरणीय संकट आधुनिक सभ्यता की सबसे गंभीर चुनौतियों में से एक है। जलवायु परिवर्तन, प्रदूषण, जैव विविधता में कमी और प्राकृतिक संसाधनों का अति-दोहन मानव जीवन के लिए खतरा पैदा कर रहे हैं। बौद्ध चिंतन में परस्पर निर्भरता की अवधारणा पर्यावरणीय नैतिकता के लिए महत्वपूर्ण आधार बन सकती है। मनुष्य स्वयं को प्रकृति से पूर्णतः अलग सत्ता मानकर प्रकृति का असीमित दोहन नहीं कर सकता।

आधुनिक बौद्ध पर्यावरणीय नैतिकता पर शोध में अहिंसा, करुणा, सजगता और कुशल उपायों जैसी बौद्ध अवधारणाओं को पर्यावरणीय उत्तरदायित्व के साथ जोड़ा गया है।

यहाँ बौद्ध दृष्टि का एक महत्वपूर्ण योगदान यह हो सकता है कि पर्यावरण-सुरक्षा को केवल तकनीकी या कानूनी प्रश्न न मानकर नैतिक प्रश्न भी समझा जाए।

11. बौद्ध धर्म और मानव गरिमा- मानव गरिमा आधुनिक लोकतांत्रिक और मानवाधिकार विमर्श का मूल तत्व है। यद्यपि 'मानवाधिकार' की आधुनिक अवधारणा बौद्ध काल की अवधारणा नहीं है, लेकिन बौद्ध नैतिकता में ऐसे अनेक सिद्धांत हैं जिनसे गरिमा-आधारित समाज की कल्पना की जा सकती है। दूसरे व्यक्ति को पीड़ा न पहुँचाना, उसकी स्वतंत्रता और जीवन का सम्मान करना तथा उसके दुःख के प्रति संवेदनशील होना मानव गरिमा के नैतिक आधार हैं। बौद्ध सामाजिक दर्शन पर आधुनिक शोध में मानवाधिकार को बौद्ध नैतिकता के प्रमुख समकालीन विषयों में शामिल किया गया है। इसका अर्थ यह नहीं कि बौद्ध धर्म आधुनिक मानवाधिकारों का प्रत्यक्ष ऐतिहासिक स्रोत है। बल्कि यह कहना अधिक उचित है कि दोनों के बीच कुछ महत्वपूर्ण नैतिक संवाद संभव हैं।

12. बौद्ध धर्म और लोकतांत्रिक संस्कृति- बौद्ध धर्म को आधुनिक लोकतंत्र का सिद्धांत कहना ऐतिहासिक रूप से उचित नहीं होगा। फिर भी उसकी कुछ नैतिक अवधारणाएँ लोकतांत्रिक संस्कृति के साथ सार्थक संबंध स्थापित करती हैं। लोकतंत्र केवल चुनाव की व्यवस्था नहीं है। उसके लिए संवाद, असहमति का सम्मान, सार्वजनिक उत्तरदायित्व और सत्ता पर नैतिक नियंत्रण भी आवश्यक हैं। बौद्ध सामाजिक विचार में अच्छे शासन, नैतिक नेतृत्व और समाज के कल्याण का प्रश्न महत्वपूर्ण है। हार्वे के अध्ययन में बौद्ध 'न्यायपूर्ण समाज' की चर्चा के अंतर्गत शासन, गरीबी, दंड, लोकतंत्र, कल्याण और सम्यक वाणी जैसे विषयों का विश्लेषण किया गया है। इस दृष्टि से बौद्ध धर्म लोकतांत्रिक संस्थाओं का विकल्प नहीं, बल्कि उनके लिए नैतिक संवेदना का स्रोत बन सकता है।

निष्कर्ष- बौद्ध धर्म भारतीय चिंतन की ऐसी महत्वपूर्ण परंपरा है जिसमें व्यक्ति की आंतरिक चेतना और सामाजिक जीवन के बीच गहरा संबंध स्थापित होता है। बुद्ध ने मनुष्य के दुःख को समझने के लिए जिस दृष्टि का विकास किया, उसमें दुःख के मनोवैज्ञानिक कारणों के साथ-साथ उन आचरणों की भी पहचान की गई जो व्यक्ति और समाज दोनों को प्रभावित

करते हैं। करुणा बौद्ध सामाजिक दर्शन की संवेदनात्मक शक्ति है। मैत्री सामाजिक संबंधों को सकारात्मक आधार देती है। अहिंसा संघर्ष को विनाश के स्थान पर संवाद की ओर ले जाने की संभावना प्रस्तुत करती है। समता मनुष्य की गरिमा को जन्माधारित विभाजन से ऊपर उठाती है। पंचशील व्यक्तिगत अनुशासन के माध्यम से सामाजिक विश्वास को मजबूत करता है। सम्यक वाणी संवाद को नैतिक बनाती है और सम्यक आजीविका आर्थिक जीवन को उत्तरदायित्व से जोड़ती है। आधुनिक बौद्ध नैतिकता का अकादमिक क्षेत्र अब मानवाधिकार, सामाजिक न्याय, आर्थिक नैतिकता, पर्यावरण, युद्ध, हिंसा और स्त्री-अधिकार जैसे व्यापक प्रश्नों तक विस्तृत हो चुका है। फिर भी बौद्ध धर्म को आधुनिक लोकतंत्र, मानवाधिकार या सामाजिक न्याय का प्रत्यक्ष विकल्प मानना ऐतिहासिक रूप से उचित नहीं होगा। उसकी प्रासंगिकता अधिक सूक्ष्म है। वह आधुनिक संस्थाओं को नैतिक संवेदना प्रदान कर सकता है और व्यक्ति को यह प्रश्न पूछने के लिए प्रेरित कर सकता है कि उसके कार्यों का प्रभाव दूसरे मनुष्यों और व्यापक जीव-जगत पर क्या पड़ता है। आज जब समाज में संवाद की जगह ध्रुवीकरण, आवश्यकता की जगह असीमित उपभोग और सह-अस्तित्व की जगह प्रतिस्पर्धात्मक असुरक्षा बढ़ रही है, तब बौद्ध धर्म का सामाजिक मूल्य-दर्शन पुनर्विचार योग्य है।

अंततः बौद्ध धर्म की समकालीन प्रासंगिकता इस बात में निहित है कि वह सामाजिक परिवर्तन को केवल कानून, सत्ता अथवा आर्थिक व्यवस्था का प्रश्न नहीं मानता। वह मनुष्य की चेतना को भी परिवर्तन का आवश्यक क्षेत्र मानता है। यदि व्यक्ति के भीतर करुणा, मैत्री, संयम और प्रज्ञा विकसित होती है, तो सामाजिक संबंधों में भी परिवर्तन की संभावना बढ़ती है। इस अर्थ में बौद्ध धर्म का सामाजिक दर्शन व्यक्ति से समाज और समाज से मानवता तक जाने वाली नैतिक यात्रा प्रस्तुत करता है। आज की बहुलतावादी, लोकतांत्रिक और वैश्विक दुनिया में यह यात्रा सामाजिक समरसता, शांति, न्याय और मानवीय गरिमा की दिशा में महत्वपूर्ण वैचारिक योगदान दे सकती है।

संदर्भ सूची

1. Bodhi, Bhikkhu. (Trans.). (2000). The Connected Discourses of the Buddha: A Translation of the Sanyutta Nikaya. Boston: Wisdom Publications.
2. Bodhi, Bhikkhu. (Trans.). (2012). The Numerical Discourses of the Buddha: A Complete Translation of the Anguttara Nikaya. Boston: Wisdom Publications.
3. Gethin, Rupert. (1998). The Foundations of Buddhism. Oxford: Oxford University Press.
4. Gombrich, Richard. (2009). What the Buddha Thought. London: Equinox.
5. Harvey, Peter. (2000). An Introduction to Buddhist Ethics: Foundations, Values and Issues. Cambridge: Cambridge University Press.
6. Harvey, Peter. (2013). An Introduction to Buddhism: Teachings, History and Practices. Cambridge: Cambridge University Press.
7. Kalupahana, David J. (1975). Causality: The Central Philosophy of Buddhism. Honolulu: University Press of Hawaii.
8. Kalupahana, David J. (1995). Ethics in Early Buddhism. Honolulu: University of Hawai'i Press.
9. Keown, Damien. (1992). The Nature of Buddhist Ethics. London: Macmillan.
10. Keown, Damien. (2020). Buddhist Ethics: A Very Short Introduction. 2nd ed. Oxford: Oxford University Press.
11. Kaza, Stephanie. (2018). ßBuddhist Environmental Ethics: An Emergent and Contextual Approach.ß In Daniel Cozort & James Mark Shields (Eds.), The Oxford Handbook of Buddhist Ethics. Oxford: Oxford University Press, pp. 432-451.
12. King, Sallie B. (2005). Being Benevolence: The Social Ethics of Engaged Buddhism. Honolulu: University

of Hawai'i Press.
13. Queen, Christopher S., & King, Sallie B. (Eds.). (1996). Engaged Buddhism: Buddhist Liberation Movements in Asia. Albany: State University of New York Press.
14. Rahula, Walpola. (1974). What the Buddha Taught. London: Gordon Fraser.
15. Walshe, Maurice. (Trans.). (1995). The Long Discourses of the Buddha: A Translation of the Dagha Nikaya. Boston: Wisdom Publications.
16. Cozort, Daniel, & Shields, James Mark. (Eds.). (2018). The Oxford Handbook of Buddhist Ethics. Oxford: Oxford University Press.
17. Harvey, Peter. (2018). ßThe Buddhist Just Society.ß In Daniel Cozort & James Mark Shields (Eds.), The Oxford Handbook of Buddhist Ethics, pp. 385-406. Oxford: Oxford University Press.
18. Queen, Christopher S. (2018). 'The Ethics of Engaged Buddhism in the West.' In Daniel Cozort & James Mark Shields (Eds.), The Oxford Handbook of Buddhist Ethics, pp. 501-527. Oxford: Oxford University Press.
19. Kaza, Stephanie. (2018). 'Buddhist Environmental Ethics: An Emergent and Contextual Approach.' In The Oxford Handbook of Buddhist Ethics. Oxford: Oxford University Press.
20. "Ethics in Indian Buddhism." Stanford Encyclopedia of Philosophy. Revised 2024.

Assistant Professor, Hindi
B V M PG College Bah Agra 283104
9451958219

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

भारत-श्रीलंका सामाजिक-सांस्कृतिक संबंधों में चीन की बढ़ती भूमिकाः एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

सोनी कुमारी

सारांश- भारत और श्रीलंका के मध्य संबंध केवल दो पड़ोसी देशों के पारंपरिक कूटनीतिक संबंधों तक सीमित नहीं हैं, बल्कि इनके पीछे एक दीर्घकालीन सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक विरासत विद्यमान है। बौद्ध धर्म, धार्मिक यात्राएँ, साहित्य, शिक्षा, कला, परंपराएँ तथा जन-से-जन संपर्क दोनों देशों के संबंधों के महत्वपूर्ण आधार रहे हैं। विशेष रूप से सम्राट अशोक के काल में बौद्ध धर्म के श्रीलंका पहुँचने के बाद भारत और श्रीलंका के बीच विकसित धार्मिक एवं सांस्कृतिक संबंधों ने दोनों समाजों को एक विशिष्ट ऐतिहासिक निकटता प्रदान की। वर्तमान समय में श्रीलंका के साथ चीन की बढ़ती आर्थिक एवं सामरिक भागीदारी ने इस पारंपरिक सामाजिक-सांस्कृतिक समीकरण को एक नया आयाम प्रदान किया है। चीन की भूमिका प्रारंभ में मुख्यतः आर्थिक सहयोग, ऋण, व्यापार तथा आधारभूत संरचना परियोजनाओं से जुड़ी दिखाई देती थी, किंतु हाल के वर्षों में उसका प्रभाव शिक्षा, पर्यटन, बौद्ध कूटनीति, चीनी भाषा, सांस्कृतिक विरासत, मीडिया तथा जन-से-जन संपर्क तक विस्तृत हुआ है। वर्ष 2025 में चीन और श्रीलंका के मध्य हुए संयुक्त वक्तव्य में शिक्षा, छात्र एवं शोधकर्ता आदान-प्रदान, चीनी भाषा, पर्यटन, युवा, मीडिया, बौद्ध आदान-प्रदान तथा सांस्कृतिक विरासत सहयोग को विशेष महत्व दिया गया।

यह शोध-पत्र भारत-श्रीलंका सामाजिक एवं सांस्कृतिक संबंधों में चीन की बढ़ती भूमिका का आलोचनात्मक अध्ययन करता है। इसका मुख्य तर्क है कि चीन की श्रीलंका में बढ़ती उपस्थिति को केवल आर्थिक विस्तार के रूप में देखना पर्याप्त नहीं है। सांस्कृतिक कूटनीति और सॉफ्ट पावर के माध्यम से चीन श्रीलंका में दीर्घकालीन सामाजिक स्वीकार्यता एवं सकारात्मक छवि निर्मित करने का प्रयास कर रहा है। हालांकि, भारत की स्थिति चीन से भिन्न है क्योंकि भारत के पास श्रीलंका के साथ ऐतिहासिक, भौगोलिक तथा सभ्यतागत निकटता की विशिष्ट पूँजी है। अतः श्रीलंका में भारत और चीन की भूमिका को केवल प्रतिस्पर्धा के रूप में देखना उचित नहीं होगा; बल्कि यह श्रीलंका की अपनी राष्ट्रीय आवश्यकताओं, रणनीतिक स्वायत्तता और संतुलनकारी विदेश नीति से भी जुड़ा हुआ है।

मुख्य शब्दः भारत, श्रीलंका, चीन, सामाजिक संबंध, सांस्कृतिक संबंध, बौद्ध कूटनीति, सॉफ्ट पावर, सांस्कृतिक कूटनीति, BRI, जन-से-जन संपर्क।

1. प्रस्तावना- भारत और श्रीलंका के संबंधों में बौद्ध धर्म का विशेष महत्व है। भारतीय विदेश मंत्रालय के अनुसार, सम्राट अशोक द्वारा महिंद तथा संघमित्रा को श्रीलंका भेजे जाने की परंपरा दोनों देशों के साझा बौद्ध विरासत की आधारभूत कड़ी मानी जाती है। इस धार्मिक संपर्क ने आगे चलकर शिक्षा, दर्शन, साहित्य, कला तथा तीर्थ परंपराओं के विकास को प्रभावित किया।

समकालीन समय में भारत-श्रीलंका संबंधों की प्रकृति और अधिक व्यापक हो गई है। बौद्ध तीर्थयात्रा, सांस्कृतिक कार्यक्रम, छात्रवृत्तियाँ, विश्वविद्यालयीय सहयोग, विरासत संरक्षण तथा धार्मिक आदान-प्रदान इसके महत्वपूर्ण घटक हैं। भारत

ने वर्ष 2020 में दोनों देशों के बौद्ध संबंधों के संरक्षण एवं संवर्धन के लिए 15 मिलियन अमेरिकी डॉलर की अनुदान सहायता की घोषणा की थी। इस सहायता का उपयोग बौद्ध मठों, बौद्ध शिक्षा, विद्वानों एवं धार्मिक नेताओं के बीच संपर्क, विरासत संग्रहालय तथा पुरातात्विक सहयोग जैसे क्षेत्रों में किया जा सकता है। परंतु पिछले दो दशकों में श्रीलंका में चीन की उपस्थिति तेजी से बढ़ी है। चीन का प्रभाव पहले आर्थिक तथा आधारभूत संरचना परियोजनाओं के संदर्भ में अधिक चर्चा में रहा, किंतु अब उसकी गतिविधियाँ सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों तक भी पहुँच चुकी हैं। शिक्षा, चीनी भाषा, पर्यटन, बौद्ध आदान-प्रदान, सांस्कृतिक विरासत और मीडिया सहयोग इसके प्रमुख उदाहरण हैं।

यहीं से इस अध्ययन का केंद्रीय प्रश्न उत्पन्न होता है— क्या श्रीलंका में चीन की बढ़ती सांस्कृतिक भूमिका भारत की पारंपरिक सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थिति को चुनौती दे रही है? इस प्रश्न का उत्तर सरल रूप से 'हाँ' या 'नहीं' में देना उचित नहीं होगा। चीन की सांस्कृतिक उपस्थिति निश्चित रूप से बढ़ी है, लेकिन भारत की सांस्कृतिक स्थिति का आधार केवल वर्तमान कूटनीतिक गतिविधियाँ नहीं, बल्कि सदियों पुराना सभ्यतागत संबंध है। साथ ही श्रीलंका स्वयं भी भारत और चीन के बीच अपने हितों के अनुसार संबंधों को संतुलित करने की क्षमता रखता है।

2. अध्ययन के उद्देश्य

इस अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

1. भारत और श्रीलंका के सामाजिक एवं सांस्कृतिक संबंधों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का अध्ययन करना।
2. भारत की बौद्ध एवं सांस्कृतिक कूटनीति का विश्लेषण करना।
3. श्रीलंका में चीन की बढ़ती सांस्कृतिक भूमिका के प्रमुख आयामों का अध्ययन करना।
4. बौद्ध धर्म, शिक्षा, पर्यटन एवं भाषा के माध्यम से चीन की बढ़ती भूमिका का विश्लेषण करना।
5. भारत और चीन की सांस्कृतिक कूटनीति के बीच अंतर को समझना।
6. श्रीलंका की रणनीतिक स्वायत्तता एवं संतुलनकारी भूमिका का आलोचनात्मक अध्ययन करना।

3. शोध-पद्धति

प्रस्तुत अध्ययन मुख्यतः गुणात्मक एवं विश्लेषणात्मक शोध पद्धति पर आधारित है। इसमें द्वितीयक स्रोतों का प्रयोग किया गया है। अध्ययन के लिए भारत एवं चीन के विदेश मंत्रालयों के आधिकारिक दस्तावेजों, भारत-श्रीलंका द्विपक्षीय संबंधों से संबंधित आधिकारिक रिपोर्टों तथा सांस्कृतिक कूटनीति एवं बौद्ध कूटनीति पर प्रकाशित शोध-अध्ययनों का उपयोग किया गया है।

अध्ययन में सॉफ्ट पावर, सांस्कृतिक कूटनीति और रणनीतिक आख्यान (Strategic Narratives) की अवधारणाओं को विश्लेषणात्मक आधार बनाया गया है।

4. भारत-श्रीलंका सामाजिक एवं सांस्कृतिक संबंधों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारत और श्रीलंका के सामाजिक एवं सांस्कृतिक संबंधों की जड़ें प्राचीन काल में दिखाई देती हैं। दोनों देशों के बीच समुद्री संपर्क ने व्यापार के साथ-साथ धार्मिक एवं सांस्कृतिक विचारों के आदान-प्रदान को भी संभव बनाया।

4.1 बौद्ध धर्म : संबंधों की प्रमुख कड़ी- भारत-श्रीलंका संबंधों में बौद्ध धर्म को सबसे महत्वपूर्ण सांस्कृतिक सेतु माना जा सकता है। भारतीय बौद्ध परंपरा का श्रीलंका में प्रसार महिंद और संघमित्रा से जुड़ा हुआ है। इसके बाद श्रीलंका बौद्ध अध्ययन एवं थेरवाद परंपरा का एक महत्वपूर्ण केंद्र बन गया।

इस ऐतिहासिक प्रक्रिया ने दोनों देशों के बीच धार्मिक यात्राओं एवं विद्वत आदान-प्रदान की परंपरा को जन्म दिया। आज भी बोधगया, सारनाथ, कुशीनगर तथा अन्य बौद्ध स्थलों के प्रति श्रीलंकाई बौद्ध समाज में विशेष श्रद्धा है। भारत सरकार ने भी इस ऐतिहासिक संबंध को आधुनिक कूटनीति के माध्यम से मजबूत करने का प्रयास किया है। भारत और श्रीलंका के बीच बौद्ध अवशेषों का आदान-प्रदान, बौद्ध तीर्थयात्रा, सांस्कृतिक संस्थानों की स्थापना तथा धार्मिक विद्वानों के संपर्क इसी दिशा में किए गए प्रयास हैं।

4.2 शिक्षा एवं सांस्कृतिक आदान-प्रदान- भारत और श्रीलंका के बीच शिक्षा का क्षेत्र भी महत्वपूर्ण है। भारतीय संस्थानों में श्रीलंकाई विद्यार्थियों को अवसर प्रदान किए जाते हैं तथा श्रीलंका में भारतीय सांस्कृतिक एवं शैक्षिक गतिविधियों का विस्तार हुआ है। भारतीय विदेश मंत्रालय के अनुसार, श्रीलंका में लगभग 30 विश्वविद्यालयों, विद्यालयों तथा पिरिवेना संस्थानों में विभिन्न अकादमिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियाँ संचालित की गई हैं तथा भारतीय पक्ष द्वारा श्रीलंकाई विद्यार्थियों के लिए छात्रवृत्ति के अवसर भी उपलब्ध कराए जाते हैं। इस प्रकार भारत की सांस्कृतिक कूटनीति केवल अतीत की स्मृतियों तक सीमित नहीं है, बल्कि शिक्षा और संस्थागत संपर्कों के माध्यम से वर्तमान पीढ़ी के साथ भी संबंध विकसित करने का प्रयास करती है।

5. श्रीलंका में चीन की बढ़ती भूमिका- श्रीलंका और चीन के संबंधों का इतिहास आधुनिक काल से काफी पहले का है। दोनों समाजों के मध्य प्राचीन बौद्ध संपर्कों के प्रमाण मिलते हैं। हालांकि, समकालीन दौर में चीन की भूमिका मुख्यतः आर्थिक सहयोग और आधारभूत संरचना के क्षेत्र में तेजी से बढ़ी। विशेष रूप से Belt and Road Initiative (BRI) के बाद चीन की आर्थिक एवं राजनीतिक उपस्थिति अधिक स्पष्ट हुई। हम्बनटोटा बंदरगाह और कोलंबो पोर्ट सिटी जैसी परियोजनाओं ने चीन को श्रीलंका के आर्थिक एवं रणनीतिक परिदृश्य में महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया। लेकिन वर्तमान स्थिति की विशेषता यह है कि चीन का प्रभाव अब केवल बंदरगाहों और आधारभूत संरचना तक सीमित नहीं है। शिक्षा, भाषा, पर्यटन, बौद्ध धर्म और सांस्कृतिक विरासत भी चीन-श्रीलंका सहयोग का हिस्सा बन चुके हैं।

6. चीन की सांस्कृतिक कूटनीति के प्रमुख आयाम

6.1 बौद्ध कूटनीति- चीन की बढ़ती सांस्कृतिक भूमिका को समझने के लिए बौद्ध कूटनीति का अध्ययन अत्यंत आवश्यक है। श्रीलंका में बौद्ध धर्म सामाजिक और सांस्कृतिक पहचान का एक महत्वपूर्ण आधार है। इसलिए बौद्ध संस्थाओं, भिक्षुओं और धार्मिक विद्वानों के साथ संपर्क स्थापित करना चीन के लिए सामाजिक स्वीकार्यता बढ़ाने का एक माध्यम बन सकता है।

चीन द्वारा श्रीलंकाई बौद्ध संस्थाओं और धार्मिक नेताओं के साथ संपर्क, बौद्ध सम्मेलनों तथा धार्मिक आदान-प्रदान को बढ़ावा दिया गया है। शोधकर्ता Tabita Rosendal के अध्ययन के अनुसार, ठत्प् के बाद श्रीलंका में चीन की बौद्ध कूटनीति अधिक सक्रिय हुई और दोनों पक्षों ने साझा बौद्ध इतिहास एवं धार्मिक आदान-प्रदान को द्विपक्षीय संबंधों को मजबूत करने के लिए इस्तेमाल किया।

यहाँ एक महत्वपूर्ण आलोचनात्मक प्रश्न उठता है कि चीन द्वारा बौद्ध धर्म को बढ़ावा देना केवल धार्मिक-सांस्कृतिक सहयोग है अथवा इसका कोई व्यापक कूटनीतिक उद्देश्य भी है।

कुछ अध्ययनों का निष्कर्ष है कि चीन की बौद्ध कूटनीति को उसके व्यापक सॉफ्ट पावर प्रयासों से अलग करके नहीं देखा जा सकता। बौद्ध धार्मिक संबंधों के साथ आर्थिक एवं राजनीतिक सहयोग का जुड़ना चीन की व्यापक रणनीति का हिस्सा माना जा सकता है।

फिर भी इसे केवल 'प्रचार' मानना भी उचित नहीं होगा, क्योंकि श्रीलंका स्वयं इन संपर्कों को अपने धार्मिक एवं आर्थिक हितों के अनुसार स्वीकार करता है।

6.2 शिक्षा और चीनी भाषा- चीन ने शिक्षा को अपनी सांस्कृतिक कूटनीति का महत्वपूर्ण माध्यम बनाया है। श्रीलंका में चीनी भाषा के अध्ययन तथा विश्वविद्यालयीय सहयोग को बढ़ावा दिया जा रहा है।

2025 के चीन-श्रीलंका संयुक्त वक्तव्य में दोनों देशों ने शिक्षक, विद्यार्थी और शोधकर्ता आदान-प्रदान बढ़ाने, चीनी भाषा शिक्षा को प्रोत्साहित करने तथा छात्रवृत्तियों और व्यावसायिक प्रशिक्षण के अवसरों को बढ़ाने पर सहमति व्यक्त की।

यह पहल दीर्घकाल में महत्वपूर्ण हो सकती है क्योंकि भाषा केवल संचार का माध्यम नहीं होती; वह किसी समाज के इतिहास, संस्कृति और विचारों को समझने का माध्यम भी बनती है।

इस प्रकार चीनी भाषा के विस्तार को चीन की दीर्घकालीन सांस्कृतिक उपस्थिति के एक साधन के रूप में देखा जा

सकता है।

6.3 पर्यटन एवं जन-से-जन संपर्क- पर्यटन भारत और चीन दोनों के लिए सांस्कृतिक कूटनीति का महत्वपूर्ण माध्यम है। श्रीलंका अपने धार्मिक एवं प्राकृतिक पर्यटन के कारण अंतरराष्ट्रीय स्तर पर महत्वपूर्ण है। चीन ने श्रीलंका के साथ पर्यटन संपर्क बढ़ाने और दोनों देशों के बीच अधिक पर्यटक आवागमन को प्रोत्साहित करने पर बल दिया है। 2025 के संयुक्त वक्तव्य में चीन और श्रीलंका ने पारस्परिक पर्यटन, विमानन संपर्क तथा पर्यटन प्रचार गतिविधियों को बढ़ाने पर सहमति व्यक्त की। इसी वक्तव्य में युवा, थिंक टैंक, खेल, मीडिया, बौद्ध आदान-प्रदान तथा sister-city संबंधों को भी जन-से-जन संपर्क मजबूत करने के साधन के रूप में स्वीकार किया गया। यह दिखाता है कि चीन की कूटनीति अब केवल सरकार-से-सरकार संबंधों पर निर्भर नहीं है। वह समाज के विभिन्न वर्गों के साथ संपर्क स्थापित करने की दिशा में भी आगे बढ़ रही है।

6.4 सांस्कृतिक विरासत एवं अकादमिक सहयोग- सांस्कृतिक विरासत संरक्षण भी चीन-श्रीलंका सहयोग का नया क्षेत्र है।

2025 के संयुक्त वक्तव्य में दोनों देशों ने सांस्कृतिक विरासत संरक्षण में सहयोग को आगे बढ़ाने की बात कही। इसके अतिरिक्त शिक्षा एवं अनुसंधान संस्थानों के बीच सहयोग तथा विश्वविद्यालयों और शोधकर्ताओं के आदान-प्रदान पर भी बल दिया गया।

इस प्रकार चीन की सांस्कृतिक भूमिका को अब केवल धार्मिक कार्यक्रमों तक सीमित नहीं रखा जा सकता। यह शिक्षा + संस्कृति + पर्यटन + विरासत + मीडिया + बौद्ध धर्म के संयुक्त स्वरूप में विकसित हो रही है।

7. भारत और चीन की सांस्कृतिक कूटनीति : एक तुलनात्मक दृष्टिकोण

भारत और चीन दोनों श्रीलंका में सांस्कृतिक संपर्क को महत्व देते हैं, लेकिन दोनों की रणनीति में महत्वपूर्ण अंतर है।

आधार

भारत

चीन

प्रमुख आधार

सभ्यतागत एवं ऐतिहासिक संबंध

आधुनिक संस्थागत एवं रणनीतिक सहयोग

प्रमुख सांस्कृतिक माध्यम

बौद्ध धर्म, तीर्थयात्रा, शिक्षा

बौद्ध धर्म, भाषा, शिक्षा, पर्यटन

संबंधों की प्रकृति

ऐतिहासिक निरंतरता

बढ़ती समकालीन संस्थागत उपस्थिति

प्रमुख शक्ति

भौगोलिक एवं सभ्यतागत निकटता

आर्थिक संसाधन एवं संस्थागत क्षमता

प्रमुख चुनौती

ऐतिहासिक संबंधों को समकालीन रूप देना

सांस्कृतिक स्वीकार्यता को दीर्घकाल तक बनाए रखना

हाल के शोध में भी यह अंतर सामने आता है कि भारत की बौद्ध कूटनीति मुख्यतः सभ्यतागत निरंतरता, पवित्र स्थलों, तीर्थ नेटवर्क और विरासत संरक्षण पर आधारित है, जबकि चीन की रणनीति अधिक राज्य-केंद्रित एवं संस्थागत रूप से समन्वित दिखाई देती है। इसलिए भारत और चीन की सांस्कृतिक प्रतिस्पर्धा को केवल 'कौन अधिक प्रभावशाली है' के प्रश्न तक सीमित करना उचित नहीं होगा। दोनों देशों की soft power की प्रकृति अलग-अलग है।

8. आलोचनात्मक विश्लेषण- चीन की बढ़ती सांस्कृतिक भूमिका के भारत-श्रीलंका संबंधों पर सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों प्रकार के प्रभाव दिखाई दे सकते हैं।

8.1 सकारात्मक पक्ष- पहला, चीन की बढ़ती भागीदारी श्रीलंका के लिए शिक्षा, पर्यटन, भाषा प्रशिक्षण तथा अंतरराष्ट्रीय अकादमिक संपर्कों के अतिरिक्त अवसर पैदा करती है। दूसरा, सांस्कृतिक विरासत संरक्षण के क्षेत्र में बाहरी सहयोग श्रीलंका के लिए उपयोगी हो सकता है। तीसरा, चीन और भारत दोनों के साथ संबंध रखने से श्रीलंका को अपनी विदेश नीति में विकल्प प्राप्त होते हैं। विभिन्न देशों के साथ सांस्कृतिक संपर्क श्रीलंका को एशियाई स्तर पर अपनी सांस्कृतिक पहचान को व्यापक रूप से प्रस्तुत करने का अवसर देते हैं।

8.2 नकारात्मक एवं चिंताजनक पक्ष- इसके बावजूद चीन की सांस्कृतिक कूटनीति के कुछ पहलुओं पर आलोचनात्मक दृष्टि आवश्यक है।

सबसे पहली चिंता यह है कि संस्कृति और रणनीतिक हितों के बीच अंतर हमेशा स्पष्ट नहीं रहता। यदि धार्मिक एवं सांस्कृतिक संपर्कों के साथ बड़े आर्थिक और सामरिक हित जुड़े हों तो सांस्कृतिक कूटनीति व्यापक विदेश नीति का साधन बन सकती है।

Rosendal के अध्ययन में यह तर्क सामने आता है कि चीन की बौद्ध रणनीतिक कथाएँ BRI से संबंधित आर्थिक परियोजनाओं के साथ जुड़ी हुई थीं और साझा बौद्ध इतिहास का उपयोग द्विपक्षीय सहयोग को सकारात्मक रूप में प्रस्तुत करने के लिए किया गया।

दूसरी ओर, चीन की आर्थिक क्षमता उसे बड़े पैमाने पर छात्रवृत्ति, संस्थागत सहयोग, सांस्कृतिक कार्यक्रम और परियोजनाएँ संचालित करने की क्षमता देती है। इससे भारत के सामने यह चुनौती आती है कि केवल ऐतिहासिक निकटता के आधार पर भविष्य की सांस्कृतिक प्रभावशीलता सुनिश्चित नहीं की जा सकती।

9. क्या चीन भारत की सांस्कृतिक स्थिति को चुनौती दे रहा है?

यह प्रश्न इस पूरे अध्ययन का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष है। एक दृष्टिकोण के अनुसार चीन की बढ़ती बौद्ध एवं सांस्कृतिक कूटनीति भारत के लिए चुनौती है। इसका कारण यह है कि भारत स्वयं को बौद्ध सभ्यता की जन्मभूमि के रूप में प्रस्तुत करता है और श्रीलंका के साथ उसका बौद्ध संबंध अत्यंत पुराना है। यदि चीन भी बौद्ध धर्म के माध्यम से श्रीलंका में अपनी सामाजिक स्वीकार्यता बढ़ाता है, तो इससे दोनों देशों के बीच सांस्कृतिक प्रतिस्पर्धा उत्पन्न हो सकती है। हालाँकि दूसरा दृष्टिकोण अधिक संतुलित है। चीन भारत के ऐतिहासिक संबंधों को पूरी तरह समाप्त नहीं कर सकता, क्योंकि भारत और श्रीलंका के बीच संबंध केवल सरकारी परियोजनाओं पर आधारित नहीं हैं। धार्मिक यात्राएँ, परिवारों एवं समुदायों के संपर्क, ऐतिहासिक स्मृतियाँ और साझा बौद्ध विरासत इन संबंधों को गहराई प्रदान करती हैं। अतः चीन की बढ़ती भूमिका को भारत के सांस्कृतिक प्रभाव के पूर्ण विकल्प के रूप में देखना उचित नहीं होगा। इसके बजाय इसे श्रीलंका में उभरती बहुस्तरीय सांस्कृतिक प्रतिस्पर्धा के रूप में समझना अधिक उचित है।

10. श्रीलंका की भूमिका : केवल प्रतिस्पर्धा का क्षेत्र नहीं- भारत और चीन के संदर्भ में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि श्रीलंका को केवल दो शक्तियों के बीच प्रतिस्पर्धा का निष्क्रिय क्षेत्र नहीं माना जाना चाहिए। श्रीलंका अपने आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक हितों के आधार पर दोनों देशों से संबंध विकसित करता है। चीन से उसे आर्थिक निवेश, शिक्षा और आधारभूत संरचना के अवसर प्राप्त होते हैं, जबकि भारत के साथ उसके ऐतिहासिक, धार्मिक और भौगोलिक संबंध हैं। इसलिए श्रीलंका की नीति को strategic balancing या संतुलनकारी दृष्टिकोण के रूप में देखा जा सकता है। यहाँ श्रीलंका

की agency को समझना आवश्यक है। वह भारत या चीन की नीतियों का केवल अनुसरण नहीं करता, बल्कि अपने हितों के अनुरूप दोनों देशों के साथ संबंधों का उपयोग करता है।

इस दृष्टि से भारत-चीन सांस्कृतिक प्रतिस्पर्धा को केवल 'zero-sum game' मानना वास्तविक स्थिति को अत्यधिक सरल बना देगा।

11. भारत के लिए संभावित चुनौतियाँ एवं अवसर- चीन की बढ़ती सांस्कृतिक उपस्थिति भारत के लिए चुनौती अवश्य है, किंतु इसके साथ नए अवसर भी उपलब्ध हैं।

पहला, बौद्ध कूटनीति को और मजबूत करना- भारत को बौद्ध देशों के साथ केवल धार्मिक संबंधों पर निर्भर रहने के बजाय बौद्ध शिक्षा, शोध एवं विरासत संरक्षण का व्यापक नेटवर्क विकसित करना चाहिए।

दूसरा, बौद्ध पर्यटन को बढ़ावा देना- भारत में स्थित बोधगया, सारनाथ, कुशीनगर और अन्य बौद्ध स्थलों को श्रीलंकाई तीर्थयात्रियों के लिए अधिक सुविधाजनक एवं आकर्षक बनाया जा सकता है।

तीसरा, शिक्षा एवं युवा संपर्क- भारत को श्रीलंकाई विद्यार्थियों के लिए छात्रवृत्ति और उच्च शिक्षा के अवसर बढ़ाने के साथ-साथ युवा आदान-प्रदान कार्यक्रमों को भी मजबूत करना चाहिए।

चौथा, सांस्कृतिक कूटनीति का आधुनिकीकरण- भारत की सांस्कृतिक कूटनीति को केवल प्राचीन सभ्यता के गौरव तक सीमित नहीं रहना चाहिए। आधुनिक भारत की शिक्षा, विज्ञान, तकनीक, सिनेमा, योग, आयुर्वेद, डिजिटल तकनीक और लोकतांत्रिक अनुभव को भी सांस्कृतिक संवाद का हिस्सा बनाया जाना चाहिए।

पाँचवाँ, श्रीलंका की स्वायत्तता का सम्मान- भारत के लिए यह आवश्यक है कि वह श्रीलंका के साथ संबंधों को केवल चीन के संदर्भ में न देखे। यदि भारत हर श्रीलंकाई-चीनी सहयोग को भारत-विरोधी गतिविधि के रूप में देखेगा, तो इससे द्विपक्षीय विश्वास प्रभावित हो सकता है।

12. निष्कर्ष- भारत और श्रीलंका के सामाजिक एवं सांस्कृतिक संबंधों की प्रकृति ऐतिहासिक, धार्मिक और सभ्यतागत आधारों पर निर्मित हुई है। बौद्ध धर्म ने इन संबंधों को विशेष गहराई प्रदान की है। आधुनिक काल में भारत ने बौद्ध तीर्थयात्रा, सांस्कृतिक विरासत, शिक्षा, छात्रवृत्ति तथा जन-से-जन संपर्क के माध्यम से इन संबंधों को संस्थागत रूप देने का प्रयास किया है।

दूसरी ओर, चीन की श्रीलंका में बढ़ती भूमिका ने इस सामाजिक-सांस्कृतिक परिदृश्य को नया स्वरूप दिया है। चीन अब केवल आर्थिक निवेशक या आधारभूत संरचना प्रदाता नहीं है। शिक्षा, चीनी भाषा, पर्यटन, बौद्ध आदान-प्रदान, सांस्कृतिक विरासत, मीडिया तथा अकादमिक सहयोग के माध्यम से वह श्रीलंका में अपनी सामाजिक उपस्थिति को मजबूत कर रहा है। 2025 का चीन-श्रीलंका संयुक्त वक्तव्य इस व्यापक सांस्कृतिक एवं जन-से-जन सहयोग की स्पष्ट पुष्टि करता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि चीन ने श्रीलंका में भारत की ऐतिहासिक सांस्कृतिक भूमिका को समाप्त कर दिया है। भारत की सबसे बड़ी शक्ति उसकी सभ्यतागत निकटता और ऐतिहासिक विश्वसनीयता है। वहीं चीन की शक्ति उसकी आर्थिक क्षमता, संस्थागत समन्वय और आधुनिक सांस्कृतिक कूटनीति में दिखाई देती है। अतः श्रीलंका में भारत और चीन की भूमिका को प्रतिस्पर्धा के साथ-साथ सह-अस्तित्व और संतुलन की प्रक्रिया के रूप में समझना अधिक उपयुक्त होगा। श्रीलंका दोनों देशों के साथ अपने हितों के अनुसार संबंधों को विकसित कर रहा है। इसलिए वह केवल भारत और चीन के बीच प्रभाव की लड़ाई का क्षेत्र नहीं, बल्कि अपनी विदेश नीति और रणनीतिक स्वायत्तता का सक्रिय निर्धारक भी है। अंततः कहा जा सकता है कि चीन की बढ़ती सामाजिक एवं सांस्कृतिक भूमिका भारत के लिए एक नई चुनौती अवश्य प्रस्तुत करती है, किंतु यह भारत की सभ्यतागत स्थिति का अंत नहीं है। इसके बजाय यह भारत को अपनी पारंपरिक सांस्कृतिक पूँजी को आधुनिक शिक्षा, पर्यटन, डिजिटल संपर्क, युवा आदान-प्रदान और संस्थागत सहयोग के माध्यम से पुनः सक्रिय करने की आवश्यकता को रेखांकित करती है।

भारत की भविष्य की रणनीति का उद्देश्य चीन को केवल रोकना नहीं, बल्कि श्रीलंका के साथ ऐसे समानता-आधारित,

पारस्परिक सम्मान और साझा सभ्यतागत विरासत पर आधारित संबंधों को मजबूत करना होना चाहिए, जिनमें श्रीलंका स्वयं को किसी शक्ति के प्रभाव क्षेत्र के बजाय एक स्वतंत्र एवं सम्मानित साझेदार के रूप में अनुभव करे।

संदर्भ सूची

1. Ministry of External Affairs, Government of India. Brief on India-Sri Lanka Bilateral Relations.
2. Ministry of External Affairs, Government of India. People-to-People Ties: India-Sri Lanka Relations.
3. Ministry of Foreign Affairs of the People's Republic of China. Joint Statement between the People's Republic of China and the Democratic Socialist Republic of Sri Lanka, 2025.
4. Rosendal, Tabita. "China's Buddhist Strategic Narratives in Sri Lanka-Benefits and Buddhism?" The Pacific Review, 2022.
5. Attanayake, Chulanee. "China's Buddhist Influence in Sri Lanka." Centre for Security and Policy Studies, 2023.
6. Chung, Chien-peng. "China's Buddhist Diplomacy Under Xi Jinping: A Preliminary Investigation."
7. Scott, David. "Buddhism in Current China-India Diplomacy."
8. Confucius Institute, University of Colombo. Institutional information on Chinese language and cultural cooperation.
9. Confucius Institute, University of Kelaniya. Institutional information on Chinese language and educational cooperation.
10. Ministry of Foreign Affairs, Sri Lanka. Documents relating to India-Sri Lanka and China-Sri Lanka bilateral relations.

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग

राजर्षि टंडन महिला महाविद्यालय, 211003

8488053427

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

वैदिक अवधारणा में ऋत तत्त्व का अध्ययन

डॉ. नितिन सेठी, प्रो. ए. सी. त्रिपाठी

शोध सार- भारतीय ज्ञान परम्परा में ऋत तत्त्व अपना विशिष्ट महत्त्व रखता है। वैदिक धर्म में दो धारणाएँ मानी जाती हैं। प्रथम धारणा कहती है कि प्रकृति एक अखण्ड नियम से चलती है। इसका एक निश्चित क्रम और नियम है। इसी कारण दिन, मास, ऋतु-चक्र, वर्षाकाल अपने-अपने पथ पर गतिमान रहते हैं। सूर्य, चंद्रमा, तारे, पृथ्वी आदि इसी नियम के वशीभूत होकर क्रमबद्ध और लयबद्ध हैं। एक सर्वशक्तिमान देवता है जिसकी शक्ति से प्रकृति की यह व्यवस्था क्रमबद्ध और नियंत्रित रहती है। वह देवता ही इस नियम का रक्षक देवता है। एक और भी धारणा है जो दर्शाती है कि प्रकृति में अच्छी और बुरी दोनों ही प्रकार की शक्तियाँ हैं। ये आपस में सदैव संघर्षरत रहा करती हैं। इस संघर्ष में अनवरत रूप से कभी सत् को विजय प्राप्त होती है तो कभी असत् को विजय प्राप्त होती है। जब कभी असत् शक्ति हावी और बलशाली होने लगती है, तब वह अपनी शक्तियों का व्यापक और जोरदार प्रभाव दर्शाती है। वह शक्ति प्रकाश की किरणों का हरण कर लेती है। इस कारण संपूर्ण सृष्टि में अंधकार का प्रसार हो जाता है। प्रकाश की पुनर्स्थापना के लिए सत् शक्ति को आगे आना पड़ता है और व्यापक संघर्षों के पश्चात् वह प्रकाश को पुनः प्राप्त करने में सक्षम सिद्ध होती है।

बीज शब्द- ऋग्वेद, ऋत, सृष्टि व्यवस्था, नैतिक व्यवस्था, याज्ञिक व्यवस्था, सृष्टि की उत्पत्ति, विधि, नियम; सत्य, यज्ञ; धर्म, सुप्रीम लॉ, ऋत का नियामक, वैदिक संस्कृति।

शोध आलेख- उल्लेखनीय है कि ऋत की स्थापना में इस प्रथम धारणा का ही योगदान रहा है कि प्रकृति का एक अखण्ड नियम है जो इसे निश्चित क्रम में गतिमान रखता है। इसी कारण दिन, मास, ऋतु-चक्र, वर्षाकाल अपने-अपने पथ पर गतिमान रहते हैं। ब्लूमफील्ड के शब्दों में,"यह एक ऐसा सिद्धांत माना गया जो गतिमान रूप से सर्वत्र स्थापित है। चाहे प्रकृति हो, चाहे देव हो, चाहे मानव जगत् हो; इसका प्रभाव और अधिकार प्रत्येक वस्तु पर परिलक्षित हुआ।"[1]

ऋत के अंतर्गत तीन क्षेत्र दर्शाए गए हैं–सृष्टि व्यवस्था, नैतिक व्यवस्था, याज्ञिक व्यवस्था। इनका विस्तृत विवेचन निम्नलिखित है–

सृष्टि व्यवस्था–ऋत की सृष्टि व्यवस्था प्रथम व्यवस्था है। इस संदर्भ में यह संपूर्ण सृष्टि को धारण किया करता है। यह सृष्टि का संचालन भी करता है। आकाश में स्थित जितने भी ग्रह और नक्षत्र हैं, वे अपनी-अपनी निर्धारित कक्षा में स्थित होते हैं और गतिशील भी रहते हैं। यह सब ऋत का ही अनुशासन है। देवताओं को जो भी कार्य दिया गया है, वे सब ऋत की प्रेरणा से ही सम्पन्न हो पाते हैं। कीथ, एनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एंड एथिक्स, भाग एक में कहते हैं,"ऋतुओं का क्रमबद्ध रूप से आना-जाना भी ऋत के अनुसार ही हुआ करता है।"[2] डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन के शब्दों में, "वैसे ऋत का मौलिक तात्पर्य था संसार, सूर्य, चंद्रमा, नक्षत्रगण, प्रातःकाल, सायंकाल एवं दिन और रात की गति का नियमित मार्ग, लेकिन शनैः-शनैः यह एक ऐसे सदाचार के मार्ग, जिसका अनुसरण मनुष्य को करना चाहिए और साध्वाचार के नियमों के अर्थों में व्यवहृत होने लगा जिनका पालन देवताओं के लिए आवश्यक है।"[3]

सृष्टि अनंत विस्तारित है। अपने विकास के क्रम में यह सतत् रूप से गतिमान है। इस अनंत विस्तारित सृष्टि पर

आध्यात्मिक और वैज्ञानिक सभी रीतियों से दृष्टिपात किया गया है। वैज्ञानिक जहाँ समूची सृष्टि को अणु, परमाणु और उसके अन्य सूक्ष्म अवयवों में अवलोकित करते हैं, वहीं हमारे ऋषि-मुनि सम्पूर्ण ब्रह्मांड को एक सुसंगत व्यवस्था में निबद्ध देखते हैं। सम्पूर्ण सृष्टि को जिस तत्त्व ने बाँधा हुआ है, वह तत्त्व है 'ऋत'। ऋत ही वह तत्त्व है जिसमें सम्पूर्ण सृष्टि अनुशासित है, नियम आबद्ध है और सतत् प्रवाही है। अपनी निश्चित, नियमित और निर्धारित गति सृष्टि ने ऋत से ही प्राप्त की है। प्रकृति की समस्त व्यवस्था ऋत पर आधारित है। यह तत्त्व ही भूत-भविष्य-वर्तमान को, चारों दिशाओं को, समस्त जड़-चेतन को बाँधे हुए है। वैज्ञानिक इसे ही 'सुप्रीम लॉ' कह कर पुकारते हैं। प्रकृति का प्रत्येक तत्त्व, प्रत्येक अवयव ऋत मार्ग का पालन करता है। प्रकृति का कोई भी अवयव ऋत के मार्ग से विचलित नहीं होता। परन्तु मानव के सन्दर्भ में यह बात सत्य नहीं है। मानव कभी-कभी ऋत-मार्ग से भटक भी जाता है। ऋत का दार्शनिक अनुभव इस बात पर जोर देता है कि जीवन को ऋतात्मक किस प्रकार बनाया जाए। साहित्य की दृष्टि से देखा जाए तो ऋत भावमूलक संज्ञा है। परन्तु इसे देवताओं के विशेषण के रूप में प्रयुक्त किया गया है। ऐसे अनेक शब्द हैं जो ऋत से निर्मित हैं। उदाहरणस्वरूप- ऋतधीतयः (ऋग्वेद 4.55.2), ऋतस्यगोपा (ऋग्वेद 5.63.1), ऋतस्पृशा आदि। ऋत शब्द 'ऋ गतौ' धातु से निकला है जिसका मूल अर्थ है वह जो हो चुका है अथवा जो अनंत काल से अपने मार्ग पर चलता रहा है।4 पाश्चात्य शब्द रिचुअल और राइट भी इसी से निष्पन्न माने जाते हैं। मैकडोनल ने अपनी 'वैदिक रीडर' पुस्तक में ऋत को प्राकृतिक व्यवस्था, यज्ञ-नियम और मानव चरित्र का नियामक दर्शाया है। ऋग्वेद में देवगणों को ऋत कहा गया है। ऋत शब्द से सम्बन्धित अनेक संज्ञाओं का नियमन किया गया है। ऋतेजारू (ऋत से उत्पन्न होने वाले), ऋतावान (ऋत से युक्त),ऋतज्ञाः (ऋत के ज्ञाता), ऋतस्य योनौ, ऋतस्य साधने (ऋत के स्थान में प्रतिष्ठित), ऋतस्पर्श (ऋत का स्पर्श करने वाले), ऋतावृधरू (ऋत से बढ़ने वाले), ऋतप्रवीत (ऋत से घिरा हुआ) आदि अनेक शब्द आए हैं। अग्नि को भी ऋत माना गया है। इसी क्रम में ऋत यज्ञ का भी वाचक है। विश्व की सृष्टि प्रक्रिया और परिपालन यज्ञ की सहायता से सम्पन्न होते हैं जिसके लिए अनेक नियमों का निर्धारण किया गया है। ऋत इन्हीं नियमों के सम्यक् पालन के लिए निर्दिष्ट किया गया है। ऋग्वेद 10.90.6 में दर्शाया गया है कि प्रकृति में भी एक यज्ञ सम्पन्न होता है जिसमें घी का कार्य बसंत करता है। ईंधन का कार्य ग्रीष्म और हवि का कार्य शरद् का होता है। बलि के रूप में पुरुष का उपयोग होता है।[5]

उपर्युक्त विवरण स्पष्ट करता है कि ऋग्वेद में ऋत की अवधारणा को सृष्टि व्यवस्था, नैतिक व्यवस्था और याज्ञिक व्यवस्था—इन तीनों व्यवस्थाओं में दर्शाया गया है। समय के साथ-साथ विचारों और अवधारणाओं में व्यापक परिवर्तनों का आना स्वाभाविक ही है। नवीन विचार पुराने विचारों में कुछ जोड़ते हैं और कुछ परिवर्तन भी करते हैं। पुरानी अवधारणा में ऋत को सूर्य का मार्ग दर्शाया गया है जिस पर सूर्य के साथ-साथ ऋत भी गतिशील है। यह गतिशीलता निरंतर रूप से दर्शाई गई है। परंतु नवीन विचारों में ऋत निरंतर अपने स्वरूप को बदलता गया है।

ऋत का स्वरूप—ऋत का सामान्य अर्थ है स्वाभाविक व्यवस्था,भौतिक एवं आध्यात्मिक निश्चित दैवी नियम। ऋत की विधि अति प्राचीन काल में व्यवस्थित हुई थी। ऋत का पालन सभी देवता, प्रकृति आदि नियमपूर्वक करते हैं। ऋग्वेद के मंत्र 10.190 में दर्शाया गया है कि सर्वप्रथम प्रदीप्त ज्योतिर्मय तत्त्व से ऋत और सत्य ये दो तत्त्व प्रकट हुए। इनसे रात्रि प्रकट हुई, फिर जलयुक्त समुद्र उत्पन्न हुआ। उस जलयुक्त समुद्र के पश्चात् संवत्सर (कालचक्र) उत्पन्न हुआ। इसके बाद पूर्वकल्प के तुल्य ही सूर्य, चन्द्र, अहोरात्र, द्युलोक, पृथिवी और अंतरिक्ष उत्पन्न हुए। यह सृष्टि की उत्पत्ति का प्रतीकात्मक वर्णन है। वैदिक वाङ्मय में ऋति शब्द व्यापक रूप से प्राप्त होता है। ऋत के नियामक हैं वरुण। इन्हें 'ऋतावृधौ' तथा 'ऋतस्पृशा' कहा गया है। ऋत द्वारा ही वे विशाल यज्ञ सम्पन्न करते हैं, सम्पूर्ण सृष्टि का पालन करते हैं और उसका नियमन करते हैं। ऋत और अन्य देवों का आपसी सम्बन्ध भी द्रष्टव्य है। ऋत के अंतर्गत सभी देवगण, प्रकृति, मनुष्य आदि सम्मिलित हैं। ऋग्वेद में कहा गया है—- 'ऋतेनादिव्यास्तिष्ठन्ति दिविसोमो अधिश्रितः'[6](ऋग्वेद 10.85.1)। ऋत का स्वरूप शाश्वत है। सूर्य का उदय होना, सूर्य का अस्त होना, निशा का आगमन होना, जल वर्षा, नदियों का बहना नित्य और शाश्वत है। ये शाश्वत नियमों से बंधे हुए हैं जिनका कोई उल्लंघन नहीं कर सकता। ये शाश्वत नियम प्रकृति की विभिन्न शक्तियों के साथ

संबद्ध और संयोजित हैं। ऋषियों ने इसे ही 'ऋत' के नाम से अभिहित किया है क्योंकि ये सब ऋत की परम्परा के अनुसार ही अपना-अपना कार्य करते हैं और नियमआबद्ध रहते हैं। हमारे शास्त्रों में कहा गया है 'मधुवाता ऋतायते'। जो ऋत का पालन करते हैं उनके लिए हवा, जल, इंद्रियों, वाणी में मधु है अर्थात् ऋत का पालन करने वालों के लिए सर्वत्र मधु का प्रसार है। शास्त्रों में ऋत के अनेक अर्थ मिलते हैं– विधि, नियम; सत्य, यज्ञ; धर्म का वह मार्ग जिससे सम्पूर्ण सृष्टि का नियंत्रण होता है। ऋत की शक्ति का वैदिक नाम है ऋता। भारतीय परम्परा के साथ ही अन्य संस्कृतियों में भी ऋत का अस्तित्व माना गया है। 'जिंद अवेस्ता' में इसे अशा और उर्ता के नाम से जाना जाता है। नैतिक नियम के अंतर्गत ही अंग्रेजी का 'राइट' और 'रिचुअल' जैसे शब्द भी द्रष्टव्य हैं। भारतीय शब्द 'रीति' के लिए भी वही इंडो आर्य धातु है जिससे यह ऋत शब्द निकला है। ऋत एक ऐसा नियम चक्र है जिसके अनुसार सम्पूर्ण सृष्टि गति करती है। अतः ऋत वह छंद है जिसकी क्रमबद्ध व्यवस्था में एक नियम है, एक गति है।

ऋत के स्वरूप को विस्तारपूर्वक दर्शाते हुए वासुदेव शरण अग्रवाल लिखते हैं, "सूक्ष्म और विराट् विश्व के अनंत रूप को एक सूत्र में ग्रथित करने वाला रहस्य क्या है? चौदह कोटि प्रकाश वर्ष की दूरी पर स्थित नक्षत्रों में परमाणु के विकास और विलय के जो नियम कार्य कर रहे हैं वे ही हमारे समीप में हैं। ध्रुव नक्षत्र या अगस्त्य नक्षत्र में जीवन और मृत्यु का जो अनुशासन है वही इस पृथिवी पर है। जो यहाँ है वही सर्वत्र है, जो यहाँ नहीं है, वह अन्यत्र भी नहीं है। यही सरलतम वैज्ञानिक नियम है। किसी देश-विशेष में ऐसी गुहा नहीं है जहाँ प्रकृत रहस्यों की कुंजी छिपी हो। 'सर्व सर्वत्र सर्वदा' शाश्वत अनुभव है। भूत-भविष्य-वर्तमान में विश्व प्रवाह की एक अखंड धारा बह रही है। पूर्व-पश्चिम, दक्षिण-उत्तर, ऊपर-नीचे; सब दिशाओं में एक नियम की अखंड स्थिति है। देश और काल के कोठे में ओर से छोर तक एक नियम व्याप्त है। यही ऋत का तंतु है। यह धागा प्रत्येक परमाणु में पिरोया हुआ है। जड़-चेतन सब में ऋत का एक तंतु ओत-प्रोत है। वैज्ञानिक का यही ध्रुव आधार है। एक परमाणु पर जिस प्रकार के प्रयोग का जो परिणाम एक शताब्दी पूर्व निकला था, वही आज अविकल रूप से किसी भी प्रयोगशाला में दोहराया जा सकता है। स्वर्ण के एक कण या विद्युत् की एक तरंग की जो भौतिक विशेषताएँ हमारे विज्ञान मंदिर में उपलब्ध होती हैं, वे सब हू-ब-हू वैसे ही सूर्य मंडल में या उससे भी दूर पर स्थित नक्षत्र-जगत् में विद्यमान हैं। ऋत की अखंडता देश और काल से ऊपर की वस्तु है, दूरी और समय का कैसा भी व्यवधान ऋत के नियमों में परिवर्तन नहीं कर सकता। इसी आश्वासन से प्रेरित होकर वैज्ञानिक अहर्निश अपने प्रयोग और अन्वेषण में निरत रहते हैं। प्रकाश और ताप, विद्युत् और चुंबक, सृष्टि के इन देवों की सर्वत्र एकरस गति पाई जाती है। सहस्रातिसहस्र परीक्षण करने पर भी इनके नर्तन की अस्खलित गति में किसी प्रकार का विपर्यय नहीं पाया गया। उषा हमारे आकाश में नित्य प्रति संचरण करने आती है। ऋषि ने उसे 'पुराणी युवति' कहा है। इसका कारण विश्व का अखण्ड नियम है जो सर्वत्र फैला हुआ है। वैज्ञानिक इसे 'सुप्रीम लॉ' कहकर श्रद्धा से प्रणाम करते हैं। पूर्व ऋषियों ने इसे 'ऋत' कहा है। पृथिवी जिस संचारपथ या क्रान्तिवृत्त पर घूमती है, वह पथ विश्व के ऋत ने उसके लिए स्थिर किया है।"[7] सौरमंडल में एवं सर्वत्र नक्षत्र समूह के आकर्षण-प्रत्याकर्षणों का जो अंतिम निर्णय हुआ, उसी ने पृथिवी के लिए ऋत मार्ग की व्यवस्था की। सूर्य, चन्द्र, ग्रह, उपग्रह– सभी ऋत पथ के अनुयायी हैं। वेदों में देवों को 'ऋतावृधः' अर्थात् ऋत से बढ़ने वाला कहा गया है। ऋत को जानना ही सच्ची प्रज्ञा है।

विचारक कुबेरनाथ राय के अनुसार, "ऋत का मूल अर्थ 'विधिचक्र' या 'नियम-चक्र' ही है। ऋत उस 'छंद' का नाम है जिसमें बद्ध होकर जीवन गति करता है और इस छंद से इधर-उधर हो जाने पर जीवन में 'अनृत' अर्थात् विकृति और असत्य का प्रवेश होता है तथा इस छंद का पतन हो जाने पर 'निऋति' यानी रोग, और मृत्यु अनुप्रवेश कर जाते हैं। अतः ऋत जीवनी शक्ति या गति शक्ति के 'छंद' (पैटन) का नाम है जिसे 'व्यवस्था' या 'सुव्यवस्था' भी कह सकते हैं। मात्र 'धर्म' शब्द ही 'ऋत' के निकट पहुँच पाता है। विधि-व्यवस्था, कानून, नियम आदि शब्द 'ऋत' के आंशिक पहलुओं को ही व्यक्त कर पाते हैं। नियमन, वृद्धि, विकास और पुनर्कल्प का स्रोत यही ऋत शक्ति है। बाद में यह शब्द 'धर्म' की ही तरह व्यापक और रहस्यमय हो गया। सच तो यह है कि यह 'धर्म' का ही पूर्वाधिकारी है। वैदिक काल में 'ऋत' या 'ऋता' उन सब बातों के लिए प्रयुक्त

होते थे जिनके लिए महाभारत 'धर्म' शब्द का प्रयोग करता है। वैदिक जीवन का मूलाधार थी 'ऋता', तो वैदिकोत्तर पौराणिक जीवन का मूलाधार हो गया 'धर्म'। पर दोनों शब्दों में अर्थ और ऐतिहासिक भूमिका की दृष्टि से ऐक्य है। विटरनित्ज़ ने इसका अर्थ किया है—विश्व की वस्तुओं और घटनाओं में निहित व्यवस्था—शक्ति या नियम-छंद। मैकडोनल ने बताया है कि इसका मूल अर्थ था यज्ञों की पद्धति (रीति), बाद में अर्थ हो गया नैतिक आचार के सारे नियम। कीथ ने इसका अर्थ बताया है नीति-व्यवस्था और निसर्ग-व्यवस्था अर्थात् नैतिक आचरण और घटनाओं के मौलिक आचरण दोनों के मध्य वर्तमान क्रम और रीति। डॉ. राधाकृष्णन् ने कहा है, 'ऋत का बुनियादी अर्थ है वस्तुओं और घटनाओं का गति पथ।' इसका सामान्य अर्थ होता है 'नियम' और यह नियम शक्ति और न्याय शक्ति की सर्वव्यापकता का द्योतक है। जो कुछ क्रमबद्ध तथा सुव्यवस्थित है 'ऋता' द्वारा ही चालित है।''[8] जो ऋता का त्याग करता है, 'ऋत' से पतित होता है वह अनृत (असत्य) और निर्ऋत (रोग और क्षय) का शिकार होता है।

ऋत का नियामक— ऋत या ऋता का नियामक है वरुण और वरुण पाशधर देवता है। ऋता का मार्ग ही मर्यादा है। जो मर्यादा या ऋता का विरोध करता है उसका कण्ठ वरुण-पाश में जा फँसता है। ऋता एक शाश्वत अपरिवर्तनशील नियम-छन्द है जिससे बंधे हुए सभी चल रहे हैं; मनुष्य, पशु, वनस्पति ही नहीं, सूर्य-चंद्र-तारागण तथा कालचक्र भी। जीवन की पंचऊर्मियों (अस्ति, जायते वर्धते, विपरिणमते अपक्षीयते, विनश्यति) में यह ऋता ही सक्रिय है। ऋत का मार्ग ही मर्यादा का मार्ग कहलाता है। केवल मनुष्य और पशु पक्षी वनस्पति ही नहीं अपितु सूर्य चन्द्र नक्षत्र नदियाँ सागर सभी तो ऋत के अनुसार ही नियमबद्ध होकर अपने-अपने कर्त्तव्यों का समयबद्ध और रीतिबद्ध होकर पालन कर रहे हैं। वरुण को ऋतस्य गोपा कहा गया है अर्थात वरुण ऋत का संरक्षक है। ऋग्वेद (2.28.6), अथर्ववेद (4.16.25) में ये वर्णन प्राप्त होते हैं। वरुण ऋतस्य गोपा और ऋतवन के सारथी माने जाते हैं। ऋग्वेद में वरुण के ऋत पर आधारित अनेक सुन्दर भाव प्राप्त होते हैं। वरुण पर आधारित सूक्तों में हमें एक नवीन दार्शनिक चेतना मिलती है।

ऋत का सारथी (संचालक) वरुण जीवन-प्रवाह में और सभी घटनाओं में ऋत का फल वितरण कर रहा है। ''वरुणदेव वृक्षों के ऊपरी भाग को अंतरिक्ष में विस्तारित करते हैं। अश्वों में बल, गौओं में दूध, मनुष्यों के हृदय में संकल्प विस्तारित करते हैं। जल में अग्नि, अंतरिक्ष में सूर्य और पर्वतों पर सोमलता स्थापित करते हैं।''[9] अन्य देवताओं के सूक्तों में भी 'ऋत' की महिमा गाई गई है। अवश्य ही भिन्न-भिन्न अर्थों और मुहावरों में कभी 'वाक' के रूप में, कभी देवता के रूप में, तो कभी यज्ञ के रूप में। कालांतर में यज्ञ का भी अर्थ बदला और यह 'कर्म' का समानार्थी हो गया। प्रत्येक कर्म एक नियम या पद्धति द्वारा चालू होता है अतः 'कर्म' में ऋत की प्रतिष्ठा देखी गई। ब्राह्मणों द्वारा एक बहुसम्मानित ऋचा है जिसे 'हंसपदी वाक' कहते हैं। यह निम्नवत् है[10]—

हंसः शुचि शद्वसुन्तरिक्षा सद्होता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्।
नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतम्।।

अर्थात् वह ''हंस (सूर्य) रूप में शरदाकाश में स्थित है, वायु रूप में अंतरिक्ष में, अग्नि रूप में यज्ञ की वेदी पर (अथवा होता रूप में यज्ञ की वेदी पर) तथा अतिथि बनकर गृह में अवस्थित होता है। वह 'ऋत' रूप में सत्पुरुषों में रहता है, वरणीय स्थलों पर रहता है तथा व्योम में रहता है। ऋत का जन्म जल में, किरणों में, सत्य में और पर्वतों में होता है।'' स्पष्ट है कि इसमें ब्रह्म-सत्ता और 'ऋत' के स्वरूप की व्याख्या की गई है। इस ऋचा में ऋत की सत्ता के सार्वभौम रूप को प्रस्तुत किया गया है। 'ऋत' की सार्वभौम व्यापकता ब्रह्म की विभुता के समानांतर है। अवश्य ही कालांतर में जिस ब्रह्मवाद की प्रतिष्ठा वेदांत के माध्यम से हुई वह 'ब्रह्म' या 'विभु' एक शुष्क ऋत-शक्ति या व्यवस्था—शक्ति न होकर एक निर्विकार चेतन अमल आनंदमय सत्ता है। पर इस सिद्धांत का बीज उपर्युक्त ऋचा के मध्य भी झलक जाता है। इसी कारण इसे 'हंसपदी वाक्' कहा जाता है। यह ऋचा परवत्ती वेदांत और आदि कर्मकांड के बीच की 'कड़ी' उपस्थित करती है। इसके पूर्वार्द्ध में किसी विश्वव्यापी सत्ता का संकेत है और उत्तरार्द्ध में उस सत्ता के ही एक विशेष रूप 'ऋत' की व्याख्या है। उल्लेखनीय है कि यही ऋत वैदिक ऋत से विकसित होकर कालांतर में पौराणिक ऋत बना। अब यह ऋत मंत्र रूप में न होकर आख्यान रूप में हमारे सामने

आया। रामायण में वैदिक ऋत का प्रभाव अधिक दिखाई देता है। महाभारत में ऋत का रूपांतरित रूप अर्थात् धर्म का ऋत दिखाई देता है। ऋत का अधिष्ठाता वरुण है। ऋत के विपरीत जो आचरण करता है उसे वरुण के पाश बाँध लेते हैं। ऋत का उल्टा अनृत है। अनृत ही पाप है। ऋत का मार्ग ऋजु मार्ग है, कुटिल या टेढ़ा (अनृत) मार्ग मृत्यु का पद है— सर्व जिह्मं मृत्युपदमार्जवं ब्रह्मणः पदम्।

मनुष्य ज्यों-ज्यों ऋत मार्ग की अवहेलना करता है और पाप में फँसता जाता है, वरुण के पाश उसके चारों ओर घेरा डालने लगते हैं। बंधन में वरुण भाव है। मोक्ष वरुण-पाशों से छूटने का नाम है। वरुण का प्रतिस्पर्धी मित्र है। मित्र और वरुण ही दिव्य और आसुर भाव हैं। बहता हुआ पानी मित्र का भाग है। ठहरा हुआ जल वारुण हो जाता है। ठहरने अर्थात् परिमित हो जाने से ही जलों में दुर्गन्ध उत्पन्न होती है। यही स्वभाव मन का है। ऋतगामी मन दिव्य होता है। अनृत से सनकर वही क्षुद्र हो जाता है। ''जीवन का सर्वोत्तम व्रत यही है कि हम अनागस या पापों से मुक्त रहें- हे वरुण हमारे उत्तम, मध्यम और अधम पाशों को दूर करो। हे आदित्य, हम निष्पाप रहकर तुम्हारे व्रत में दीक्षित होकर अमृत गति को प्राप्त करें।''[11]

निष्कर्ष— ऋत का आदर्श हमारी वैदिक संस्कृति में स्पष्ट है। यज्ञादिक कर्मों में ऋत का ही प्राधान्य और प्रभाव है। शास्त्रों में जीवन को भी यज्ञ ही दर्शाया गया है। जीवनरूपी यज्ञ भी इसी कारण ऋत पर आधारित है। जीवन में मानव द्वारा विभिन्न प्रकार के सम्बन्धों का निर्वहन किया जाता है। ये सब सम्बन्ध ऋत पर ही आधारित हैं और ये सम्बन्ध ऋत के माध्यम से ही अभिव्यक्ति पाते हैं। कर्ममय ऋत की प्रतिष्ठा ही जीवन का मुख्य उद्देश्य बतलाया गया है। मानव के जीवन में शील, धर्म, नीति, आदर्श आदि का महत्त्व सर्वव्यापक है। मानव जीवन के ये आधारभूत तत्त्व कहे जाते हैं। ये सब, यदि ध्यानपूर्वक देखा जाए तो, ऋत के ही तत्त्व है और ऋत में ही समाहित भी हैं। इसीलिए ऋत सामाजिक ऋत (इथिक्स) (शीलाचार) की स्थापना करता है।

सन्दर्भ सूची

1. ब्लूमफील्ड, रिलीजन ऑफ द वेद, पृ. 26
2. कीथ, एनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एंड एथिक्स, भाग-1, पृ. 9
3. डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन, भारतीय दर्शन, भाग-1, पृ. 80
4. कुबेरनाथ राय, 'महाकवि की तर्जनी', ऋत और मधु का महाकाव्य, भारतीय ज्ञानपीठ, पृ. 58
5. ऋग्वेद, 10.90.6
6. ऋग्वेद, 10.85.1
7. 'वासुदेव शरण अग्रवाल रचना-संचयन', संपा. कपिला वात्स्यायन, साहित्य अकादेमी, पृ. 93
8. कुबेरनाथ राय, 'महाकवि की तर्जनी', 'ऋत और मधु का महाकाव्य', भारतीय ज्ञानपीठ, पृ. 60
9. ऋग्वेद, 5.85.2
10. ऋग्वेद, 4.4.5
11. अथर्ववेद, 7.83.3

डॉ. नितिन सेठी
शोधार्थी, दर्शनशास्त्र विभाग
बरेली कॉलेज, बरेली
मो- 9027422306
पता : सी-231, शाहदाना कॉलोनी, बरेली-243005

प्रो. ए. सी. त्रिपाठी
एसो. प्रो., दर्शनशास्त्र विभाग
बरेली कॉलेज, बरेली
मो- 9412376506